र्ष ४] राष्ट्र-निर्माण-माला [पुस्तक २

महान् मातृत्व की ओर

लेखक

श्री नाथूराम शुक्ल

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

यमावृत्ति] १९२९ [मूल्य ।।।=)

पूज्य मालवीयजी का

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

"सस्ता-मंडल अजमेर ने हिन्दी की उच्च कोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिन्दी की बडी सेवा की है। सर्व साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

मदनमोहन मालवीय

सस्ता-मंडल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सूची अन्त में दी हुई है। स्थायी ग्राहक होने के नियम भी लिखे हुए हैं। यदि इस मंडलके चार हजार स्थायी-ग्राहक हो जायँ, तो अभी जो हानि उठाकर पुस्तकें इतनी सस्ती दी जा रही हैं, वह हानि बंद हो जाय और यह मंडल सदा के लिए स्वावलम्बी हो जाय।

क्या आप मंडल के ग्राहक बनकर

सहायता न करेंगे !

व्यवस्थापक

मुद्रक और प्रकाशक
जीतमल लूणिया
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर

दो शब्द

देवियो, "महान् मातृत्व की ओर" अपने नाम के अनुरूप ही महान् मातृत्व के गहन विषय का एक आभास मात्र है। लेखक का इस महत्व-शाली विषय पर अपनी लेखनी उठाने का प्रथम प्रयास है और भारी भूलों की बड़ी सम्भावना है, परन्तु जहाँ तक हो सका पुस्तक की पवित्रता भारतीय आदर्श की अनुगामिनी ही रही है।

हमारा देश इस समय एक बड़े परिवर्तनकारी युग में प्रवेश कर रहा है। हमारी वर्षों की रूढ़ियों,—जिन्हें हम लोगों ने राजनैतिक अवस्था के कारण ग्रहण कर लिया था—और विदेशी सभ्यता की भड़कीली चाल-ढाल में बड़ा युद्ध हो रहा है। ऐसे क्रान्तिकारी अवसर में देश को सच्चा पथ दिखलाने वाले साहित्य और सुधारकों की ज़रूरत है। हमारे सुधार के पक्षपाती हमारी आत्मा और खून को भी नाश करके हमें विदेशी में ढाल देना चाहते हैं। आचार की ओर ध्यान न देते हुए अक्षर-ज्ञान का महत्व गाया जाने लगा है। क्या भारत अपने वक्षः-स्थल पर पेरिस की स्त्री-स्वतन्त्रता और यूरोप का नाच देखना चाहता है? लेखक विश्वास करता है कि भारत की देवियाँ चरित्र नष्ट करने वाले सिद्धान्तों से अपने को अपवित्र नहीं होने देंगी। हमारी महत्वाकांक्षा है कि भारत की नवीन सभ्यता संसार की सभ्यताओं में सर्वश्रेष्ठ रहे। वह जड़वाद और आदर्शवाद का सुन्दर मिश्रण हो। हम

विज्ञान की सहायता से सम्पत्ति-शाली होते हुए, विज्ञान-विरुद्ध बातों को त्यागते हुए अपने हृदय को पवित्र और ऊँचा बनाते रहें। इसी उद्देश्य को सामने रखकर "महान् मातृत्व की ओर" का निर्माण किया गया है।

देवियो, यह पुस्तक आपको स्त्री-जीवन की प्रारम्भिक कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराती हुई, गार्हस्थ्य-जीवन की जिम्मेदारियों को दिखलाती हुई, वृद्धावस्था के सुखमय पथ पर ले जावेगी। विश्वास है कि आप एक बार इसे अवश्य ध्यान पूर्वक पढ़ेंगी।

पुस्तक का आकार और विषय कुछ अधिक विस्तृत रखने की इच्छा थी, परन्तु हिन्दी संसार के "प्रकाशन-भय" ने इसे छोटा ही रहने दिया। यदि आपने इस कृति को उपयोगी समझा तो लेखक शीघ्र ही उत्तम स्त्री-साहित्य आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करेगा।

बादशाह बाग, लखनऊ।
ता० २५-११-२८

विनीत—
नाथूराम शुक्ल

समर्पण

श्रीयुत पं० मनोहर कृष्णाजी गोळवेलकर, बी० ए० एल्-एल्० बी०,
एम्० एल० सी०, जबलपुर.

की सेवा में—

जाति-पाँति के पक्षपात से दूर रह, सब प्रकार से समाज-
सेवा में तत्पर रहनेवाले और अपने द्वार पर आये हुए
विद्यार्थी, विधवा, अनाथ और धर्मार्थाभिलाषी आदि सब
की यथाशक्ति सहायता करनेवाले, राष्ट्र-भाषा
हिन्दी के शुभ-चिन्तक, मेरे श्रद्धेय, देश-भक्त
"अप्पा साहेब" अपने बालक की अटपटी,
प्रेम-लटपटी इस भेंट को
स्वीकार कीजिए।

आपका—
आज्ञाकारी बालक,
नाथूराम शुक्ल।

लागत का व्योरा

कागज़	२९०)
छपाई	२८०)
बाइंडिंग	६०)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन, आदिखर्च	७५०)
	१३८०)

कुल प्रतियां २१००

एक प्रति का लागत मूल्य ।ॾ)॥

'राष्ट्र-जागृति-माला' के तीसरे वर्ष में

ये पुस्तकें छप गई हैं

(१) जब अंग्रेज नहीं आये थे—पृष्ठ १०० मूल्य ।)

(२) अंधेरे में उजाला।(टाल्स्टाय लिखित नाटक)पृ०१६० मू०।ॿ)

(३) विजयी बारडोली (६०चित्र) पृष्ठ ५२० मू० २)

'राष्ट्र-निर्माण-माला' के चौथे वर्ष में

ये पुस्तकें छप गई हैं

(१) खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र—पृष्ठ ३२० मू० ॥।ॿ)

(२) महान् मातृत्व की ओर—पृष्ठ २७४ मू० ॥।ॾ)

महान् मातृत्व की ओर

विषय-सूची

महान् मातृत्व की ओर

दिव्य कलिका

"जिस प्रकार प्रातःकाल आनेवाले दिन के विषय में जाना जाता है उसी प्रकार बाल्यकाल मनुष्य के भविष्य के विषय में प्रकाश डालता है।"

—मिल्टन

"अपने जीवन का उपाय क्या जाने बालक।
चिन्ता रखते जननि-जनक जो हैं प्रति-पालक॥
रक्षा माता-पिता प्रेम के वश करते हैं।
प्रभु का पक्ष यही समझ कर हम धरते हैं॥"

—तुकाराम

अमर मानवलता की ओ दिव्य कलिके, मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। तुझे घर के आंगन में आनंद से फुदते देख किसका हृदय नाचने नहीं लगता होगा? तुतलाते हुये "भइया, दद्दा", शब्दों की तेरी यह मधुर ध्वनि कड़े से कड़े हृदय को बिना मोहे नहीं रह सकती। तेरे कमल-नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा देख माँ का कोमल हृदय तुझे गोदी में उठा अपने को धन्य मानता है। पड़ोसी भी प्रेमपूज्य दृष्टि से तेरा आदर करते हैं। माता तुझे पाकर अपने जीवन को सार्थक समझने लगती है, पिता तुझे क्या पाता है—संसार को देखने के लिए मानों दो दिव्य नेत्र पाता है, जो स्त्री-जाति के प्रति उसके भावों को बदल देते हैं।

कहीं इसी लिए तो प्यारी बालिके, पुराणकारों ने कन्यादान के महात्म्य का वर्णन नहीं किया है ? कहीं इसीलिए तो कन्या को मुक्ति-मार्ग का दर्शन दिलानेवाली नहीं कहा है ? हे दिव्य स्वरूपिणी महाशक्ति, मैं तुम्हें पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ !

पर आज इस समाज को क्या हो गया है ? इसकी बुद्धि तो नहीं मारी गई ? मातृदेवता को बाल-रूप में देख कर यह इस तरह भय-चकित क्यों है ? अपनी सुन्दर चीज को देखकर भी सुखी नहीं होता। वर्तमान अवस्था का वर्णन करते हुए एक कवि लिखता है—

"हैं उस समय क जन न अघसे जो उन्हें समझे बला।
होंगे न दोनों नेत्र किसको फकसे प्यारे भला॥
हा, अब उन्हींके जन्म से हम डूबते हैं शोक में।
पर हो न उनका जन्म, तो हों पुत्र कैसे लोक में॥"

क्या ही अनूठा सत्य है। सुन्दर वस्तु को भी देख कर सुखी नहीं हो सकते, बला समझते हैं! भारत की प्रत्येक जाति में प्रायः कन्या-जन्म इतना हर्ष-दायक नहीं माना जाता, जितना कि पुत्र-जन्म। पुत्र–पुत्री ये दोनों ही ईश्वर की सन्तान हैं, समझ में नहीं आता, फिर यह भेदभाव क्यों ?

किन दुष्ट समाजनाशक दिमागवालों ने उस भयंकर कुप्रथा को जन्म दिया, जिसके कारण हमारी प्यारी बालिका, लक्ष्मी यशोदा और कमला हमारे जीवन का भार बन जाती हैं ? स्वर्ग की ये सुन्दर विभूतियां, अपने किलोल-काल में, हमें हंसाती हैं। इन्हें गोद में ले हम कुछ काल के लिए अपने सब दुःख भूल जाते हैं। जीवन की कठोरता भी कोमल ज्ञात होने लगती है।

परन्तु ज्यों ही वह वृद्धि प्राप्त करने लगती है, त्यों ही हमारे जीवन का आनन्द किरकिरा पड़ने लगता है।

'ठहरौनी' या 'दहेज' की प्राण-घातक प्रथा ने कितनी बहनों के जीवन का नाश नहीं कर दिया है और कर रही है! माता-पिता की असमर्थता ने कितनों को गढ्ढे में नहीं डाल दिया? समाज अन्धा है, वह सहानुभूति दिखलाना नहीं जानता; यदि कभी कुछ दिखलाता भी है तो उसकी सहानुभूति कोरी ही रहा करती है। दांत दिखला कर हंसी करना उसका हमेशा का उद्देश्य रहा है। यह जानते हुए भी माता-पिता इस प्राण-घातक प्रथा को तोड़ने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?

प्यारी बालिका ने हँसते-खेलते बारहवें वर्ष में पदार्पण किया। पिता को विवाह की चिन्ता पड़ी। माता की दृष्टि में वह अब लड़की नहीं रही, स्त्री कहलाने लगी। पड़ोसियों की जबान बेलगाम हो चली। वे कन्या को देख अब शान्त नहीं रहते। "इतनी बड़ी लड़की, गजब हो गया, इसके माँ बाप को इसे घर में देख कर नींद कैसे आती है!" इत्यादि वाग्बाण बरसाते रहते हैं। माता-पिता इन सब बातों को सुनते हैं और सहम कर रह जाते हैं। जब कुछ उपाय नहीं सूझता तब बुड्ढा-अधेड़ जैसा वर मिलता है उसके गले बालिका को बांध कर उससे अपना पीछा छुड़ाते हैं। आये वर्ष इस प्रकार न मालूम कितनी बालिकाओं का समाज की वेदी पर बलिदान होता रहता है!

हमारे गृहों में इस आयु (बारह वर्ष) से पहले ही देवियां गृहों में अन्य रूप धारण कर लेती हैं। वे माता का दाहिना

हाथ बन जाती हैं। बिना कहे ही घर के सब काम-काज करने का भार अपने ऊपर उठा लेती हैं। सुबह होते ही घर को साफ़ करना, बर्तनों को मांजना, बिछौना उठाना-बिछाना, उनका नित्य-कर्म बन जाता है। छोटे-छोटे भाइयों को खिलाने और प्रेम से सेवा करने में उन्हें बड़ा आनन्द आने लगता है। इस प्रकार हमारी बारह वर्ष की ग़रीब गृह की कन्या घर-गृहस्थी के कार्यों से परिचित हो जाती है। प्रत्येक कार्य स्वयं करने से उसकी शारीरिक अवस्था में परिवर्तन हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न कामों के बनने और बिगड़ने से उसे बहुत शिक्षा प्राप्त हो जाती है। ये शिक्षायें बड़े घरों में नहीं मिल पातीं। परिणाम इसका अच्छा नहीं होता। यदि स्वामी धनवान्, आलसी, विलासी न हुआ तो ये देवियां जीवन के सुख-शान्ति से वंचित हो जाती हैं।

जीवन-सुख-शान्ति, यह एक निराला लक्ष्य है, जिसे सब मनुष्य स्त्री-पुरुष एक स्वर से चाहते हैं। भले ही, प्रत्येक के सुख-शान्ति की परिभाषा भिन्न हो, परन्तु इच्छा भिन्न नहीं है। संसार इसी मार्ग की ओर बढ़ रहा है। क्या इसे प्राप्त करना सरल है? नहीं, यह बड़ा कठिन है। किन्तु क्या तुम कठिनाइयों से घबराती हो? यदि हां, तब तो पुस्तक को एक ओर फेंक दो। जीवन-नौका को अगाध संसार-समुद्र में बहने दो। आँधियाँ उठेंगी, नौका डगमगावेगी, सम्भव है किसी चट्टान से टकरा कर चूर चूर हो जाने का अवसर भी आवे। उस समय तुम क्या करोगी? विपद् के बादल देख कर सान्त्वना से खूब चिल्ला कर कहना:—अय हृदय! पत्थर का होजा। प्रकृति दयामयी माता नहीं, न्याय की देवी है। मुझे कर्मों का फल मिल रहा है! अतः,

हृदय, धीरज धर ! अपराध का दण्ड मिलता ही है, फिर इतनी चिन्ता क्यों ?" इतना कह प्रभु का स्मरण करना, तुम्हारी अन्तिम घड़ी सुखमय हो जावेगी।

परन्तु बहनो ! जीवन-नौका समुद्र में फेंकते समय क्या उसके माझी को अपने पूर्वजों के अनुभव से लाभ नहीं उठाना चाहिए ? क्या संसार की अन्य देवियों की हृदयविदारक घटनाओं से तुम कुछ शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकतीं ?

यदि कर सकती हो, हाँ, फिर आओ, आगे बढ़ने के पहले सब सामग्रियों से तैयार हो जाओ, जिससे अकस्मात् यदि कोई आघात हो तो वह आघात स्वयं ही लज्जित हो, तुम्हारे पास से टकरा कर दूर जा पड़े।

'पालन' है तो तीन अक्षरों का शब्द, किन्तु विश्व-कर्त्ता की मधुर वीणा-ध्वनि इसमें सुनाई देती है। सभी माता-पिता अपनी सन्तान को पालते हैं। पशु, पक्षी, मनुष्य सभी इसमें रत हैं। यदि यह न होता तो कभी की ही यह सृष्टि "मरघट-भूमि" बन गई होती। कन्या-पालन सबसे महत्वपूर्ण है, एक बड़े उत्तर-दायित्व का कार्य है। ढील-पोल की कि बस सत्यानाश हुआ। जीवन के बाद जीवन गढ्ढे में गिरने लगे। गृह नाश हुआ; समाज का अनिष्ट हुआ और राष्ट्र का मुँह काला हुआ।

हाँ, क्या लिख रहा था ? यही न कि हमारी देवी माता की परम-सहायक हो माता के हृदय में विशाल स्थान पाती जाती है; प्रत्येक काम करने के पहले वह मां के पास दौड़ी जाती है, सलाह लेती है। काम बिगड़ जाने पर घबरा उठती है, उसका कलेजा कांप उठता है। वह सोचने लगती है, "माँ अब

नाराज होंगी, मुझे मारेंगी। उसकी सुन्दर आँखों में आँसू आ जाते हैं। ऐसे समय, माताओं, क्या तुम जानती हो कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है? यदि नहीं, तो सुनो, हम बताते हैं। इस अवसर पर तुम ज़रा आत्म-संयम से काम लो। उस अबोध बालिका को डाटो मत। उसका कोमल हृदय तुम्हारे इस वज्र-प्रहार को सहने योग्य नहीं है। उसपर, अपनी लाल-लाल आँखें निकाल, अपने हाथों की ताक़त न आजमाओ; उसका सुन्दर, अपरिपक्व शरीर तुम्हारे प्रहार सहने के लिए नहीं बना है। यह शिक्षा और सुधार की रीति नहीं है। सुप्रसिद्ध कृष्णमूर्ति के शब्दों में "दण्ड सम्बन्धी समस्त विचार ग़लत ही नहीं, बल्कि मूर्खतापूर्ण हैं। बालकों के आचरण में भय और अरुचि उत्पन्न करने की अपेक्षा एक बुद्धिमान शिक्षक अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए उनमें प्रेम और भक्ति जागृत करता है। इसमें उनके अन्दर की सब अच्छी भावनायें दृढ़ होती हैं और वे विकास-मार्ग में सहायता पहुँचाती हैं।" तदनुसार तुम भी प्रेम से काम लो। स्नेहयुक्त वाणी से अपनी पुत्री को उठा कर गले लगाओ। उसको उसकी भूल सुगमता से समझाओ। उसके हृदय को अपने हृदय में मिला दो। तुम्हारा काम बन जायगा। उद्देश्य भी पूर्ण हो जावेगा। प्यारी माता! क्या तुम्हें अपने बाल्यजीवन की ऐसी कोई घटना की याद नहीं है, जब कि तुम्हारी माता के व्यवहार ने तुम्हारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और तुम रक्षा के लिए पूज्य पिता या प्यारे भाई का मुँह ताकने लगी थीं? कितनी ही देवियों के स्वभाव इस कठोर आचरण से बिगड़ जाते हैं और आगे चलकर वे भी ऐसा ही आचरण अपनी गृहस्थी में दिखलाती हैं

तथा विष का वृत्त वृद्धि पाता ही जाता है। अतएव इस विषय को तुच्छ न समझना चाहिए।

बालिकाओं की शिक्षा के विषय में लोगों में अभी एक काफी अनुदारता समाई हुई है। उनकी दृष्टि में शिक्षा का एक-मात्र उद्देश्य नौकरी है। अतः वे सोचते हैं कि जब हमें अपनी बालिकाओं की कमाई तो खाना ही नहीं है, फिर हम क्यों व्यर्थ की आपत्ति अपने सिर लेवें ? वे मीटन के इन शब्दों को भूल जाते हैं कि "स्त्रियों के मस्तिष्क की उच्चता पर मनुष्यों की बुद्धिमत्ता निर्भर है।" कभी-कभी उन्हें आशंका घेर लेती है कि पढ़ा-लिखा देने से अपनी इच्छा पूर्ति के साधन सुगम हो जाने पर कहीं उनकी देवियां कुमार्गगामिनी न हो जावें। कितनी घृणास्पद है यह आशंका ? इसके साथ ही हम यह शिक्षा उन्हें देना नहीं जानते। योग्य शिक्षा किसे कहते हैं ? यह सोचने का कष्ट ही नहीं करते कि शिक्षा द्वारा कर्तव्य-ज्ञान हो जाने पर स्त्रियां अपने सतीत्व के महत्व को कितना गम्भीरता के साथ अनुभव कर सकती हैं। परन्तु, हां, शिक्षा के विषय में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह अनिष्टकारी न हो।

जहां घर में पढ़े-लिखे व्यक्ति हों, वहां तो लेखक की राय में वर्त्तमान स्कूली शिक्षा से बचे रहना ही अच्छा है। यदि पिता, भाई या अन्य कोई सम्बन्धी बालिका को गृह में ही पढ़ा सकता है, तब स्कूल की समय नष्टकरनेवाली और अल्प परिणाम-दायक शिक्षा-पद्धति को दूर से नमस्कार करना ही भला है। शिक्षा द्वारा हम तो यही चाहते हैं कि हमारी देवियां सच्ची गृहिणी बनें। हम उन्हें पश्चिमी सभ्यता के भयंकर क्षेत्र में

उतारने के लिए इस समय तैयार नहीं हैं। जिन्होंने इस चित्र की बीभत्सता को देखा है वे इसको स्वीकार करते हैं कि भारतीय महान् आदर्श के सामने वह नाटक निकृष्ट श्रेणी का है और सभ्यता के शब्द को कलंकित करता है। अस्तु!

इतने पर भी यदि बालिका को स्कूल में भेजना ही आवश्यक हो, तो माता पिता को शिक्षिका के आचरण और वहाँ के विद्यार्थियों के सामाजिक रहन-सहन की जानकारी अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए। एक ईसाई स्कूल में एक प्रचीन सभ्यता के अनुयायी की कन्या शिक्षा प्राप्त कर अपने माता-पिता के जीवन को सुखी नहीं बना सकती। अंग्रेजी रंग-ढंग से रह और शिक्षा प्राप्त कर किसीको अपने देश की प्रथा के अनुकरण करने वाले युवक के साथ विवाह हो जाने पर वह गृहस्थी सुखी नहीं बना सकती। अतएव अपनी रहन-सहन, अपनी अवस्था, अपने आदर्श का ध्यान में रख कन्या को उपयुक्त स्कूल में भरती कराना चाहिए। कन्या का भोला-भाला आदर्श उसकी शिक्षिका ही रहती है। वह अपने साथ की सहेलियों को मित्रता और प्रेम के सूत्र में बांधती है; उनकी आदतें और उनके विचारों को धीरे-धीरे गृहण करती जाती है। यह सोचना कि जब वह गार्हस्थ जीवन में प्रवेश करेगी, तब अपनी राह पर लौट आवेगी, भारी भूल है। कोमल दिमाग पर स्कूल की आबहवा का बड़ा प्रभाव पड़ता है। वह जीवन-भर नहीं मिटता। अतएव अनिष्ट घटनाओं को होने देना ठीक नहीं है।

घर में किसी भी विषय की शिक्षा देते समय माता-पिता

को चाहिए कि वे केवल शब्दों का जाल बिछा देने का प्रयत्न न किया करें। उदाहरण द्वारा और स्वयं प्रत्येक कार्य में अग्रसर होकर मार्ग दिखलाने की कोशिश करनी चाहिए। बालिका के जीवन का यह महान काल है; उसकी अवस्था (शारीरिक) पर विशेष ध्यान रहे। उसमें व्यायाम और शुद्ध वायु-सेवन की आदत डालना चाहिए जिससे कि शरीर के प्रत्येक अंग सुरूप-से पुष्ट हो सकें और वह बिना अधिक कष्ट के भविष्य में उत्तम बल-शाली माता बन उत्तम तथा हृष्ट-पुष्ट सन्तान पैदा कर सृष्टि-कर्त्ता के उद्देश्य को पूर्ण कर सके। यदि उसे बलशाली और सुयोग्य बनाना है तो उचित भोजन, व्यायाम और सुखमयी निद्रा में बाधा न डालना चाहिए। ये सब छोटी-छोटी बातें अवश्य हैं, पर ये ही उसके भविष्य का निर्माण करती हैं।

भारतवर्ष में शिक्षा के प्रचार की चर्चा जोर-शोर से हो रही है और अब हमारी देवियां कालेज की शिक्षा प्राप्त करने लगी हैं। हर्ष है कि विद्या-प्राप्ति की ओर उनकी रुचि और अवसर का क्षेत्र पा रहा है, परन्तु ऐसी देवियों को हमेशा यह याद रखना चाहिए कि एक विषय—उन्हें अवश्य सीख लेना चाहिए। भोजन पकाना और घर के भिन्न-भिन्न कामों का प्रबन्ध करना—पढ़ने-लिखने का अभिमान कभी-कभी देवियों को पुस्तक का कीड़ा बना देता है। घर-गृहस्थी की बातें सीखना वे अपनी शान के खिलाफ समझती हैं। इस विषय का बहिष्कार कर वे स्त्री कहलाने का दावा नहीं कर सकतीं। उनका सबसे प्रथम और महान् उद्देश्य होना चाहिए कि वे "सच्ची भारतीय देवियां" बनें।

हमारी छोटी गृहिणी में एक विशेष बात और भी पाई जाती

है। यह दुर्गुण है अथवा गुण, इसका निर्णय करना कठिन ज्ञात होता है। स्त्रियाँ अपने मन की बातों को प्रायः छिपा कर रखती हैं। वे अपनी कल्पनाओं और आशाओं को हृदय के किले में बन्द रखती हैं। कितने युवकों को आपने कहते सुना होगा कि "मैं एक सुन्दर पढ़ी-लिखी या धनवान लड़की के साथ शादी करूँगा।" परन्तु कितनी देवियां आपको अपने जीवन में आजतक मिलीं, जिन्होंने स्वाभाविक लज्जा को त्याग कर मुँह से स्पष्ट शब्दों में अपने भावी पति के विषय में विचार प्रगट किये हों ? दिमाग़ विचारों को पैदा अवश्य करता है, पर स्त्रियां उनको प्रकाश में नहीं आने देतीं। उक्त विचार केवल उदाहरण-मात्र है। अतएव माता-पिता को उनके कोमल हृदय को अपने ही निर्णय की धार से छील न देना चाहिए, अपनी पुत्री के विचारों को बिना समझे, उसकी ग़लती को बिना देखे, उसका गला न घोंटते जाना चाहिए। स्त्री ईश्वर की महान समस्या है, उसे धीरज और प्रसन्नता से हल करते रहना चाहिए ?

यद्यपि भारतीय अपनेको बड़ा धार्मिक कहने का दावा करते ; परन्तु यह बन्धन कितना ढीला है, यह सभी स्वीकार करते हैं। प्रातःकाल उठ कर, नित्य क्रिया से निवृत्त हो, कन्या का कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपने टूटे-फूटे शब्दों में ईश्वर की आराधना करे; फिर माता-पिता को प्रणाम कर अन्य कार्य्य में लग जावे। ईश्वर-आराधना एक अमोघ शक्ति है; विश्वसनीय है; जब संसार में चारों ओर अन्धकार दीखता है तब इसी प्रार्थना की दिव्य ज्योति हमारे हृदय में एक नवीन आशा का प्रादुर्भाव करती है। पाठक-पाठिकाओं यह विश्वास हमेशा फलदायक सिद्ध

होता है। एक हिन्दू कन्या की निम्नलिखित प्रार्थना किसके मन को न लुभावेगी:—

प्रात समय नित शैया से उठ राम-नाम-गुण गाती हूँ।
मातु-पिता को कर प्रणाम मैं हृदय अधिक सुख पाती हूँ॥
दिव्य सुशीतल जल में मंजन कर, मैं बनती धन्या हूँ।
बहिनो! यही प्रकृति है मेरी, मैं हिन्दू की कन्या हूँ॥
स्निग्ध सलिल युत रक्त पुष्प से सूर्य अर्घ्य नित देती हूँ।
"दृढ़ मति रहे धर्म में अपनी" यह वर उनसे लेती हूँ॥
फिर गो ब्राह्मण को प्रणाम कर नित प्रति बनती धन्या हूँ।
बहिनो! यही प्रकृति है मेरी, मैं हिन्दू की कन्या हूँ॥
तब दुर्गा के विमल पाठ को मन पढ़ मोदक लहती हूँ।
शुचि मानस से सीता या सावित्री के गुण कहती हूँ॥
नित प्रति भारत-वीर-प्रसू गुण गा कर बनती धन्या हूँ।
बहिनो! यही प्रकृति है मेरी, मैं हिन्दू की कन्या हूँ॥

मातृ-मन्दिर

"अपनी शक्ति से संसार की चक्की को चलानेवाली धारा का जन्म एकान्त स्थान में होता है।"

—एक विद्वान

"गृह नम्रता की सच्ची पाठशाला है, जिसकी सर्वोत्तम क्रियात्मक शिक्षिका हमेशा हमारी स्त्री रहती है।"

—स्माइल्स

जबतक हमारे हाथ में कोई वस्तु है, तबतक उसके मूल्य को समझना बड़ा ही कठिन है। परन्तु ज्योंही हम उससे पृथक् होते हैं, त्योंही उसकी जुदाई और उपयोगिता हमारे हृदय में अनुभव होने लगती है। मातृ-मन्दिर में रहते हुए हम उसकी सुन्दरता और उसके जीवन-व्यापक प्रभाव को नहीं जानते। जीवन में क़दम बढ़ जाने पर हमारी आंखों के सामने मातृ-मन्दिर की दीवारें नाचने लगती हैं और स्वप्न में हम अपनी इस बाल-क्रीड़ा-भूमि को प्रणाम किये बिना नहीं रह सकते।

यह स्वाभाविक ही तो है। यहां की सुगन्धित पवन ने क्या हमारे रक्त को शुद्ध नहीं किया? यहां की घनी छाया ने क्या आवश्यकताओं की कड़ी धूप से हमारी रक्षा नहीं की? इसकी सीमा के भीतर क्या हमने बार-बार गिर कर उठना नहीं सीखा? जब हम बाह्य जगत् में व्याधियों से घिर जाते थे तब हमें किस [illegible] में शरण मिलती थी? आज भी जब हम जीवन से घबरा

उठते हैं, क्या तब हम ईश्वर से यह प्रार्थना नहीं करते कि "भगवन्, मातृ-मन्दिर कहां है? हमें एक बार फिर वहीं पहुँचा दो।"

बहनो! तुम्हारे भाइयों की अपेक्षा मातृ-मन्दिर तुम्हारे लिए और भी आदर और श्रद्धा की वस्तु है। यहां पर तुम्हें अनेकों सद्गुणों को सीख लेना चाहिए। तुम्हारे भाई तो यहीं पर रहेंगे। पर तुम तो कुछ ही दिन में इस मातृ-मन्दिर की एक मिहमान मात्र रह जाओगी। इस मन्दिर में तुम जो कुछ ले जाओगी वह तुम्हारा जीवन-संगी होगा। यदि तुम गुणवती होकर यहां से जाओगी तो तुम्हारा जीवन अमर हो जावेगा। समाज उन्नति के मार्ग पर बढ़ने लगेगा। यदि इसके विपरीत तुमने यहां कुछ न सीखा तो स्वयं तो कष्टमय जीवन व्यतीत करोगी ही, अपनी सन्तान के जीवन को भी नष्ट करोगी, और समाज एवं देश के लिए कुछ भी उपयोगी न हो। अपने जीवन को निरर्थक सिद्ध करोगी।

माता के उदर से पहले-पहल इसी मन्दिर में तुमने मातृ-भूमि की रज में लोटना प्रारम्भ किया। यहीं की स्वतंत्र वायु और प्रकाश में तुमने पहले-पहल अपने छोटे-छोटे हाथ पैर फेंकना शुरू किया था। यह मन्दिर तुम्हारी मंगल-ध्वनि से एक दम आनन्दित हो उठा था। ईश्वर की हे अनूठी आभा, इस लोक को दिव्य करने के लिए उस दिव्य-लोक से तुमने मातृ-मन्दिर में पदार्पण किया था।

तुम्हें अपनी गोद में लेते माता के हृदय में सैकड़ों मधुर अभिलाषाओं और स्वप्नों का उदय होता है, वह सोचती है कि मेरी प्यारी बच्ची कब मुझे 'माँ' कह कर पुकारेगी, वह कब

बोलेगी, कब चलना-फिरना सीखेगी, इत्यादि। पर इसके अतिरिक्त कितनी माताओं का ध्यान सच्ची शिक्षा की ओर जाता है? माता का प्रेम अटूट होता है। पर उनमें से बहुत कम मातायें इस बात को समझती हैं कि उनके प्रत्येक आचार व्यवहार, बोल-चाल आदि का इस अबोध सन्तान पर क्या असर पड़ता है। अतः कई नासमझ मातायें अपने बालकों के प्रेम में इतनी पागल हो जाती हैं कि अपने आचार पर तो वे ध्यान रखती ही नहीं पर यदि बच्चे उनकी बुरी बातों का अनुकरण करते हैं तो वे मारे खुशी के फूली नहीं समातीं। कहीं-कहीं तो यहां तक देखा जाता है कि माता अपने अज्ञान बालकों द्वारा दूसरे लोगों को गाली दिलाती हैं, और जब वे तुतलाते हुए गाली देते हैं तो सब हंसते हैं। बालक क्या जाने कि इस गाली में कोई विरोधता है। उसकी विश्वव्यापी दृष्टि में तो अमृत और विष दोनों समान ही हैं; परन्तु जब वही बालक बड़ा होने पर उसी गाली द्वारा अपनी माता का आदर करता है, तब माँ मारने को दौड़ती है। भला यह भी कहीं का न्याय है? अतः बालक-बालिकाओं की शिक्षा तो बाल्यावस्था से ही शुरू हो जानी चाहिए। यह ख्याल गलत है कि शिक्षा देने का दिन स्कूल में बैठाने से ही शुरू होता है। एक दिन एक माता ने अपने चार वर्ष के बालक को गोद में लेकर एक पुरोहित से पूछा !—पुरोहितजी इस बालक की शिक्षा कबसे शुरू करनी चाहिए?

पुरोहित—यदि तुमने अभीतक शुरू नहीं की, तो ये चार वर्ष तुमने व्यर्थ ही गवां दिये। शिक्षा का समय तो बालक के गालों पर जबसे मधुर मुस्कान खिलने लगती है, तभी से प्रारंभ

हो जाता है।" क्या ही अनूठा सत्य है ! माताओ और बहनो, बालक-बालिकाओं के रूप में ये तुम्हारे पर देवदूत आये हैं। संसार के कलुषित वायुमण्डल से इनकी सदा रक्षा करती रहना तुम्हारा परम-धर्म है। किसी विद्वान ने लिखा है:—

"जिस गृह में प्रेम और कर्त्तव्य का राज्य रहता है, जहां हृदय और दिमाग़ बुद्धिमानी से शासन करते हैं, जहां का प्रतिदिन का जीवन सफाई और सद्गुण-पूर्ण रहता है, जहां का शासन बुद्धि, दया और प्रेम-पूर्ण रहता है, ऐसे गृह से स्वस्थ्य सुयोग्य और आनन्दी बालक निपजते हैं। बड़े होने पर वे अपने माता-पिता के चरणचिन्हों को देख कर चलते हैं; जो न्याय्य तरीक़ों से संसार में बढ़ते हैं; जो अपने ऊपर बुद्धिमत्ता से शासन कर अपने आसपास के लोगों की भलाई करते हैं। इसके विपरीत जहां अज्ञान, रूखापन, और स्वार्थ का वायु-मंडल होता है वहां वे उसी तरह का आचरण सीख लेते हैं और बड़े होने पर असभ्य आचरण करते हैं। संसार के प्रलोभनों में पड़ कर वे समाज के लिए बड़े ही भयंकर सिद्ध होते हैं।"

मातृ-मन्दिर में ही भली-बुरी आदतें बनती हैं और इच्छा-शक्ति और चरित्र-निर्माण का प्रारम्भ होता है। आदर्श माता अपनी सन्तान को सुधारने में और उन्नति करने में कोई कसर नहीं रखती। स्वयं उसका उदाहरण ही बड़े भारी गुरु का काम देता है। राष्ट्रपति जार्ज वाशिंग्टन पिता की मृत्यु के समय केवल ११ वर्ष के थे। इनके चार भाई और थे। विधवा माता पर कुटुम्ब का सारा भार आ पड़ा। माता बड़ी ही चतुरा और प्रबन्ध-कुशल थी। उसका आचरण अत्यन्त उत्तम था। उसकी

कि "लड़की जबतक यहां है, तब तक तो उसे अच्छे-अच्छे कपड़े और गहने पहिन लेने दो। जब दूसरे घर में पहुँच जावेगी, तब अवस्थानुकूल काम लेगी।" बेचारी उन नासमझ माताओं को शायद पता नहीं है कि उनके इस छोटे से सीधे-सादे विचार ने कितनी गृहस्थियों को मिट्टी में मिला दिया। बाल्यकाल की आदत बढ़ती ही जाती है और यदि पति की शक्ति पत्नी की इच्छायें पूर्ण करने योग्य नहीं हुई, और यह इस प्रतिद्वन्दता के युग में असाधारण बात नहीं है, तो दाम्पत्य प्रेम दुर्लभ हो जाता है। क्या पाठक और पाठिकायें नहीं जानतीं कि कितनी स्त्रियां अपने स्वामियों से इन्हीं दो बातों पर रात-दिन लड़ाई झगड़ा किया करती हैं? यही नहीं, बल्कि कहते हुए लज्जा के मारे सिर झुक जाता है कि अपनी इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए कई स्त्रियां तो अपना यौवन और धर्म भी बेच डालती हैं। यह उसी कुशिक्षा और गहने कपड़े के पापी मोह का और नासमझ माताओं के मूर्ख प्रेम का परिणाम है।

मातृ-मन्दिर में ही बालिका को नियमानुसार और विधिपूर्वक सब काम करने की दीक्षा अवश्य मिलनी चाहिए। कौन सी वस्तु किस स्थान पर रखी जाना चाहिए, कौन सा कार्य पहिले करना चाहिए,—इत्यादि बातें उन्हें अच्छी तरह बताना चाहिए। नीरोग जीवन का पहला आधार स्वच्छता है, इस ओर कितनी स्त्रियों का ध्यान जाता है? शारीरिक स्वच्छता और घर की स्वच्छता का, एक दूसरे से अटल सम्बन्ध है बालिका को इसका पूरा ज्ञान करा देना माता का पहला कर्त्तव्य है। कई घरों में रंगीन कपड़े इसलिए पहिने जाते हैं, कि वे मैल छिपा लेते हैं। और इसलिए

कपड़े धोने में भी स्त्रियां सुस्ती करती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिदिन के स्नान करने पर भी शरीर से दुर्गन्ध आती रहती है। इसका कारण यह मैला कपड़ा है। इसी तरह स्त्रियां प्रायः अपना सुन्दर मुँह और हाथ पैर धो लिया करती हैं, शरीर के अन्य अंगों पर पानी डाल लिया जाता है। यह प्रायः सभी गृहों में होता है। इसका प्रधान कारण यह है कि पाश्चात्य लोगों के समान हम लोगों के गृह में स्नानागार नहीं रहते। फिर भला स्त्रियां निसंकोच भाव से किस प्रकार स्नान कर सकती हैं? जहां नदियों और कुए के घाटों पर स्नान करना पड़ता है, वह भी उस समय जब कि घाट पर अन्य पुरुष और स्त्रियां उपस्थित रहती हैं, वहां संकोच और शील को बेचारी कैसे छोड़ दें? फलतः कौवा स्नान करके उन्हें रह जाना पड़ता है। ऐसे स्नान से शरीर को विशेष लाभ नहीं होता। हमारा देश गरम है, अतः आरोग्य और स्वच्छता की दृष्टि से स्नान हमारे लिए परम आवश्यक है। भारतीय जन-समाज को चाहिए कि अपनी गृहिणियों की स्वतन्त्रता और लज्जा की रक्षा का ध्यान रखते हुए उनके नहाने-धोने का समुचित प्रबन्ध कर दे।

मातृ-मन्दिर में बालिका को पाक-शास्त्र की शिक्षा देना हर एक माता का कर्त्तव्य है, जिससे 'नवीन जगत' में प्रवेश कर वे अपने हाथ से सब प्रकार के पदार्थ तैय्यार कर सकें। प्रति दिन उपयोग में आनेवाली चीजों का तैय्यार करना जान लेना प्रत्येक स्त्री के लिए परम आवश्यक है। भोजन स्वच्छता से बनाना सिखाना चाहिए। बहनो, रसोई बनाने बैठने के पहले समस्त आवश्यक वस्तुओं को रसोई घर में पहले एकत्रित कर के रख

लेना चाहिए। इससे तुम्हें वारबार उठना नहीं पड़ेगा और तुम्हारा काम भी शीघ्रता से हो जावेगा। प्रायः देखा जाता है कि दाल पकाते समय स्त्रियां नमक मिर्च के लिए बाहिर जाती हैं या चावलों से भरे बर्तन को उतारने के लिए किसी वस्त्र या संसी की खोज में घर में दौड़ती फिरती हैं। इससे परेशानी होती है और भोजन भी खराब हो जाता है। भूल कर भी अपने आँचल के कपड़े से आग पर से कोई चीज न उतारनी चाहिए। इसी तरह की और और छोटी छोटी बातों पर भी माताओं को अपनी लड़कियों का ध्यान दिलाना चाहिए।

मतलब यह कि शारीरिक स्वच्छता, गृह-कर्तव्य और सदाचार का पूर्ण ज्ञान बालिका को मातृमन्दिर में ही मिल जाना बहुत जरूरी है। ये भविष्य की निर्मात्री हैं। संसार की सभ्यता उनके कर्तव्य पर टिकी हुई है। भावी पीढ़ी की ये नींव हैं। कमजोर की संसार में स्थान नहीं। और दुराचार देश, समाज और कुल का भी नाश करता है। यह उन्हें ध्यान में रखना चाहिए।

लापरवाह माता पिता की संतान कहती है "हे भगवान! हमें यदि जन्म ही देना था तो किसी सद्गुणी माता-पिता की गोद में भेजते। मेरे जीवन-मरने को पूर्व से ही विषयुक्त कर माता पिता दूर होगये। अब मैं क्या करूं? मेरा जीवन भयंकर यातनाओं और पाप कर्मों से पूर्ण हो रहा है। मानसिक चिन्ता और विकार एक क्षण चैन नहीं लेने देते। अब तो केवल मृत्यु ही का आधार है।"

भावना और नवीन पौदों का स्पर्श—ये सब उनके लिए संजीवन हैं। उनके इस जीवन में तुम समुद्र की उस लहर के समान हो जो निर्जन किनारे को पानी से प्लावित कर देती है। क्या तुम उनके हृदय को आनन्द और आशा से परिपूर्ण नहीं करोगी?*"

बहन, यह देखो स्वर्ग का राज्य तुम्हारे हाथ में है, उसे फेंक दो या पकड़े रहो।

---

* एक पाश्चात्य लेखक।

सरस्वती-उपासना

(१)

"एक अच्छी पुस्तक महान् आत्मा के जीवन का बहुमूल्य रक्त है, जो जीवन के लिए सुरक्षित किया हुआ है।"

—मिल्टन

प्यारी बहनो ! हमें इस समय विशाल अट्टालिकाओं की आवश्यकता नहीं है, गगन चुम्बी मन्दिरों की आवश्यकता नहीं है, नाटकालयों और संगीतालयों की आवश्यकता नहीं है; यदि कोई वस्तु आवश्यक है, जिसके प्राप्त हो जाने पर कोई भी बात अ-प्राप्य न रहने पावेगी, तो वह है सरस्वती की उपासना।

भला भारतवर्ष में वह दिन कब आवेगा, जब घर-घर में पुस्तकालय रहेंगे ? उनके द्वारा संसार के समस्त विद्वान् हमारी सहायता और सलाह के लिए प्रतिक्षण तैयार रहेंगे। भला कौन नहीं जानता कि "ग्रन्थ हमारे गुरु हैं। ये कभी शब्द नहीं बोलते, कभी क्रोध नहीं करते और न हमसे द्रव्य की ही चाह करते हैं। किसी समय उनके पास जाओ, ये सोते हुए नहीं मिलेंगे; किसी विषय पर विचार करते हुए तुम उनसे प्रश्न करो, तो वे उत्तर देने में कोई बात छिपा नहीं रखते। अगर उनका कहना तुम्हारी समझ में न आये तो ये नाराज नहीं होते। तुम्हारी नासमझी की ये हँसी नहीं उड़ाते।" इसलिए क्या ज्ञान से भरे ग्रन्थों का संग्रह संसार की संपूर्ण संपत्ति से श्रेष्ठ नहीं है ? अच्छे ग्रन्थ-भण्डार की बराबरी किसी वस्तु से नहीं हो सकती।

भावना और नवीन पीढ़ी का स्पर्श—ये सब उनके लिए संजीवन हैं। उनके इस जीवन में तुम समुद्र की उस लहर के समान हो जो निर्जन किनारे को पानी से प्लावित कर देती है। क्या तुम उनके हृदय को आनन्द और आशा से परिपूर्ण नहीं करोगी?*"

बहन, यह देखो स्वर्ग का राज्य तुम्हारे हाथ में है, उसे फेंक दो या पकड़े रहो।

---

* एक पाश्चात्य लेखक।

सरस्वती-उपासना

(१)

"एक अच्छी पुस्तक महान् आत्मा के जीवन का बहुमूल्य रक्त है, जो जीवन के लिए सुरक्षित किया हुआ है।"

—मिल्टन

प्यारी बहनो! हमें इस समय विशाल अट्टालिकाओं की आवश्यकता नहीं है, गगन चुम्बी मन्दिरों की आवश्यकता नहीं है, नाटकालयों और संगीतालयों की आवश्यकता नहीं है; यदि कोई वस्तु आवश्यक है, जिसके प्राप्त हो जाने पर कोई भी बात अ-प्राप्य न रहने पावेगी, तो वह है सरस्वती की उपासना।

भला भारतवर्ष में वह दिन कब आयेगा, जब घर-घर में पुस्तकालय रहेंगे? उनके द्वारा संसार के समस्त विद्वान् हमारी सहायता और सलाह के लिए प्रतिक्षण तैयार रहेंगे। भला कौन नहीं जानता कि "ग्रन्थ हमारे गुरु हैं। ये कड़े शब्द नहीं बोलते, कभी क्रोध नहीं करते और न हमसे द्रव्य की ही चाह करते हैं। किसी समय उनके पास जाओ, वे सोते हुए नहीं मिलेंगे; किसी विषय पर विचार करते हुए तुम उनसे प्रश्न करो, तो वे उत्तर देने में कोई बात छिपा नहीं रखते। अगर उनका कहना तुम्हारी समझ में न आये तो ये नाराज नहीं होते। तुम्हारी नासमझी की ये हँसी नहीं उड़ाते।" इसलिए क्या ज्ञान से भरे ग्रन्थों का संग्रह संसार की संपूर्ण संपत्ति से श्रेष्ठ नहीं है? अच्छे ग्रन्थ-भण्डार की बराबरी किसी वस्तु से नहीं हो सकती।

भावना और नवीन पीढ़ी का स्पर्श—ये सब उनके लिए संजीवन हैं। उनके इस जीवन में तुम समुद्र की उस लहर के समान हो जो निर्जन किनारे को पानी से प्लावित कर देती है। क्या तुम उनके हृदय को आनन्द और आशा से परिपूर्ण नहीं करोगी?*"

बहन, यह देखो स्वर्ग का राज्य तुम्हारे हाथ में है, उसे फेंक दो या पकड़े रहो।

---

* एक पाश्चात्य लेखक।

रही हो, तब तक तुम्हारा विशेष लाभ होने की संभावना नहीं। मानव-जीवन के पर्व नियमित हैं। समय नष्ट कर देने अथवा बुरी आदतों को ग्रहण कर लेने में दुख उठाना पड़ता है। सम्हल-सम्हल कर एक-एक क़दम आगे बढ़ाने में ही सुभीता है और यह ज्ञान हमें अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने से बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है।

पुस्तक पढ़ने के प्रायः दो उद्देश्य रहा करते हैं; एक तो पढ़ने की बीमारी, और दूसरा विचार सुलझाने की गरज। पढ़ने की बीमारी से अभिप्राय यह है कि कई व्यक्ति रात-दिन पढ़ने में ही लगे रहते हैं। यह एक प्रकार की आदत पड़ जाती है। इससे आगे उनका कोई अभिप्राय नहीं रहता। जिस प्रकार एक अफ़ीमची को बिना अफ़ीम के चैन नहीं पड़ती, उसी प्रकार इस श्रेणी के पाठक को बिना पुस्तक चैन नहीं पड़ती। चाहे पुस्तक किसी प्रकार की हो, समय व्यतीत करना ही उनका उद्देश्य है। बहनो! घर-गृहस्थी के काम के कारण न तुम्हारे पास इतना समय है, और न यह रोग ही अच्छा है; अतएव इससे अपने आपको हमेशा बचाये ही रखना चाहिए।

पुस्तक पढ़ने का दूसरा उद्देश्य सर्वोत्तम है। एक कवि का कथन है—

आओ-आओ प्यारी पुस्तक, मम कर-पंकज में खेलो,
खोलो तीनों द्वार दया कर, भीतर मेरा मन लेलो।
तुम मयंक हो, मैं चकोर हूँ; सुमति-सुधा-रस पीता हूँ,
इस सेही सम-विषम-काल में, शान्ति-भाव रख जीता हूँ।

सत्य, सुख, ज्ञान और भक्ति का लाभ प्राप्त करने की इच्छा तो ग्रन्थावलोकन करना चाहिए।"

सद्ग्रंथ सचमुच जीवन को स्वर्ग-मय बना देता है। ह गिरने से बचा लेते हैं; अन्धकार-अज्ञान को दूर कर हमें ज्ञान-सूर्य के उज्वल प्रकाश में खड़ाकर देते हैं। पर कई बह पुस्तकों को स्त्री-जाति के लिए हानिकारक बतलाती हैं। क सासुयें अपनी बहुओं को पुस्तक पढ़ते देख 'मेम साहब' व उपाधि से उनका तिरस्कार करती हैं। कई तो और भी एक क़द आगे बढ़ जाती हैं। वे कहती हैं, हमारे बाप-दादों के जमाने किसी स्त्री ने पुस्तक नहीं पढ़ी। और कोई-कोई तो पुस्तक पढ़ से अशुभ और मृत्यु तक की आशंका करने लगती हैं। य कहीं तुम्हें इसी तरह की समस्या का सामना करना पड़े, त घबराओ मत। अपने से बड़ों की अवहेलना कर, उनकी आज्ञ के विरुद्ध चलने का मार्ग मत ढूँढ़ो। प्राचीन काल में भारत क स्त्रियाँ तो बड़ी विदुषी होती थीं। बीच में ऐसा निकृष्ट काल गया, जिसमें इस देश के लोगों में कुछ हीन संस्कार जड़ पकड़ गये हैं। अतः तुम उन्हें युक्ति-पूर्वक दूर करने की कोशिश कर और उन्हें समझाओ। प्रेम और उदाहरण से पुस्तक पढ़ने क उपयोगिता उन्हें बतलाओ। एक दिन अवश्य आयगा जब वे तुम्हारी बात स्वीकार कर लेंगी और तुम्हारे सुख का मार्ग खोल देंगी।

पुस्तक पढ़नेवालों को अपने उद्देश्य को समझ लेना चाहिए। बिना लक्ष्य निर्दिष्ट किये आगे बढ़ना ठीक नहीं। तुम्हें जब तक यह न ज्ञात हो जाय कि कि तुम क्यों पढ़ रही हो, क्या पढ़

रही हो, तब तक तुम्हारा विशेष लाभ होने की संभावना नहीं। मानव-जीवन के वर्ष नियमित हैं। समय नष्ट कर देने अथवा बुरी आदतों को ग्रहण कर लेने में दुख उठाना पड़ता है। सम्हल-सम्हल कर एक-एक क़दम आगे बढ़ाने में ही सुभीता है और यह ज्ञान हमें अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने से बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है।

पुस्तक पढ़ने के प्रायः दो उद्देश्य रहा करते हैं; एक तो पढ़ने की बीमारी, और दूसरा विचार सुलझाने की गरज। पढ़ने की बीमारी से अभिप्राय यह है कि कई व्यक्ति रात-दिन पढ़ने में ही लगे रहते हैं। यह एक प्रकार की आदत पड़ जाती है। इससे आगे उनका कोई अभिप्राय नहीं रहता। जिस प्रकार एक अफ़ीमची को बिना अफ़ीम के चैन नहीं पड़ती, उसी प्रकार इस श्रेणी के पाठक को बिना पुस्तक चैन नहीं पड़ती। चाहे पुस्तक किसी प्रकार की हो, समय व्यतीत करना ही उनका उद्देश्य है। बहनो! घर-गृहस्थी के काम के कारण न तुम्हारे पास इतना समय है, और न यह रोग ही अच्छा है; अतएव इससे अपने आपको हमेशा बचाये ही रखना चाहिए।

पुस्तक पढ़ने का दूसरा उद्देश्य सर्वोत्तम है। एक कवि का कथन है—

आओ-आओ प्यारी पुस्तक, मम कर-पंकज में खेलो,
खोलो तीनों द्वार दया कर, भीतर मेरा मन लेलो।
तुम मयंक हो, मैं चकोर हूँ; सुमति-सुधा-रस पीता हूँ,
इस सेही सम-विषम-काल में, शान्ति-भाव रख जीता हूँ।

घर में, वन में, कारागृह में, सदा सदय होकर आओ;
संत-वीर-पुरुषों के सुखप्रद, रोचक चरित सुना जाओ।

पुस्तक पढ़ने का अभिप्राय है, संकुचित विचारों को दूर कर उनके स्थान में उच्च और पवित्र विचारों को भरना। पुस्तकें पढ़ने से मनुष्य-समाज को उचित रीति से समझने शक्ति हमें प्राप्त होनी चाहिए। स्वयं-निर्णय की शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। दूसरों की वाक्य-धारा में हम तुच्छ कण-से बह न जावें; इस भय को दूर करना ही ग्रन्थ-वाचन का उद्देश्य होना चाहिए। जब तुम महान् उद्देश्य को सामने रख कर पुस्तकें पढ़ना शुरू करोगी, तब तुम्हें बड़ा ही आनन्द आयेगा और तब तुम प्रसिद्ध कवि, सौदे के इन शब्दों की महत्ता समझने लगोगी—

सदा महा पुरुषों के संग में, दिन मेरे सब जाते हैं।
जहाँ देखता, वहीं, पुराने, पंडित मुझे दिखाते हैं॥
मेरे परम-मित्र वे, उनसे दूर नहीं मैं जाता हूँ।
प्रतिदिन मैं उनसेही बातें करने में सुख पाता हूँ॥
सुख में उनकीही संगति से सुख मेरा अधिकाता है।
दुख में उनके आश्वासन से दुःख दूर हो जाता है॥
इन सबके कृत उपकारों का स्मरण मुझे जब आता है।
अश्रु-बिन्दुओं से कपोल-दल गीला हो हो जाता है॥
सुधि उनकी कर, साथ उन्हींके पूर्वकाल में रहता हूँ।
कर उनके गुण-गान, अवगुणों को मैं दूषित कहता हूँ॥
उनके भय, उनकी आशायें, बाँट सभी मैं लेता हूँ।
बन विनम्र उनके चरितों से मन को शिक्षा देता हूँ॥
उन विद्वानों ही से मुझको आशा, उनपरही विश्वास।
उनकीही संगति में मेरा होगा अन्त चिरन्तर वास॥

उनकाही सहचर भविष्य में वन में समय बिताऊँगा।
आशा है अविनाशी, यश मैं छोड़ विश्व में जाऊँगा॥

युद्ध के वर्णन की पुस्तक पढ़ते समय सैकड़ों हृदय-विदारक दृश्य सामने आ उपस्थित होते हैं। वह देखो, छप से तलवार चल गई, नरमुंड धरती पर गिर पड़ा। वह देखो, विजयी वीर घोड़ों पर चढ़े कितनी तेजी से दौड़े चले आ रहे हैं, फाटक सामने आ गया। घोड़ा कूद गया, एक अभागा बीच में पड़ गया, वह धूल में लोटने लगा! देखो, वहाँ घर में आग लगा दी। वहाँ खून की नदियाँ बहा दीं! कैसा भयंकर दृश्य है!

इतना ही नहीं, तुम्हारे हाथ में एक पुस्तक है। अशोक-वन का दृश्य आँखों के सामने है। सती सीता को रावण अनेकों प्रलोभन दिखला कर अपनाना चाहता है। परन्तु सीता कह उठती है—

"रावण! तू धमकी दिखाता किसे,
मुझे मरने का धोखो खतर ही नहीं।
मुझे मारेगा क्या अपनी खैर मना,
तुझे होनी की अपनी खबर ही नहीं॥
क्या तू सोने की लंका का मान करे,
मेरे आगे वह मिट्टी का घर ही नहीं।
मेरे मन का सुमेरु हिलेगा नहीं,
मेरे मन में किसी का भी डर ही नहीं॥
मेरी चाह जो थी तेरे मन में बसी,
क्यों न जीत स्वयम्वर तू लाया मुझे।

था कौन से देश में ये तो तू दे बता,
जहाँ पहुँची स्वयंवर की खबर ही नहीं ॥
तूने सहस्र अठारहें जो रानी वरीं,
हाय ! उनपर भी तुझको सबर ही नहीं ।
पर त्रिया पै तूने जो ध्यान दिया,
क्या निगोड़े नरक का खतर ही नहीं ॥
जो हुआ सो हुआ, अब भी मान कहा,
मुझे राम पै जल्दी से दे तू पठा ।
होगा ताज्जुब यह, वरना तू देखेगा फिर,
तेरे सर की कसम तेरा सर ही नहीं ॥
आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिल के सभी,
क्या मजाल जो शील को मेरे हरें ।
तेरी हस्ती ही क्या, सिवा राम पिया,
मेरी नजरों में कोई बशर ही नहीं ॥

भला बताओ, बहनो ! इन शब्दों से तुम्हारे दिल की क्या हालत होगी ?

यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ते समय एक अपूर्व ही आनन्द आता है । स्वामी सत्यदेव-कृत जर्मनयात्रा, कैलास या अमेरिका के भ्रमण या एक बंगाली-कृत भू-प्रदक्षिण आदि जब आप पढ़ेंगी तब कभी तो आप पिता-राइन (जर्मनी में) के तट पर सैर करते हुए अपनेको पावेंगी, कभी सुन्दर शुभ्र बर्फ से ढकी हुई हिमांचल की पहाड़ियाँ आपके हृदय को लुभा लेंगी, कभी अमेरिका के विशाल हरे-भरे खेतों और फलों से लदे हुए वृक्षों को देख आपकी इच्छा होगी कि हे ईश्वर, हमारे देश में भी इस युग को जन्म दे ! कभी पेरिस की नारियों के शृंगार और नगरी की

सुन्दरता को देख आप यहाँ ठहर जावेंगी, तो कभी जापान के भयंकर भूकम्प और ज्वालामुखी का वर्णन बड़ी तेजी से पढ़ कर समाप्त कर डालेंगी।

सावन का महीना तुम्हें कितना सुहावना मालूम होता है! इस कविता को तो ज़रा ध्यान से पढ़ कर देखो—

सावन मास सुहावन-भावन इसका हृदय अनोखा है,
झूम-झूम झलती झरझर, झोर झकोरा झोका है।
चारों ओर गगन-मण्डल में, छाये बादल काले हैं,
गूंज रहे मालती-लता पर, ये मलिन्द मतवाले हैं॥
चमक-चमककर चंचल चपला, पलपल में छिप जाती है,
नव-यौवना अधर विकसित-सी इसकी छटा सुहाती है।
मतवाली शाली खेतों में, झूमे हरियाली देखो,
मिले परस्पर गले प्रेम से, क्या भोली-भाली देखो॥
जलाशयों में विमल दोलती, नवल पंक्ति अरविन्दों की,
आनन्दित करती श्रवणों को मृदु-गुंजार मलिन्दों की।
रंग-बिरंगे विहँग मृदुल डालों पर बैठे झूल रहे,
भुला रहे औरों को रव से पर अपने को भूल रहे।
सचमुच मनभावन सावन की छवि मन हरने वाली है,
मानों प्रकृति-देवता ने सुमनों की साजी डाली है।*

है सुन्दर कि नहीं? बहनो, प्रेम शब्द तो तुमने सुना ही होगा। बाल्यकाल से लेकर मरण-पर्यन्त मनुष्य-जीवन प्रेम के बन्धनों से जकड़ा रहता है। साधारण जन-समाज में प्रेम शब्द का कैसा कलुषित अर्थ निकाला जाता है कि "प्रेम करना पाप

---

* श्रीमती सरस्वती देवी।

है।"; काम-वासना का प्रेम शब्द के साथ मूर्ख लोग अटल सम्बन्ध जोड़ते हैं। परन्तु जब तुम पढ़ोगी कि—

"सच्चा प्रेम वही कहलाता, जो स्वाभाविक होता है;
जिसे न छू पाती कृत्रिमता, जो न कपट का सोता है।
ऐसे रम्य प्रेम का झरना, जिस गृह में प्रतिदिन बहता,
वह गृह फिर अनुपम वैभव से, स्वर्गधरा-सा लह उठता।"

ठीक है, स्वर्ग तो वहाँ आ गया; परन्तु कवि यहीं नहीं ठहर जाता। उसे सांसारिक लोगों की कमजोरियां ज्ञात हैं, अतएव वह प्रेमियों को चेतावनी देता है—

पर ऐसे स्वर्गीय प्रेम का, निर्मल झरना कभी कहीं
विषय-वासना के दुरूह पर्वत से, टकरा जाय नहीं,
इसके लिए सदा तुम रहना सावधान मेरा उपदेश,
यदि इसके प्रतिकूल करोगे, तो भोगोगे दुष्कर क्लेश।

विषय-वासना की अग्नि ही तो अन्त में दुःखदाई सिद्ध होती है।

जब तुम रामायण पढ़ने बैठोगी, तब तो तुम्हारे दिमाग़ के लिए बहुत-सी सामग्री प्राप्त हो जायगी। सैकड़ों कहावतों के तौर पर उपदेश-युक्त वचन मिलेंगे। यहाँ उसके विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। यह एक तरह से हमारी धर्म-पुस्तक है और बहुत से घरों में प्रतिदिन इसका पाठ होता भी है। अन्य सैकड़ों प्रकार के उपदेश युक्त वचन तुम्हें ग्रन्थों में अनेक जगह मिलेंगे, जो मार्ग दिखाने में दीपक का काम देते हैं। एक स्थान पर श्री नाथूराम शंकर शर्मा कहते हैं:—

भलाई को न भूलेंगे, सुविधा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण को देंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे॥

वाह! क्या ही अच्छी बात है। यदि संसार में सुख प्राप्त करना है, तो इन शब्दों को कंठाग्र कर लो; किसी समय तुम्हें बड़े ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

सैकड़ों उदाहरण इस प्रकार के दिये जा सकते हैं, जहां माधुर्य और शिक्षा दोनों का अनुपम संयोग है। कविता ही नहीं, भाषा में भी हृदय पर इसी तरह के प्रभाव जमाने की शक्ति है। प्यारी बहनो, सरस्वती-मन्दिर में बैठ कर तुम बड़ा ही आनन्द प्राप्त करोगी। जिस समय दुःख की घटायें तुम्हारे हृदय में उठेंगी, तब तुम बेचैन हो जाओगी। सोचो तो जरा, क्या तुम्हें सांत्वना देनेवाला संसार में कोई नहीं है? है अवश्य, तुम्हारी सखी पुस्तक क्षणभर में तुम्हारी मानसिक वेदना को दूर कर देगी। जब भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों का युद्ध होने लगेगा और तुम निर्णय न कर सकोगी कि किस मार्ग का अवलम्बन किया जाय; बस उसी दम अपनी पुस्तक सखी के मुँह की ओर देखो; वह तुम्हारी कठिनाई दूर कर देगी। जब तुम्हारा काम समाप्त हो जाय, तो तुम्हें ज्ञात होने लगेगा कि हाय! अब मैं अकेली क्या करूँ? वाह! अरे क्या तुम अपनी सखी को भूल गई। दौड़ो, हर्ष से उसे अपने गले लगालो; बस, फिर तुम्हें कौन अकेली कह सकता है?

(२)

बहनो! अब तुमने पुस्तकाध्ययन की ओर अपनी रुचि लगाई है, तब तो तुम्हें यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि तुम कौन-कौन से ग्रन्थों को पढ़ो? यह समझना कि जो कुछ छपता है वह सच और अच्छा है, भारी भूल है। स्वार्थी लेखक

और प्रकाशक साहित्य-क्षेत्र को कलुषित करते रहते हैं। उन्हें तो पैसा चाहिए। जहाँ पुस्तक में चटकीली-भड़कीली बातें भर दीं कि उनकी खपत बाजार में हो ही जावेगी। कई व्यक्ति तो पुस्तक की ऊपरी सुन्दरता को ही देख कर खरीद लेते हैं। पर पुस्तक के कुछ पृष्ठों को पढ़ सभी उसके उत्तम या बुरे होने का अन्दाज नहीं लगा सकते। अतएव योग्य व्यक्तियों की ही सलाह पर चलना उचित है। जब कई पुस्तकों के अध्ययन से तुम्हारा दिमाग़ और आचरण दृढ़ता को प्राप्त कर लेगा, उस समय तुम किसी भी पुस्तक के सच्चे मूल्य को जान सकोगी और बुरी होने पर उसे छूत की बीमारी समझ उससे दूर रहोगी। उस परिपक्व अवस्था में महाकवि मिल्टन के ये वाक्य तुम्हारे लिए लागू होने लगेंगे कि "पवित्र मनुष्य के निकट सब वस्तुयें पवित्र हैं। खान-पान ही नहीं, सब प्रकार का पढ़ना भी—चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा। यदि अन्तःकरण शुद्ध है तो किसी प्रकार का पढ़ना वा किसी प्रकार की पुस्तकें उसे कलुषित नहीं कर सकतीं। पुस्तकें भोजन की सामग्री के समान हैं, जिनमें कुछ अच्छी होती हैं, और कुछ बुरी। लोग अपनी रुचि के अनुसार उनको चुन सकते हैं। जिसकी पाचन-शक्ति बिगड़ गई है, उसके लिए अच्छा भोजन और बुरा भोजन क्या? इसी प्रकार दुष्ट प्रकृति वाले के लिए उत्तम से उत्तम पुस्तकें भी अच्छे उपयोग में नहीं लाई जा सकतीं। पर पुस्तकों और खान-पान की वस्तुओं में यह अन्तर है कि निकृष्ट भोजन स्वस्थ से स्वस्थ शरीर को भी पोषण नहीं कर सकेगा, पर निकृष्ट पुस्तकें पर्यालोचन की शक्ति रखने वाले विवेक-शील पाठकों को पता लगाने, खंडन करने, सावधान

करने और दृष्टान्त देने में सहायता देती हैं।

बहनो! अब प्रश्न उठता है कि पढ़ा कैसे जावे? केवल अक्षरों को मिला कर पढ़ लेने से काम नहीं चलता। सैकड़ों व्यक्ति रात-दिन पढ़ा करते हैं। पुस्तकालय में उनके नाम के आगे एक महीने में १५-२० पुस्तकें लिखी रहती हैं। परन्तु यदि आप उनसे एक पुस्तक के बारे में भी कुछ पूछिए तो वे ऊटपटांग उत्तर देकर चुप रह जाते हैं। इतना ही नहीं, वे अपनी पढ़ी हुई पुस्तकों का नाम तक नहीं बतला सकते। भला इस तरह के पढ़ने से क्या लाभ?

थोड़ा पढ़ना और उसका पर्याप्त ज्ञान कर लेना इससे हजार गुना अच्छा है। मौका पड़ने पर आप अपने उपार्जित ज्ञान का तो उपयोग कर सकती हैं।

पुस्तक हाथ में पड़ते ही एक बार उसकी भूमिका देख लेना अच्छा है, क्योंकि विद्वान् लेखक पुस्तक में वर्णित बातों के विषय में यहीं पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। उसे देख लेने से, उनके दृष्टिकोण को समझ लेने पर, तुम्हारी अड़चनें सुलझ जायेंगी और तुम भ्रांति भावना में न पड़ने पाओगी।

प्रत्येक अच्छी पुस्तक को कम-से-कम तीन बार पढ़ना चाहिए। प्रथम बार सरसरी तौर से शुरू से आखीर तक बिना कठिन शब्दों और भावों पर ध्यान दिये पढ़ जाओ। यदि तुम्हारा हृदय कहे कि यह पुस्तक उपयोगी है, तब दूसरी बार अपने हाथ में पेन्सिल लेकर एक-एक पैरा धीरे-धीरे पढ़ना शुरू करो। जो शब्द कठिन हों उनके नीचे निशान लगा लो। जो वाक्य

समझ में न आता हो, उसकी बगल में आड़ी लकीर खींच दो तथा अपनी कठिनाइयों को किसी योग्य व्यक्ति से हल करा लो। यदि कोई सुन्दर भावना या कंठ कर लेने योग्य बात मिल जाय, तो झट लाल पेन्सिल से निशान लगा दो। यदि लेखक की किसी बात से तुम सहमत न हो, तो उसके आगे + चिन्ह बना दो। कुछ वर्षों तक तुम्हें इतने चिन्ह पर्याप्त होंगे। इसके बाद तुम्हारी बुद्धि स्वयं अनेकों उपयोगी चिन्ह ढूँढ़ लेगी।

पूरा पैरा उपर्युक्त से पढ़ने के बाद किताब बन्द कर दो और सोचो कि तुमने क्या पढ़ा है? यदि तुम्हारी स्मरण शक्ति इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय तो इसी तरह अगला पैरा पढ़ो अन्यथा पढ़े हुए को फिर से दोहरा जाओ। एक अध्याय समाप्त हो जाने पर उसके साथ भी इसी नियम का पालन करो। पुस्तक समाप्त होने पर देखो कि तुम्हें क्या-क्या याद है। ऐसा करने पर तुम्हें पुस्तक का रुथा ज्ञान हो जायगा और समय पड़ने पर अपने हृदय के खजाने के रत्नों को उपयोग में ला सकोगी। दिमाग की शक्ति भी बढ़ जायगी।

तीसरी बार का पढ़ना केवल तुम्हारी यहाँ-वहाँ भूली हुई बातों को फिर से ध्यान में ला देगा।

तुम कहोगी कि इस तरह से पढ़ने पर हम जीवन-भर में बहुत कम पुस्तकें पढ़ पावेंगी। हाँ, बात तो बिलकुल सच है। इसीलिए लेखक ने उपयोगी पुस्तकें ही पढ़ने की बात पर जोर दिया है। तुम्हें अपना जीवन-सुखी करना है, उपयोगी बनाना है, न कि पुस्तकों की संख्या के भार से लदी हुई अलमारी बनना

है। ऊपर लिखी हुई विधि केवल अत्यन्त उपयोगी पुस्तकों के विषय में है। मनोरंजन-साहित्य को अत्यन्त शीघ्रता से एक ही बार की पढ़ाई में समाप्त कर सकती हो। उदाहरणार्थ उपन्यासों, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को ही लो। इनमें ऐसी सामग्री बहुत कम रहा करती है, जिसे तुम अध्ययन करके पढ़ो। अतएव ऐसी चीजें रेल ट्रेन की सैरों में पढ़ी जा सकती हैं। आशा है, तुम इस पुस्तक से ही अध्ययन करके पढ़ने की विधि का श्रीगणेश करोगी।

पुस्तकों के चुनाव में सबसे पहले लक्ष्य आरोग्य-सुधार का होना चाहिए। शरीर परमात्मा का मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण किन-किन अवयवों से हुआ है, किस विधि से यह मन्दिर पवित्र और शुद्ध रक्खा जा सकता है, इत्यादि बातों का जानना प्रत्येक का कर्त्तव्य है। गृहस्थी में सन्तान धीरे-धीरे आती है। पति-पत्नी की इच्छा और प्रेम, एक नवीन शरीर में प्रविष्ट हो, संसार में आते हैं। उस समय प्रतिपल विविध प्रकार के परिवर्तन हुआ करते हैं। सैकड़ों प्रकार की व्याधि हो जाने का डर रहता है। अतएव इन सब बातों का ज्ञान और इन सबसे बचने का उपाय प्रत्येक जननी को जानना चाहिए। इसी प्रकार बालक का पालना भी सहज नहीं है। अज्ञान बालक अपने भावों को प्रकट नहीं कर सकता, फिर भला जनन-विज्ञान जाने बिना माता कैसे जननी कहला सकती है? घर गृहस्थी के कामों को किए बिना गृहिणी की उपाधि तुम्हें प्राप्त ही कैसे हो सकती है? बिना पाक-शास्त्र जाने तुम किस प्रकार सुन्दर-स्वादिष्ट भोजन के द्वारा अपने स्वामी और अपनी सन्तान का पालन कर सकती

हो ? अतएव तुम्हें सबसे पहले शरीर-विज्ञान, सन्तति-विज्ञान, पाक-विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन करना चाहिए।

दूसरा विषय हमारा धर्म है। केवल धर्म के बल से ही हम इस लोक और परलोक को सुधार सकते हैं।

सती नारियों के जीवन-चरित्र पढ़ना, उनके आचरण के अनुसार अपना आचरण बनाने का प्रयत्न करना भी तुम्हारा कर्त्तव्य होना चाहिए।

साथ ही तुम्हारा ध्यान अपने देश के इतिहास पर भी जाना चाहिए।

भूगोल और यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें तो बड़ी ही रोचक और उपन्यास के समान ही रहा करती हैं।

उपन्यास, नाटक और कहानियों का पढ़ना मनोरंजन और शिक्षाप्रद अवश्य रहता है। पर जासूस सम्बन्धी कहानियाँ पढ़ने में समय और शक्ति नष्ट करना हमारी देवियों के लिये उत्तम नहीं। पाठक-पाठिकाएँ अपने चरित्र को भी उसी प्रकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन विषयों पर स्त्रियों के पढ़ने योग्य हिन्दी संसार में मौलिक-ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं। उनमें से भी अधिकांश स्त्रियों के लिए केवल विडम्बना-मात्र हैं। हाँ, कुछ ऐसे भी हैं, जिनका पढ़ना आपत्ति-जनक नहीं कहा जा सकता।

इनके अलावा जीवन के लिए आवश्यक विषयों के विवेचनात्मक ग्रन्थों का मनन-पूर्वक पढ़ना भी बड़ा ही उपयोगी और सन्तान के लिए हितकर सिद्ध होगा। साथही ऊँचे दर्जे के मासिक पत्र-पत्रिकाओं से भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है।

विद्या और अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन फिर भी भारतवर्ष में

वही प्राचीन युग का संचार कर सकता है। कर्म ही की कमी है। बहनो! आत्म-सुधार का बीड़ा उठालो, फिर देखें, आधी शताब्दी में ही भारत की कायापलट कैसे नहीं होती। वीर और प्रतिभाशाली सन्तान कैसे उत्पन्न नहीं होती। सच है, हम ही हमारे भाग्य के विधाता हैं!

अनुपम शृंगार

कविता-कामिनी सुखद पद, सुवरन सरस सुजाति।
अलंकार पहरे विशद अद्भुत रूप लखाति॥
—महाकवि देव

"जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए एक बात आवश्यक है। द्रव्य नहीं, शक्ति नहीं, चतुरता नहीं, कीर्ति नहीं, स्वतन्त्रता भी नहीं, और स्वास्थ्य नहीं; परन्तु एक मात्र सदाचरण—ठीक सुशिक्षित इच्छा-शक्ति—ही ऐसा है जो वस्तुतः जीवन-संग्राम में हमारी रक्षा करता है और यदि हम इस दृष्टि से नहीं बचते हैं तो सचमुच हमारा नाश होना ही चाहिए।"
—स्लेकी

शृंगार आजकल की स्त्रियों का सब से पहला काम है। इसमें संदेह नहीं कि मानव-सौन्दर्य को अत्यन्त रोचक दिखाने के लिए शृंगार से बढ़ कर अन्य दूसरा बाह्य उपाय नहीं है। सौन्दर्य और शृंगार दोनों का जहां सम्मिलन हो जाता है, वहाँ का कहना ही क्या है? बस, सोने में सुगन्ध! मनुष्य का मन आकर्षित करने के लिए इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है? यही कारण है कि महाराज भर्तृहरि अपने शृंगार-शतक में लिखते हैं:—

कुंकुम पंक कलंकित देहा, गौर पयोधर कंपित हारा।
नूपुर हंसरणत्पदपद्मा कं न वशी कुरुते भुवि रामा॥

वास्तव में बात तो सच ही है। हमारे यहाँ तो केवल गहने और वस्त्र ही शृंगार की सामग्री हैं, पर पाश्चात्य जगत में इनके

अतिरिक्त भी सैकड़ों प्रकार के पाउडर और तैल आदि का उपयोग किया जाता है। इतना ही नहीं, सौन्दर्य-जाल में पुरुषों को फँसाने वाली रमणियाँ कई कृत्रिम उपायों से अपने शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को भी परिवर्तित कर लेती हैं। इससे बड़ी हानि होती है; परन्तु उनके जीवन का लक्ष्य तो केवल मजा लूटना है, तब खूब जी भर कर क्यों न लूटें ?

हमारा आदर्श कुछ भिन्न अवश्य है। हम शृंगार के विरोधी नहीं है, हम विरोधी हैं उसकी गुलामी के। केवल शृंगार और गहने में ही पड़े रहना अच्छा नहीं। मनुष्य-जीवन का कुछ उद्देश्य अवश्य है। पशु-पक्षियों में और मानव-जाति में कुछ अन्तर है, फिर विवेक-बुद्धि से काम क्यों न लिया जाय ? बहनो, गहने की बीमारी इतनी बढ़ रही है कि उसकी दवा करना आवश्यक दीखता है। देखो, एक कवि का कथन है :—

"है ध्यान पति से भी अधिक आभूषणों का अब उन्हें,
तब तुष्ट हों तो हों कि मढ़ दो मण्डनों से जब उन्हें।
है यह उचित ही क्योंकि जब अज्ञान से हैं दूषिता,
क्या फिर भला आभूषणों से भी न हों वे भूषिता॥"

कवि ने अन्तिम लकीरों में कैसा विकट कटाक्ष किया है ! बहनो, अज्ञानी स्त्रियाँ भले ही सोने-चाँदी के आभूषणों को अपना शृंगार समझें, तुम्हें तो इसपर कुछ सोचना चाहिए। क्या आभूषण न रहने पर तुम सुन्दर न लगोगी ? आभूषणों से कुछ सुन्दरता बढ़ती जरूर है; पर इन आभूषणों से भी बहुमूल्य कई आभूषण हैं, जिनसे एक बार सुसज्जित हो जाने पर तुम्हारे

सौन्दर्य का ठिकाना न रहेगा। ये आभूषण बहुमूल्य होने पर भी इतने स्थायी हैं कि कोई चोर उन्हें चुरा नहीं सकता। ये आभूषण तुम्हें तुम्हारी प्रत्येक सांसारिक व्याधि से बचा लेंगे। ये वजनी भी नहीं हैं कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में कठिनाई हो। उनकी शक्ति भी अपार है। ज्यों-ज्यों तुम अपने इन आभूषणों को वितरण करना प्रारम्भ करोगी, त्यों-त्यों तुम्हारी संपत्ति बढ़ती चली जायगी। संसार तुम्हारी दान-वीरता को स्वीकार कर तुम्हारे सामने सिर झुका लेगा। यौवन चिरस्थायी नहीं रहता, यौवन के बाद चाँदी-सोने के जेवर इतने अच्छे नहीं मालूम होते। परन्तु ये आभूषण यौवन में तुम्हारे सौन्दर्य को बढ़ावेंगे, बुढ़ापे में तुम्हारे हृदय को प्रसन्न करेंगे, मृत्यु के बाद भी तुम्हारी आत्मा को शान्ति देंगे, और अनन्त समय तक तुम्हारी कीर्ति को संसार में फैलाते रहेंगे। फिर भला तुम इन आभूषणों को धारण करने का प्रयत्न क्यों नहीं करतीं ? इच्छा-शक्ति को दमन कर तुम जेवर की व्याधि को दूर कर सकती हो और प्रति-दिन का परिश्रम तुम्हें इन अमूल्य आभूषणों को प्राप्त करने में मदद दे सकता है। यह जानने की तुम्हारी इच्छा अवश्य हो रही होगी कि आखिर उन आभूषणों के नाम क्या है ?

बहना ! अमरत्व की अभिलाषिणी स्त्रियों का सब से प्रथम आभूषण मधुर भाषण होना चाहिए। मधुर भाषण से तुम बिना अस्त्र-शस्त्र के जगत-विजयी योद्धाओं को वश में कर लोगी। अबला कहलाने पर भी सबला की शक्ति प्रदर्शित कर दिखाओगी। क्रोध की ज्वाला को शान्त करने का सबसे अच्छा-

उपाय मधुर भाषण है। भाव और भाषा की ओर ध्यान देना तो आजकल के स्त्री-समाज को आता ही नहीं है। बिना सोचे-विचारे बकबक करने में वे बड़ी तेज होती हैं। उनके कटु शब्दों से दूसरे के हृदय की क्या हालत होगी, इसका उन्हें लेश-मात्र ध्यान नहीं होता। गृह-कलह की आग में इनकी वाणी हमेशा घृत का ही काम देती है। अतएव, यदि तुम प्रेम और सुख का अनुभव करना चाहती हो तो, न्यूमेन महाशय के कथनानुसार इस प्रकार अपनी वाणी पर अधिकार जमालो—

"सद् वाक्य लसें मुख पंकज में,
यदि वाणु तें होहि सुकारज सुन्दर।
शब्दनि को अनुगामि बही,
यह अर्थ सुचारु अलंकृत अक्षर॥
सुखदा, मधुरा वचनावलि ज्यों,
तिमि साँच सुशील चरित्र मनोहर।
तौ जग में सब पाय लियो;
धन संपद कीरति और सहोदर॥"

बहनो! तुम्हारे हृदय-हार का दूसरा हीरा दया होना चाहिए। बिना दया के मनुष्य और पशु में क्या अन्तर? हृदय-हीन प्राणी किस काम का? दूसरे के दुःख को देख कर यदि तुम्हारा कलेजा नहीं पसीजता, तो वह पत्थर ही है और उस पत्थर को पत्थर के साथ रख देने में ही सुभीता है। पत्थर को लिए-लिए तुम क्यों दूसरे के हृदय के टुकड़े-टुकड़े करती हो? संसार में यदि एक दूसरे की विपत्ति में सहायता देना नहीं सीखा, तो बतलाओ, समाज में रहने से क्या लाभ? जाति और देश

सौन्दर्य का ठिकाना न रहेगा। ये आभूषण बहुमूल्य होने पर भी इतने स्थायी हैं कि कोई चोर उन्हें चुरा नहीं सकता। ये आभूषण तुम्हें तुम्हारी प्रत्येक सांसारिक व्याधि से बचा लेंगे। ये वजनी भी नहीं हैं कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में कठिनाई हो। उनकी शक्ति भी अपार है। ज्यों-ज्यों तुम अपने इन आभूषणों को वितरण करना प्रारम्भ करोगी, त्यों-त्यों तुम्हारी संपत्ति बढ़ती चली जायगी। संसार तुम्हारी दान-वीरता को स्वीकार कर तुम्हारे सामने सिर झुका लेगा। यौवन चिरस्थायी नहीं रहता, यौवन के बाद चाँदी-सोने के जेवर इतने अच्छे नहीं मालूम होते। परन्तु ये आभूषण यौवन में तुम्हारे सौन्दर्य को बढ़ावेंगे, बुढ़ापे में तुम्हारे हृदय को प्रसन्न करेंगे, मृत्यु के बाद भी तुम्हारी आत्मा को शान्ति देंगे, और अनन्त समय तक तुम्हारी कीर्ति को संसार में फैलाते रहेंगे। फिर भला तुम इन आभूषणों को धारण करने का प्रयत्न क्यों नहीं करतीं? इच्छा-शक्ति को दमन कर तुम जेवर की व्याधि को दूर कर सकती हो और प्रति-दिन का परिश्रम तुम्हें इन अमूल्य आभूषणों को प्राप्त करने में मदद दे सकता है। यह जानने की तुम्हारी इच्छा अवश्य हो रही होगी कि आखिर उन आभूषणों के नाम क्या है?

बहना! अमरत्व की अभिलाषिणी स्त्रियों का सब से प्रथम आभूषण मधुर भाषण होना चाहिए। मधुर भाषण से तुम बिना अस्त्र-शस्त्र के जगत-विजयी योद्धाओं को वश में कर लोगी। अबला कहलाने पर भी सबला की शक्ति प्रदर्शित कर दिखाओगी। क्रोध की ज्वाला को शान्त करने का सबसे अच्छा-

उपाय मधुर भाषण है। भाव और भाषा की ओर ध्यान देना तो आजकल के स्त्री-समाज को आता ही नहीं है। बिना सोचे-विचारे बकबक करने में वे बड़ी तेज होती हैं। उनके कटु-शब्दों से दूसरे के हृदय की क्या हालत होगी, इसका उन्हें लेश-मात्र ध्यान नहीं होता। गृह-कलह की आग में उनकी वाणी हमेशा घृत का ही काम देती है। अतएव, यदि तुम प्रेम और सुख का अनुभव करना चाहती हो तो, न्यूमेन महाशय के कथनानुसार इन प्रकार अपनी वाणी पर अधिकार जमालो—

"सद् वाक्य लसें मुख पंकज में,
यदि वाक्य तें होहिं सुकारज सुन्दर।
शब्दनि को अनुगामि . बनै,
बहु अर्थ सुचारु अलंकृत अक्षर॥
सुखदा, मधुरा वचनावलि ज्यों,
तिमि साँच सुशील चरित्र मनोहर।
तौ जग में सब पाय लियो,
धन संपद कीरति और सहोदर॥"

बहनो! तुम्हारे हृदय-हार का दूसरा हीरा दया होना चाहिए। बिना दया के मनुष्य और पशु में क्या अन्तर? हृदय-हीन प्राणी किस काम का? दूसरे के दुःख को देख कर यदि तुम्हारा कलेजा नहीं पसीजता, तो वह पत्थर ही है और उस पत्थर को पत्थर के साथ रख देने में ही सुभीता है। पत्थर को लिए-लिए तुम क्यों दूसरे के हृदय के टुकड़े-टुकड़े करती हो? संसार में यदि एक दूसरे की विपत्ति में सहायता देना नहीं सीखा, तो बतलाओ, समाज में रहने से क्या लाभ? जाति और देश

बहनो, तुम कहोगी कि यह बहुत पुरानी कथा है। परन्तु इस युग में भी इसीसे मिलते-जुलते बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं। इसीलिए नीति-शतक में भर्तृहरी ने लिखा है—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारेर्न तु चन्दनेन॥

अर्थात्, "दयालु पुरुषों के कानों की शोभा शास्त्र सुनने में है, कुण्डल पहनने में नहीं; उनके हाथों की शोभा दान करने में है, कंगन पहनने से नहीं; देह की शोभा परोपकार करने में है, चन्दन लगाने से नहीं।"

इन शब्दों को लिखते समय हमें स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की दयामयी माता की याद आ जाती है। गरीबी हालत में भी उनके द्वार से कोई अतिथि भूखा न जा पाता था और रोगी और दुःखी की सेवा वह बड़े प्रेम से करती थीं। समय ने पलटा खाया, उनके पुत्र को ५००) रु० मासिक वेतन मिलने लगा। उस समय एक मित्र ने उन्हें साधारण वस्त्र पहने और उनके हाथ में चाँदी के कड़े देखकर कहा—" इतने बड़े विद्यासागर की माता के हाथ में चाँदी के कड़े शोभा नहीं देते।"

इसपर वृद्धा ने हँसकर कहा—"बेटा! विद्यासागर की माता के हाथ की शोभा कुछ चाँदी-सोने के कड़े नहीं हो सकते, इन हाथों की शोभा तो भूखों को खिलाना ही है। देखो, जब अकाल पड़ा था, तब इन्हीं हाथों से खिचड़ी बना-बनाकर नित्य सहस्रों भिक्षुकों को मैं खिलाती थी।"

इसी प्रकार श्रीमती कस्तूरीबाई गाँधी, श्रीमती पोलक, श्री-

मती, रलेशन, शेख महताब आदि अनेकों स्त्री-रत्नों के नाम भारत के इन २५ वर्षों के इतिहास में भी भरे पड़े हैं, जिन्होंने अपने अपूर्व उत्साह और आत्म-त्याग से सेवा-मार्ग को ग्रहण कर "देवी" नाम को सार्थक कर दिखाया है।

इसी प्रकार के निस्वार्थ भाव की सेवा के लिए ही तो कवि लिखता है:—

निःस्वार्थ देश-प्रेम से हो मलिनता मन में धुली।
तो उस भूरभागी भूप से है पूज्यतम कर्मठ कुली॥

वर्तमान समय में सैकड़ों धूर्त पेट भरने के लिए भिखारी और फकीर बनकर घूमा करते हैं। क्या इन्हें दान देना, पुण्य का कार्य है? ऐसा दान दानियों और दान लेने वाले दोनों को ही हानिकारक है। बिना पात्र की योग्यता और आवश्यकता को समझे दया दिखाना उचित नहीं। इस प्रकार की ज्ञान-शून्य दया के कारण ही तो भारत में ६० लाख निठल्ले-धूर्त दूसरों की गाढ़ी कमाई का पैसा उड़ाया करते हैं। दीन, अपाहिज, सुचरित्र विद्यार्थी, विधवा आदि की मदद करना प्रत्येक का कर्तव्य होना चाहिए।

केवल धन देना ही दान नहीं कहाता, योग्य सहायता देना, समय, सहानुभूति और प्रेममयी वाणी का दान भी कभी-कभी बड़ा प्रभाव उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, एक अन्धा फकीर एक रास्ते पर खड़ा भीख माँग रहा था। एक सभ्य पुरुष वहाँ से निकले। उन्होंने उसे कुछ देना चाहा, परन्तु जेब में हाथ डालने पर उन्हें मालूम हुआ कि उनके पास एक पैसा भी नहीं है।

वह इससे अत्यन्त खिन्न होकर बोले—"भाई बड़े शोक की बात है कि आज मेरे पास कुछ नहीं है।" इन शब्दों को सुन उस भिखारी के चेहरे पर प्रसन्नता झलकने लगी। कारण पूछने पर मालूम हुआ कि "भाई" शब्द का व्यवहार उसके साथ सबसे प्रथम बार ही किया गया था। इतने प्रेममय 'भाई' शब्द ने ही उसे प्रसन्न कर दिया था।

इसी प्रकार एक चित्रकार से पूछा गया कि "भाई, तुम कैसे इतने नामी चित्रकार हुए?" उसने उत्तर दिया कि "बचपन में मैंने एक तस्वीर बनाकर अपनी माता को दिखाई। माँ ने प्रसन्न होकर मुझे चूम लिया। बस यही चुम्बन, यही प्रेम का प्रकटीकरण मेरे इस पद पर पहुँचने का कारण हुआ।"

बहनो! इस प्रेम-दया के अनेक रूप हैं। जब तुम्हारा हृदय दया-मय हो जायगा, तब तुम्हारे नेत्रों में दया टपकने लगेगी, तुम्हारी वाणी प्रेम-मय दया से सनी होगी, और तुम्हारे समस्त कार्य प्रशंसायुक्त होने लगेंगे।

तुम्हारे हार का तीसरा हीरा सहिष्णुता होना चाहिए। सह लेने की शक्ति स्त्री-जगत में अपूर्व ही है, परन्तु इस समय हम देखते हैं कि आजकल स्त्रियां ज़रा-ज़रा-सी बात का प्रत्युत्तर दिए बिना नहीं रहतीं। उनके कहने से चाहे द्वेष की ज्वाला बढ़ भाई से भाई और माता से पुत्र अलग होजाय, चाहे कुटुम्बी छिन्न-भिन्न हो जायं; किन्तु उनके वाक्य-बाण बरसने बन्द नहीं होते। बहनो, अपनी सास, ननद आदि के दुर्व्यवहार का इस प्रकार प्रति-पल बदला लेने की प्रवृत्ति किसी प्रकार अच्छी नहीं कही जा सकती। इसी तरह छोटी-छोटी बातों की पति से शिकायत करना अच्छा नहीं।

ज़रा-ज़रासी बातों पर स्वयं दुःखी होना और दूसरों को दुःखी करने से क्या लाभ ?

सहनशीलता की प्रति-मूर्ति सीता, दमयन्ती, सावित्री आदि को कौन भूल सकता है ? उनकी सहनशीलता ने ही उनके नाम को अमर कर दिया है। राजनन्दिनी सीता ने पति के साथ वन के कष्ट सहे, फिर अग्नि-परीक्षा दे अपनी सत्यता का परिचय दिया, अन्त में पति-द्वारा त्यागी जाने पर भी उनके मुँह से अपने स्वामी के विरुद्ध एक शब्द नहीं निकला—सब सहर्ष सहन किया। इसीलिए अब वे हिन्दुओं के घर-घर में पूजी जाती हैं। अस्तु !

दुःखों की घटा घिर जाने पर भी कर्त्तव्यों को न त्यागना चाहिए। संसार मोह का एक विशाल जाल है। कौन जानता है कि कल क्या होगा ? ऐसी दशा में मोह में फँस कर्त्तव्य को त्याग देना उचित नहीं। अतः तुम्हारे हृदयहार को चतुर्थहीरा कर्त्तव्य परायणता होना चाहिए। समय चाहे जैसा हो, हमेशा अपनी दृष्टि के सामने कर्त्तव्य को रक्खो। केवल कर्त्तव्य की पूर्णता ही तुम्हारे जीवन के अन्तिम काल में सन्तोष देगी और तुम इस लीला-भूमि को छोड़ते समय भी हँसती हुई विदा होगी। वह कर्त्तव्य-परायणता ही थी, जिसके कारण सीता, दमयन्ती, अनुसूया और विदुला आदि के नाम को आज हम स्मरण करते हैं।

बहनो, शत्रु द्वारा परास्त हो संजय जब युद्ध-क्षेत्र से भाग कर घर आया, तब उसकी वीर माता विदुला ने जो कुछ कहा, वह तुम्हारे लिए [illegible] होना [illegible] स्पष्ट ही कहा था—" हे पुत्र, [illegible] भी [illegible] गई ? अपने मनको उन्नत करो [illegible] आज

आनन्द मना रहे हैं। भाई-बन्धु दुःख-सागर में निमग्न हैं। जो वीर हैं, वे गिरते-गिरते भी शत्रु को मारते हैं। हे पुत्र, निन्दितों का संसार में क्या काम? अब कायर पुरुष की माता कहाकर, मैं संसार को कैसे मुंह दिखाऊँगी? बेटा, प्रयत्न करो। एक दिन सब को ही मर जाना है, सब अपमान-पूर्वक जीने से क्या लाभ?" इन शब्दों से संजय के हृदय ने पलटा खाया और वह युद्ध-भूमि को लौट गया। यदि विदुला मोह करती, तो कवि के निम्न-लिखित वाक्यों को पढ़ने का हमें सौभाग्य ही न प्राप्त होता—

> द्विज-पुत्र-रक्षा-हित जिन्होंने सुत-मरण सोचा नहीं।
> विदुला, सुमित्रा और कुन्ती-तुल्य माताएं रहीं॥

बहनो! तुम्हारा पांचवां आभूषण धैर्य होना चाहिए। कुटुम्ब में बीमारी, मृत्यु, गरीबी आदि नाना प्रकार की कठिनाइयां आती हैं। इनसे तनिक भी विचलित न हो, उन्हें सहन करना स्त्री का कर्त्तव्य है। पतिदेव को अपनी चिन्ता के सिवाय तुम्हारे दुःखी हृदय की भी चिन्ता लगी रहती है। वह सोचते हैं—"मैं पुरुष हूँ, किसी तरह विपत्ति को सह लूँगा; परन्तु, यह अबला क्या करेगी?" इसी व्यथा के कारण सैकड़ों स्वामी मन ही-मन घुलते रहते हैं। विपत्ति के ऐसे अवसरों पर तुम्हारा परम-धर्म है कि तुम अपने मुँह पर विषाद की छाया तक न आने दे, धैर्य्य की आभा से उसे प्रफुल्ल रक्खो। एक गृहस्थ पर बड़ी विपत्ति आ पड़ी, उसका समस्त धन हाथ से जाता रहा। जो किसी दिन अमीर था, आज दाने-दाने का मुहताज हो गया। पति-पत्नी से कहने लगा—"प्यारी, अब जीवन-निर्वाह किस प्रकार होगा?

ज़रा-ज़रासी बातों पर स्वयं दुःखी होना और दूसरों को दुःखी करने से क्या लाभ ?

सहनशीलता की प्रति-मूर्ति सीता, दमयन्ती, सावित्री आदि को कौन भूल सकता है ? उनकी सहनशीलता ने ही उनके नाम को अमर कर दिया है। राजनन्दिनी सीता ने पति के साथ वन के कष्ट सहे, फिर अग्नि-परीक्षा दे अपनी सत्यता का परिचय दिया, अन्त में पति-द्वारा त्यागी जाने पर भी उनके मुँह से अपने स्वामी के विरुद्ध एक शब्द नहीं निकला—सब सहर्ष सहन किया। इसीलिए अब वे हिन्दुओं के घर-घर में पूजी जाती हैं। अस्तु !

दुःखों की घटा घिर जाने पर भी कर्त्तव्यों को न त्यागना चाहिए। संसार मोह का एक विशाल जाल है। कौन जानता है कि फल क्या होगा ? ऐसी दशा में मोह में फँस कर्त्तव्य को त्याग देना उचित नहीं। अतः तुम्हारे हृदयहार को चतुर्महीरा कर्त्तव्य परायणता होना चाहिए। समय चाहे जैसा हो, हमेशा अपनी दृष्टि के सामने कर्त्तव्य को रक्खो। केवल कर्त्तव्य की पूर्णता ही तुम्हारे जीवन के अन्तिम काल में सन्तोष देगी और तुम इस लीला-भूमि को छोड़ते समय भी हँसती हुई विदा होगी। यह कर्त्तव्य-परायणता ही थी, जिसके कारण सीता, दमयन्ती, अनुसूया और विदुला आदि के नाम को आज हम स्मरण करते हैं।

पहनो, शत्रु द्वारा परास्त हो संजय जब युद्ध-क्षेत्र से भाग कर घर आया, तब उसकी वीर माता विदुला ने जो कुछ कहा, वह तुम्हारे लिए पथ-प्रदर्शक होना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट ही कहा था—" हे पुत्र, तुममें यह भीरु-वृत्ति कैसे आ गई ? अपने मनको उन्नत करो। तुम्हारे पुरुषार्थ-हीन हो जाने से शत्रु

उचित नहीं। धीरज धरो, ईश्वर पर विश्वास करो, जो कुछ भगवान ने दिया है, उसपर संतुष्ट रहो। यदि ईश्वर को फिर भी कुछ देना होगा, तो वह देगा ही। तुम्हारी केवल कामना से कुछ होने का नहीं। श्री 'कमलाकर' कवि कहते हैं:—

सन्तोष-सा साधन है न अन्य।
सन्तोष-ऐसा धन है न अन्य॥
सन्तोष-भक्त धनी अनन्य।
सन्तुष्ट है सिद्धि सदैव धन्य॥

बहनो! क्या तुम नहीं जानतीं कि चंचला, चपला किसे कहते हैं? क्या तुमने यह जन-श्रुति नहीं सुनी कि स्त्री के पेट में बात नहीं पचती? इसपर तुम्हें गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए। गृहस्थ-जीवन कुछ खिलौना नहीं है। यह तो एक कठिन कर्तव्य-मय समस्या है। यहाँ दुःख, दरिद्र, सुख, आनन्द आदि की लहरें उठा ही करती हैं। उनसे विचलित हो एवं इतरा कर इधर-उधर बातें करने से क्या लाभ? अपनी इस चंचल मनोवृत्ति पर अङ्कुश रखना तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिए। क्योंकि, ऐसा न होने पर, चंचलतावश, जहां अनेक काम बिना सोचे समझे हो जाते है, वहाँ, सायहा, कभी-कभी क्षुद्रता भी आ जाती है। अतएव, बहनो! गम्भीर बनना सीखो। किसी विषय के अच्छे और बुरे पहलुओं पर विचार किए बिना किसी काम को न कर डालो, वासना की आँधी में उड़ न जाओ। यदि कोई तुम्हारी निन्दा करे, तो उससे उत्तेजित न हो उठो, उसपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करो। यदि उसमें कुछ सचाई है, तो अपने दोषों को दूर

कहाँ वह ऐश-आराम और कहाँ यह कठिन जीवन ?" पत्नी ने शान्ति-पूर्वक कहा—

"गुज़र थोड़े-से-थोड़े में भी हम अच्छी कर लेंगे।
न भूले-से कभी नाम तकलीफ़ उम्र-भर लेंगे॥
न हो सालन नमक की कंकरी रोटी पै धर लेंगे।
गज़ी-गाढ़ा पहन कर सादगी से बन-सँवर लेंगे॥

पत्नी के इन वाक्यों को सुन, पति फूला नहीं समाया। उसके हृदय पर जो चिन्ता का एक विशाल पहाड़-सा था, वह उठ गया। वह कहने लगा:—

"दिल मेरा तूने बढ़ाया, अपने दिल को मार कर,
फेंक दूँ तुझ पर से, क़ारू का ख़ज़ाना वार कर।

बहनो, तुम्हारा प्यारा छठा आभूषण संतोष होना चाहिए। कौन नहीं जानता कि असंतोष के कारण मानसिक वेदना होती है और उस वेदना का शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। अवश्य ही तुम्हें उन्नति के मार्ग पर सदैव अग्रसर रहना चाहिए; परन्तु घर में जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे प्रसन्नता-पूर्वक ग्रहण करना सुख की जड़ है। यदि तुम्हारा स्वामी तुम्हें आभूषणों से लाद नहीं सकता, यदि वह तुम्हें धनवान् व्यक्तियों की पत्नियों के समान ऐश-आराम नहीं दे सकता, तो क्या इतनी सी बात पर तुम्हारा असन्तुष्ट हो जाना उचित होगा ? क्या स्वामी तुम्हें शृंगार-युक्त और आराम से देखना नहीं चाहते ? पर वे क्या करें ? परिस्थिति उन्हें अपनी और तुम्हारी इच्छा-पूर्ति को मजबूर कर देती है। इसलिए प्रेम के पवित्र-बंधन को तोड़ना

उचित नहीं। धीरज धरो, ईश्वर पर विश्वास करो, जो कुछ भगवान ने दिया है, उसपर संतुष्ट रहो। यदि ईश्वर को फिर भी कुछ देना होगा, तो वह देगा ही। तुम्हारी केवल कामना से कुछ होने का नहीं। श्री 'कमलाकर' कवि कहते हैं:—

सन्तोष-सा साधन है न श्रेम्य।
सन्तोष-ऐसा धन है न अन्य॥
सन्तोष-भक्त बनो अनन्य।
सन्तुष्ट है सिद्धि सदैव धन्य॥

बहनो! क्या तुम नहीं जानतीं कि चंचला, चपला किसे कहते हैं? क्या तुमने यह जन-श्रुति नहीं सुनी कि स्त्री के पेट में बात नहीं पचती? इसपर तुम्हें गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए। गृहस्थ-जीवन कुछ खिलौना नहीं है। यह तो एक कठिन कर्त्तव्य-मय समस्या है। यहाँ दुःख, दरिद्र, सुख, आनन्द आदि की लहरें उठा ही करती हैं। उनसे विचलित हो एवं इतरा कर इधर-उधर बातें करने से क्या लाभ? अपनी इस चंचल मनोवृत्ति पर अङ्कुश रखना तुम्हारा कर्त्तव्य होना चाहिए। क्योंकि, ऐसा न होने पर, चंचलतावश, जहां अनेक काम बिना सोचे समझे हो जाते हैं, वहाँ, साथही, कभी-कभी क्षुद्रता भी आ जाती है। अतएव, बहनो! गम्भीर बनना सीखो। किसी विषय के अच्छे और बुरे पहलुओं पर विचार किए बिना किसी काम को न कर डालो, वासना की आँधी में उड़ न जाओ। यदि कोई तुम्हारी निन्दा करे, तो उससे उत्तेजित न हो उठो, उसपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करो। यदि उसमें कुछ सचाई है, तो अपने दोषों को दूर

करने का प्रयत्न करो। यदि निन्दा मिथ्या है, तो उसके प्रतिका में जली-कटी बातें कहकर अपनी जिह्वा को गन्दी न करो क्योंकि अन्त में सचाई आपही प्रकट हो जाती है। हृदय को इतना उज्ज्वल बना लो कि कोई अंगुली भी न उठा सके और यदि उठाए तो वह गुण-सूचक ही सिद्ध हो। यह सदैव स्मरण रक्खो कि देवत्व प्राप्त करने के लिए साधना की ही सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

बहनो ! तुम्हारा आठवां आभूषण तुम्हारा सद्-व्यवहार ही है। कुछ दिनों में तुम नये जगत् में पदार्पण करोगी। सास, ननद, भौजाई, दासी, देवर आदि बहुत से सम्बन्धियों के साथ तुम्हारा सम्पर्क होगा। यदि तुम चाहती हो कि वे तुम्हारे साथ अच्छी तरह पेश आवें, तो तुम्हें भी उनके साथ नम्रता से व्यवहार करना सीखना चाहिए। उनकी गलती पर हँसी उड़ाना, दासियों आदि को डाटना-फटकारना अच्छा नहीं। जब प्रेम से तुम इस कार्य को कर सकती हो, फिर कटु-व्यवहार की तलवार को उनकी गरदन पर क्यों चलाती हो ? इससे तो गृह-कलह का बीजा-रोपण होगा और फिर तुम्हारा और तुम्हारे सम्बन्धियों का जीवन विष मय हो जावेगा। सती सीता ने रावण के यहाँ रहकर भी राक्षसियों को अपना मित्र बना लिया था। शकुन्तला को देखकर पशु-पक्षी तक सुखी होते थे। यह सब मद्-व्यवहार का ही परिणाम था।

इसी प्रकार अन्य अनेक गुण हैं, जो तुम्हारे आभूषण होने चाहिएं। उन सबका वर्णन किया जा सकना सम्भव नहीं, अतः

संक्षेप में तुम्हें कवि की निम्न-लिखित पंक्तियों को अपने सामने रखकर अपना जीवन-पथ निर्माण करना चाहिए—

"इस भव रंग-भूमिपर कोई रहा न रहने पायेगा।
निज-निज अभिनय पूरा कर सब लौट समयपर जावेंगे॥
यह भौतिक शरीर क्षण-भंगुर मिट्टी में मिल जावेगा।
केवल शुभ या अशुभ कर्म ही उनकी याद दिलावेंगे॥

कठिन समस्या

"जाकी जाको भावना, जाकी जाको आस।
जो जाही के मन बसे, सो ताही के पास॥"

बहना, समय आगे बढ़ गया, अब तुम स्यानी हो चलीं। किसी युवक को देख तुम्हारे हृदय में नाना-प्रकार की भावनाएँ उठने लगी होंगी। दूसरों के गृहस्थ और सुख-मय जीवन को देख उसी सुख को प्राप्त करने को तुम्हारा भी जी ललचाता होगा। सुन्दर हृष्ट-पुष्ट सन्तान को देख तुम्हारे हृदय में भी ऐसे बालक की माता बनने की इच्छा होती होगी। तुम प्रेम का स्वप्न देखती होगी। कभी कल्पना जगत् में ऊँची उड़ती होगी, तो कभी निराशा के समुद्र में डुबकियें मारती हुई भाग्य पर पछताती होगी। यह अवस्था और समय ऐसाही है। प्रत्येक समझदार और अल्प अनुभव वाली बालिका—युवती की यही दशा होती है। यह दोष नहीं है, यह तुम्हारे जीवित हृदय का नमूना मात्र है।

"लीलावती अपने बचपन में ही विधवा हो गई। कलावती का पति उसे बहुत कष्ट देता है। कमला की सास उसे बहुत तंग करती है। यमुना देवी सर्वगुण सम्पन्न होनेपर भी एक मूर्ख के गले बाँध दी गई।" इस प्रकार अपनी परिचिता बहिनों की बातें सुन-सुनकर कभी तुम सोचने लगती होगी कि इस तरह कष्टमय जीवन से तो अविवाहित रहना ही अच्छा। आजकल एक नये प्रकार की विचारधारा और चल रही है, जिससे कुछ नव-शिक्षिता बहनें विवाह-बन्धन को अनुचित कहकर उससे सर्वथा

मुक्त रहना पसन्द करती हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति के अनुसार सर्व-साधारण के लिए न तो यह उपयुक्त है, न सम्भव ही है। इसमें सबसे पहिली कठिनाई तो यह है कि तुम्हारे माता-पिता स्वयं इस विचार को स्वीकार न करेंगे। हिन्दू-धर्म विवाह को शुद्धि और पैतृक-ऋण-उद्धार का साधन मानता है। ऐसी दशा में माता-पिता उसके विपरीत कल्पना ही नहीं कर सकते। यदि क्षणभर के लिए इसे सम्भव भी मान लिया जाय, तो क्या तुम आजकल के कलुषित वातावरण एवं विषय-वासना के भयङ्कर तूफान में अपने आचरण को पवित्र रख सकोगी? क्या कठिन तपस्या से जीवन व्यतीत कर सकोगी? धर्म-अनुष्ठान और सेवा-मार्ग पर चल, दूसरों को सुखी बना सकोगी? माता-पिता को अपनी पवित्रता और शुद्धाचार से प्रसन्न रख सकोगी? यदि तुम ऐसा कर सकती हो, तो अविवाहिता रहने में कोई हानि नहीं प्रत्युत तुम एक आदर्श देवी बन सकोगी। किन्तु विषय-वासना-पूरित वर्तमान विषैले वातावरण में इस प्रकार का साहस अपनी जीवन-नौका को जान-बूझकर तूफानी समुद्र में डालना होगा। इसके विपरीत यदि तुम किसी योग्य वर के साथ विवाह कर, संयम के साथ अपनी जीवन-चर्या चलाओ तो इस प्रकार न केवल स्वयम् ही सुखी बन सकती हो, वरन् अपने पति और परिवार को भी सुखी बना, अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार सकती हो। और यदि दैवयोग से पति अयोग्य मिला, तो क्या पारस लोहे को कंचन नहीं बना लेता? यदि तुममें धीरता गम्भीरता, सहनशीलता आदि सद्गुण हैं, तो तुम उसे अपने योग्य बनाने में अवश्य सफल होगी। अतः किसी काल्पनिक भय

से अविवाहित रहने का विचार करना अयोचित नहीं। ज्यों-ज्यों तुम जीवन में आगे बढ़ोगी, त्यों-त्यों तुम्हें अविवाहित रहने की अपनी भूल अनुभव होने लगेगी और उस समय सिवाय पछताने के और कुछ न हो सकेगा। हमारे शास्त्र स्त्री को पुरुष का आधा अंग कहते हैं। भला आधे अंग से कहीं पूर्ण-सुख प्राप्त हो सकता है? जीवन की तैय्यारी करते समय, यौवन का प्रादुर्भाव होते ही प्रत्येक युवती के हृदय में स्वभावतः ही आधे अंग के और पाने की इच्छा होने लगती है। इसी आधे शरीर को प्राप्त करने की इच्छा में प्रेम का बीज रहता है, जो अन्त में विवाह का रूप धारण करता है। गृहस्थी सुख-पूर्ण होगी या दुःख-पूर्ण, इस चिन्ता में पड़ना ठीक नहीं। ऐसे विचारों में कभी-कभी व्यर्थ की कल्पना-मात्र ही रहा करती है। तुम्हें यह बात ध्यान में रखकर सन्तोष करना चाहिए कि कभी-कभी पत्थर के नीचे सोना निकल आता है, कोयले की खान में हीरा प्राप्त हो जाता है। तब फिर चिन्ता करने से क्या लाभ? जीवन-संग्राम में कठिनाइयाँ आती ही हैं; अनेक आवश्यक वस्तुओं को एकत्रित करने की चिन्ता रहती है; दुःख भी होता है; अशान्ति भी छा जाती है। धैर्य और दृढ़ता के साथ इनका मुक़ाबला करनेही में तो मर्दों वीरता समाई हुई है। यदि तुम इनसे लोहा लेते हुए भी शुद्ध और पवित्र भाव से अपने पति से प्रेम कर सकीं तो तुम देखोगी कि किस प्रकार तुम्हारे दुःखही सुख में परिणत हो जाते हैं। कदाचित् तुम इस बात पर आश्चर्य करो, किन्तु वास्तव इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, प्रेम ऐसाही जादू है। यह इस प्रेम के जादू का ही कारण है कि प्रेमी के हाथ की सूखी रोटी में

अमृत का आनन्द आता है। फटे वस्त्र पहिने हुए, पति के सन्मुख बैठे रहने में, उसके सुख और दुःख में हाथ बंटाने में हृदय को जो आनन्द और प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह एक प्रेम-विहीना रानी को प्राप्त होना दुर्लभ है। ये बातें कल्पनामात्र नहीं, अनुभव सिद्ध हैं। अस्तु।

यह दुर्भाग्य की बात है, कि कुछ अर्से से हमारे यहाँ विवाह-पद्धति अत्यन्त दूषित हो गई है। कन्या अभी विवाह योग्य हुई है अथवा नहीं, वर अभी परिपक्वावस्था को पहुँचा है या नहीं, अथवा अमुक वर अमुक कन्या के योग्य है या नहीं, इन बातों पर बहुत कम विचार किया जाता है। हमारे विचार में वही बालिका विवाह योग्य है जो कम से कम १६ वर्ष की हो चुकी है; जिसने गृह कार्य में दक्षता प्राप्त कर, अपने अंग को पूर्व कथित आभूषणों से सजा लिया है, जो शिक्षिता एवं मधुर-भाषिणी और सदाचारणी है; जिसका हृदय पति को प्राप्त कर उसकी सहायता से संसार की सेवा करने को उत्सुक हो उठा है। एक रुग्ण देहवाली कन्या, जिसके हाथ पैरों में जान नहीं; जिसने मातृ-मन्दिर में रह अपने स्वभाव और मन को संयम द्वारा वश में करना नहीं सीखा है; जो अपने से बड़ों के साथ सम्मान और आदरपूर्ण व्यवहार करना नहीं जानती; जो सर्वथा निरक्षर है, जिसे केवल वस्त्रों और गहनों से प्रेम है; जो विलासिनी है और घर-गृहस्थी के कामों से डरती है तथा बालकों से प्रेम करना नहीं जानती, हमारे विचारों से वह कन्या आयु में कितनीही बड़ी होने पर भी "विवाह-युक्त" होने पर नहीं आई है। उसे पहिले अपने उक्त दुर्गुणों को दूर कर विवाह, योग्य बनने

अतः निद्रात्याग कर उठ खड़ी हो, और अपनी बड़ी-बड़ी रसीली आँखों को फाड़ कर देखः—श्याम जल की भयंकर लहरों से समस्त महिला जगत डूबा जा रहा है।"

बहनो, विवाह की कठिन गुत्थी को सुलझाओ। आँख बन्द कर सब कार्य माता-पिता पर छोड़ देना उचित नहीं। यदि वर तुम्हारे योग्य न हो, तो स्पष्ट शब्दों में मां-बाप से अपनी इच्छा प्रगट कर दो अन्यथा आगे चलकर तुम्हारा जीवन भार-रूप हो जायगा। यह एक ऐसा विषय है जिसपर तुम्हें आन्दोलन करना चाहिए। रूढ़ियों को तोड़ने के लिए तैय्यार रहना चाहिए।

प्राचीन-काल में हमारे यहां विवाह के लिए स्वयंवर-प्रथा थी। कन्या योग्य वर को स्वयं जयमाल पहनाती थी। गन्धर्व-विवाह विधि भी प्रचलित थी। उसके विपरीत आजकल की ऊँट के गले बकरी बांधने की विधि देखकर कलेजा कांप उठता है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि तुम्हें कैसा वर चुनना चाहिए? सदैव से यह देखने में आता है कि प्रायः मनुष्य रूपवती कन्या को देखकर उसी प्रकार एक कन्या किसी रूपवान पुरुष को देख-कर मोहित हो जाती है। किन्तु इस मोहजाल को प्रेम का सच्चा रूप समझना या इस कसौटी पर विवाह सम्बन्ध स्थापित करना सर्वथा अदूर-दर्शिता होगी। यदि सुन्दरता ही इसकी कसौटी हो, तो क्या समय पड़ने पर विवाह के बाद तुम किसी अन्य सुन्दर पुरुष के रूप पर मोहित नहीं हो सकती? यह प्रेम नहीं है; वासना-मात्र है। यद्यपि वासनायुक्त प्रेम का प्रधान अंग सौन्दर्य ही रहा करता है, परन्तु वर चुनाव में उसे प्राधान्य देना उचित नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम किसी कुरूप को ही वर चुन

लो। इससे हमारा आशय केवल यही है कि सौन्दर्य केवल युवावस्था का भूषण है, बुढ़ापे में उसका नाश हो जाता है। अतएव तुम्हें सुन्दरता के साथही उसके स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना चाहिए। विवाह का एक उद्देश्य जीवन को सुखी बना वंश चलाना है; संसार की सेवा करना है। स्वास्थ्य-हीन पति के साथ यह सम्भव नहीं हो सकता। इससे केवल तुम्हारा ही जीवन बरबाद न होगा, बल्कि तुम्हारी सन्तान निर्बल और कमजोर होगी और इस तरह से संसार में निर्बलता और अयोग्यता का विस्तार होता जायगा।

स्वास्थ्य की जाँच के बाद वर की शिक्षा की जाँच होना आवश्यक है; क्योंकि बिना सुशिक्षा के संसार में जीवन-निर्वाह करना कठिन है। किन्तु शिक्षा की जाँच में केवल कालेज की डिग्री पर मोहित हो, किसी अन्य साहसी युवक का तिरस्कार कर बैठना उचित नहीं। केवल पुस्तकीय ज्ञान ही विद्या नहीं कहलाती, कला-कौशल्य की निपुणता भी तो विद्या है। हमें देखना चाहिए कि 'क्या अपने ज्ञान से युवक संसार में स्वतंत्र-जीविका उपार्जित कर सकता है? यदि बी. ए., एम. ए. की डिग्री प्राप्त करने लेनेपर भी आजीविका उपार्जन करनेमें समर्थ नहीं होता, तो ऐसे वर से कोई लाभ नहीं। इसके विपरीत डिग्रीधारी न होने पर भी यदि युवक साहसी है; बाधाओं को देखकर घबरा नहीं जाता, बरन हर्षपूर्वक उनका सामना करता है; एकबार असफल हो जाने पर फिर प्रयत्न करता है; उत्तम आचरण वाला है, अपने साथियों और सम्बन्धियों से अच्छा व्यवहार रखता है। देश सेवा और समाज-सेवा में अग्रसर रहता है; विषय-वासना एवं जुआ आदि

दुर्व्यसनों की नदी में गोते नहीं लगाता; तो वह अवश्य योग्य वर है। समय आवेगा कि वह अपने साहस से कठिनाइयों की चट्टानों को चूर चूर कर देगा, कर्मवीर बन अवश्य ही संसार विजयी होगा। अतएव ऐसा युवक किसी भी योग्य कन्या का स्वामी बनने की क्षमता रखता है।

धनवान् युवक को पति बनाने की किसकी इच्छा न होगी? परन्तु अपात्रों के हाथ आई हुई लक्ष्मी प्रायः उन्हें पथ-भ्रष्ट एवं दुराचारी बना देती है। अतएव केवल सम्पत्ति को देखकर ही इच्छा प्रगट करना अच्छा नहीं। यदि तुम्हारे हृदय में वेदना हो रही है तो बताओ स्वर्ण के पलंग को तुम क्या करोगी? यदि तुम्हारा मस्तिष्क मानसिक वेदना की आग से जल रहा है तो बिजली के पंखे उसे कैसे शान्त कर सकेंगे? अतएव ऊपर लिखे गुणों के साथ सम्पत्ति का योग हो, तो ठीक है अन्यथा ऐसी सम्पत्ति को दूर से ही नमस्कार करना अच्छा है।

वर के सुस्वस्थ, सुशिक्षित और सद्गुणी होने के सिवाय उसका कुटुम्ब भी अच्छा होना चाहिए। अच्छे का अभिप्राय यह है कि उस कुटुम्ब के लोग सदाचारी हों। उनमें मद्यपान, जूआ आदि दुर्व्यसन न हों, क्योंकि कुटुम्बियों की आदतों का असर बालकों पर पड़े बिना नहीं रहता। इसी प्रकार कुटुम्ब के परंपरागत रोगों का पता लगा लेना भी अच्छा है। उदाहरणार्थ क्षयरोग, प्रमेह मिर्गी, मूर्छा आदि रोग एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी में भी रहा करते हैं। अतः इन बातों की उपेक्षा करना बड़ी भूल होगी।

"आज दो युवक और युवतियां प्रेम करते हुए अभिभावक

होते हैं, सब स्वाभाविक ही उनके मनों में "सुखी जीवन" के विचार रहते हैं। परन्तु सुख की अपेक्षा और भी एक महान बात है, जिसका कि बहनों को पहिले ही से निश्चय कर लेना चाहिये। और एक लेखिका के शब्दों में वह यह कि "क्या मैं अपने भावी स्वामी को अधिक योग्य, ईमानदार, उदार, समाज, धर्म और परमेश्वर का अधिक प्रेमी बना सकूंगी ? क्या मेरे स्वामी मुझ पर प्रेम करते हुए, मुझमें अत्यन्त सुन्दर शील का विकास कर सकेंगे ? क्या वे मुझे वर्त्तमान अवस्था से ऊँचा उठा, मेरे जीवन के लक्ष्य को महान बना सकेंगे ?"

बहनो, यदि तुम इन बातों पर ध्यान दे अपने पति का चुनाव करोगी, तो तुम्हारा जीवन अवश्य सुखमय होगा। तुम स्वामी की प्रियपात्री बनोगी और फिर प्रसन्नता पूर्वक कहोगी—

"विघ्न की घन घोर घटायें उठें,
हृदय में हो बस उनकी चाह।
बढ़ायेंगी वे वृथा घन खूब,
तुम्हारा शक्ति अग्नि की दाह॥"

हृदय-मिलन-योजना

"मधुर घंटियो ! नेत्रों द्वारा प्रत्यक्ष हुए प्रेम के लिए,
दो प्राणों को एक बना देने वाली प्रतिज्ञाओं के लिए,
और संसार के सर्वोत्तम दिवस के लिए
खूब हर्ष पूर्वक ध्वनि करो।"

बहनो ! आ गई वह शुभ घड़ी जिसके लिए तुम अपने १६ वर्षों से प्रयत्न कर रही थीं ? इच्छित वर मिल गया न ? अहो, लज्जा से तुमने अपना मुँह क्यों नीचा कर लिया ? छिपाने से क्या लाभ ? तुम्हारे नेत्रों ने अपनी विचित्र वाणी से मुझे तुम्हारे हृदय का भाव बतला ही दिया। बड़ी प्रसन्नता की बात है। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। इसीमें सबको हर्ष है।

समय आने लगा। दो दिन, एक दिन; वह देखो, द्वार पर बाजे बजने लगे; पड़ोस की स्त्रियाँ एकत्रित होने लगीं; बालक आनन्द से नाचने लगे। यह देखो तुम्हारी सखी क्या कह रही है। वाह, तुम्हारी मधुर झिड़की का यह केवल मुसकुराहट से ही जवाब देती है। तुम्हारा हृदय क्या कह रहा है ? मन के आनंद को छिपाने का अच्छा तरीका ढूंढ रही हो। भला यह भी कहीं सम्भव है ?

बरात द्वार पर आ गई। धूम-धाम से सब काम होने लगे। प्रेम के सम्मेलन के लिए गाढ़ी कमाई का द्रव्य पानी की तरह बहाया जाने लगा। देखो, तुम्हारा जीवन-संगी मण्डप के नीचे

उपस्थित हो गया। चलो, अब देर मत करो। भला उसे अकेले बैठे कैसे चैन पड़ती होगी। परन्तु कहीं खुशी में भूल न जाना। जमीन पर पैर न रख, आसमान में उड़ने का प्रयत्न न करना।

पण्डितजी ने अपनी वाक्य-धारा में श्लोक के पश्चात श्लोक कहना प्रारम्भ कर दिया। कहो, कुछ समझीं? भला तुम्हें समझने की फ़ुर्सत ही कहां! तुम तो इस समय कभी आनन्द-सागर में गोते लगाने की सोचती होगी, तो कभी नये घर के लोग कैसे होंगे, इसकी चिन्ता करती होगी! इधर इन पण्डितों को सूझता ही नहीं कि इन मंत्रों के अर्थ हिन्दी भाषा में तुम्हें सुना दिया करें। ख़ैर, विवाह-विधि समाप्त हो गई। मित्र-सम्बन्धियों ने भोजन कर लिया। अब धीरे-धीरे विदाई का समय आ चला।

एक ओर तुम्हारे प्यारे माता-पिता, भाई-बन्धु तथा अन्य प्रेमी सम्बन्धी खड़े हैं। इनके बीच में तुमने अपने जीवन के सोलह वर्ष व्यतीत किये हैं। तुम जा रही हो, उनका हृदय रो रहा होगा। शंका और वियोग उनके मन को कितना विचलित कर रहा है। केवल एक तुम ही हो, जिसके ऊपर उनकी नेत्र-धारा गंगा-जमुना बहाने के लिए उमड़ रही है। तुम्हारा हृदय भी विदीर्ण हो रहा होगा। परन्तु क्या भविष्य का आनन्द और सुख की आशा सन्तोष देने के लिए पर्याप्त नहीं है? दूसरी गृहस्थी को फलती-फूलती बनाना तुम्हारा कार्य है। उसीके लिए तुम पैदा हुई थीं; उसीके लिए माता-पिता ने तुम्हें पाला था; फिर शोक क्यों? पृथ्वी और आकाश को हिला देने वाला आर्त्त-नाद क्यों? तुम्हें इस बुरी तरह रोते देख, उनके हृदय को और भी अधिक दुःख होता है। तुम्हें चाहिए कि धीरता पूर्वक अपने

बन्धुओं के विवाह के अवसर पर कई बार तुमने इसे सुना होगा। वही सुहागरात आज तुम्हारी भी है। तुम्हारे लिए एक कमरा तैयार किया गया है। विधि पूर्वक पूजा के बाद, रात्रि में पति-पत्नी के एकान्त सम्मेलन की वहां सब व्यवस्था कर दी गई है। रात्रि में तुम वहां पहुँचाई जाओगी, पतिदेव भी दबे पाँव किन्तु आशा एवं उमंग भरे हृदय से थोड़ी ही देर में वहां आ उपस्थित होंगे।

दो अल्प परिचित हृदयों का इस प्रकार एक रात्रि को मिलना कितनी कठिन समस्या है; विशेषतः उस काल में जब कि हमारा सभ्य कहलानेवाला समाज हमारे युवक-युवतियों को कामशास्त्र की शिक्षा देना सभ्यता के विरुद्ध समझता है ? इस विषय के प्रति इस उपेक्षा भाव का परिणाम अन्त में भयंकर ही होता है। पुरुष-स्त्री-सम्मेलन प्रेम-सम्मेलन है। जब दोनों ओर से विश्वास और प्रेम की धारा बह रही हो, दोनों प्रसन्नचित्त हों; दोनों किसी महान उद्देश्य के अभिलाषी हों; तभी समझ यह सम्मेलन सुखद एवं कल्याणकर हो सकता है। किन्तु होता यह है कि जहां एक ओर हमारी अधिकांश बहनें प्रायः इन बातों से अनभिज्ञ और लज्जा के बोझ से दबी रहने के कारण सहसा बात करने का भी साहस नहीं कर पातीं, और इसलिए किसी भी ऐसे नये काम के लिए, जिसका लज्जा से घनिष्ट सम्बन्ध हो, सहमत होने में अत्यन्त घबराती हैं। वहां, दूसरी ओर, हमारे युवक महाशय संसार के रंग में डूबे हुए विषय-वासना पूरित होते हैं और इसलिए प्रथम रात्रि में ही सहवास कर जीवन का आनन्द लूटना चाहते हैं। आह, कितना अदूरदर्शिता और हानि

कर व्यापार है यह ? स्त्रियों के संकोचशील और डरने की प्रकृति के कारण कभी-कभी इस बरबस संयोग से उन्हें कई भयंकर रोग हो जाते हैं, जिनसे वे जन्म भर छुटकारा नहीं पातीं। कभी-कभी तो वे इसी कारण अपने पति से घृणा तक करने लगती हैं। इसके विपरीत स्त्रियों की इस संकोचशीलता के ही कारण पति देवों का मन उनकी ओर से विरत हो, उनके वेश्यागामी आदि हो जाने के भी अनेक उदाहरण सुने जाते हैं। ऐसी दशा में, कामशास्त्र से अपरिचित पति यदि प्रथम रात्रि में सहवास की चेष्टा करे, तो इस प्रथा के दूषित होने पर भी, भविष्य के खयाल से तुम्हें इसमें बाधक नहीं होना चाहिए, वरन लज्जा का आवरण हटा कर प्रेम पूर्वक पति से सम्भाषण करना चाहिए।

अवश्य ही जो पति विद्वान् होगा, वह कभी भी प्रथम रात्रि में सहवास करने की चेष्टा न करेगा, क्योंकि वह जानता है कि बिना अपनी प्रिया की सम्मति के ऐसा करना न केवल शिष्टता एवं सदाचार के ही विरुद्ध होगा। वरन् कभी-कभी यह दाम्पत्य-प्रेम की नींव को भी हिला देता है। यदि ऐसा समझदार पति मिल गया, तब तो कहना ही क्या; किन्तु यदि भाग्यवश ऐसा न हो, तो भी चिन्ता न करो। यह समझ कर सन्तोष करो कि यदि समाज ने उसे उपयुक्त शिक्षा दी होती, तो वह ऐसी भूल कभी भी न करता। वह जान-बूझ कर तुम्हारा अनिष्ट नहीं करना चाहता है। उसे तुम्हारे शरीर, तुम्हारे स्वास्थ्य का उतना ही अधिक ध्यान है, जितना तुम्हारे बड़े से बड़े हितैषी को हो सकता है। वह तो इस समय तुम्हारे प्रेम का प्यासा है तुम्हारे अधरामृत का पान करने के लिए लालायित

बन्धुओं के विवाह के अवसर पर कई बार तुमने इसे सुना होगा। यही सुहागरात आज तुम्हारी भी है। तुम्हारे लिए एक कमरा तैयार किया गया है। विधि पूर्वक पूजा के बाद, रात्रि में पति-पत्नी के एकान्त सम्मेलन की वहां सब व्यवस्था कर दी गई है। रात्रि में तुम वहां पहुँचाई जाओगी, पतिदेव भी दबे पाँव किन्तु आशा एवं उमंग भरे हृदय से थोड़ी ही देर में वहां आ उपस्थित होंगे।

दो अल्प परिचित हृदयों का इस प्रकार एक रात्रि को मिलना कितनी कठिन समस्या है; विशेषतः उस काल में जब कि हमारा सभ्य कहलानेवाला समाज हमारे युवक-युवतियों को कामशास्त्र की शिक्षा देना सभ्यता के विरुद्ध समझता है ? इस विषय के प्रति इस उपेक्षा भाव का परिणाम अन्त में भयंकर ही होता है। पुरुष-स्त्री-सम्मेलन प्रेम-सम्मेलन है। जब दोनों ओर से विश्वास और प्रेम की धारा बह रही हो, दोनों प्रसन्नचित्त हों; दोनों किसी महान उद्देश्य के अभिलाषी हो; उसी समय यह सम्मेलन सुखद एवं कल्याणकर हो सकता है। किन्तु होता यह है कि जहां एक ओर हमारी अधिकांश बहनें प्रायः इन बातों से अनभिज्ञ और लज्जा के भार से दबी रहने के कारण सहसा बात करने का भी साहस नहीं कर पातीं, और इसलिए किसी भी ऐसे नये काम के लिए, जिसका लज्जा से घनिष्ट सम्बन्ध हो, सहमत होने में अत्यन्त घबराती हैं। वहां, दूसरी ओर, हमारे युवक महाशय संसार के रंग में डूबे हुए विषय-वासना पूरित होते हैं और इसलिए प्रथम रात्रि में ही सहवास कर जीवन का आनन्द लूटना चाहते हैं। आह, कितना अदूरदर्शिता और हानि

कर व्यापार है यह ? स्त्रियों के संकोचशील और डरने की प्रकृति के कारण कभी-कभी इस बरबस संयोग से उन्हें कई भयंकर रोग हो जाते हैं, जिनसे वे जन्म भर छुटकारा नहीं पातीं। कभी-कभी तो वे इसी कारण अपने पति से घृणा तक करने लगती हैं। इसके विपरीत स्त्रियों की इस संकोचशीलता के ही कारण पति देवों का मन उनकी ओर से विरत हो, उनके वेश्यागामी आदि हो जाने के भी अनेक उदाहरण सुने जाते हैं। ऐसी दशा में, कामशास्त्र से अपरिचित पति यदि प्रथम रात्रि में सहवास की चेष्टा करे, तो इस प्रथा के दूषित होने पर भी, भविष्य के खयाल से तुम्हें इसमें बाधक नहीं होना चाहिए, वरन लज्जा का आवरण हटा कर प्रेम पूर्वक पति से सम्भाषण करना चाहिए।

अवश्य ही जो पति विद्वान् होगा, वह कभी भी प्रथम रात्रि में सहवास करने की चेष्टा न करेगा, क्योंकि वह जानता है कि बिना अपनी प्रिया की सम्मति के ऐसा करना न केवल शिष्टता एवं सदाचार के ही विरुद्ध होगा। वरन् कभी-कभी यह दाम्पत्य-प्रेम की नींव को भी हिला देता है। यदि ऐसा समझदार पति मिल गया, तब तो कहना ही क्या; किन्तु यदि भाग्यवश ऐसा न हो, तो भी चिन्ता न करो। यह समझ कर सन्तोष करो कि यदि समाज ने उसे उपयुक्त शिक्षा दी होती, तो वह ऐसी भूल कभी भी न करता। वह जान-बूझ कर तुम्हारा अनिष्ट नहीं करना चाहता है। उसे तुम्हारे शरीर, तुम्हारे स्वास्थ्य का उतना ही अधिक ध्यान है, जितना तुम्हारे बड़े से बड़े हितैषी को हो सकता है। वह तो इस समय तुम्हारे प्रेम का प्यासा है तुम्हारे अधरामृत का पान करने के लिए लालायित

है। अतः व्यर्थ के भय और संकोच के वश हो उसे निराश न करो; हर्ष पूर्वक उस यज्ञ में भाग लो और अपने शरीर का इस प्रकार दान करने के बाद स्वामी से विनय करोः—

"प्यारे आज नवीन भाव से, मिलन हुआ मेरा तेरा।
तू प्रिय है मैं प्रेमी हूँ, बस मैं तेरी हूँ, तू मेरा॥
तेरे अटल प्रेम बन्धन में, मुझे विश्व की चाह नहीं।
एक अपांग दृष्टि हो तेरी, फिर कुछ भी परवाह नहीं॥"

तुम्हारे इस प्रकार शरीर-दान पर स्वामी अवश्य प्रसन्न होंगे, अतः तब तुम दृढ़तापूर्वक एक विजयिनी की तरह कविवर मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में कहनाः—

"जीवन की संग्राम भूमि में शीघ्र बजेगी जय भेरी।
तेरे कर्म और कर मेरे, तेरी शक्ति, भक्ति मेरी॥
देखूँ, अब रह सकता है, यह भवसागर का पार कहाँ!
साहस भरी तरणि है मेरी, तेरा है पतवार यहाँ॥"

बस बहन, आओ, अब तुम्हें संग्राम-भूमि में ले चलें। वहाँ तुम कभी देखोगी, कि जीवन कितना सुन्दर और कितना सरस है, तो कभी यही तुम्हें अत्यन्त कठोर और नीरस दिखाई देगा। आगे तुम देखोगी, महाकाल कटकटा कर हँस रहा है; राक्षसगण घूर रहे हैं। परन्तु मेरी दुर्गा, डरना नहीं। देखो, इस जीवन संग्राम में विजय लक्ष्मी तुम्हारे लिए ही जयमाल लिए खड़ी है।

नवीन जगत्

"हे ईश्वर इस नवीन जगत पर अपना कृपा दृष्टि रखना, प्यारे प्रेमियों को शान्ति और सुख की गोद में किलोल करने देना तुम्हारी आज्ञा पूर्ति के लिए ही उन्होंने यह सृष्टि रचना किया है, फिर तुम्हारे सिवाय वे किसकी आज्ञा करेंगे ?"

—शुक्लकुमार

"रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़कर अविवेकता।
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसीसे एकता॥
तन मात्र के ही मेल से है, मन भला मिलता कहीं।
है बाह्य बातों से कभी, अन्तःकरण खिलता नहीं॥"

—मैथिलीशरण गुप्त

प्यारी बहन, नये जगत में तुम आगई। क्या यह तुम्हारी पुरानी दुनियां से किसी हालत में कम है ? यदि हां तो अपने सद्गुणों से तुम इसे भी पुरानी दुनियां से श्रेष्ठ बना सकती हो, स्वर्ग का आनन्द लूट सकती हो, सब को प्रसन्न रख सकती हो और प्रेम के राज्य की महारानी बन चारों ओर फूलों की वर्षा करते हुए जीवन यात्रा कर सकती हो। इसके विपरीत यदि तुम दुःख से घबराकर, सद्गुणों को तिलांजलि दे, पथ-विचलित होगई, तो अपने और परिवार के जीवन को तो अशान्त बनाओगी ही, साथ ही अपने सिर कलङ्क का ऐसा जबर्दस्त टीका लगा लोगी, जो फिर सहज ही नहीं मिट सकेगा।

इस प्रकार अपने भविष्य को बनाने बिगाड़ने की मालकिन तुम्हीं हो। अतः जो कुछ करो खूब सोच समझकर करो। अब तुम समझदार होगई। अपनी भलाई-बुराई समझने लगीं, प्रत्येक काम के परिणाम को समझने की शक्ति तुममें आचली। अतः सावधान, सब कुछ करना, परन्तु अपने "देवी" के नाम के स्थान में "दानवी" लिखाने की भूल कदापि न करना। सदैव याद रखो कि—

"तन सुन्दर रोग विहीन रहे, मन त्याग उमंग उदास न हो।
रसना पर धर्म प्रसंग बसें, नर मंडल में उपहास न हो॥"

तुम्हारी सास तुम्हारी माता से किसी हालत में कम नहीं है- माता तुम्हें इस लिए पालती थी, कि तुम दूसरे गृह को सुशोभित करोगी। तुम्हारी सास तुम्हें इस लिए प्यार करती है, कि तुम उसकी कुलवधू हो। तुम्हारे सुख में उसके पुत्र का जीवन-सुख है, और पुत्र के जीवन-सुख में माता-पिता को आनन्द है। इसी तरह तुम्हारी ननद, तुम्हारी बहिन से किसी तरह कम नहीं। तुम उसके भाई की प्यारी हो, अतएव वह तुम्हें चाहती है। सखियों के स्थान में तुम्हारी देवरानियां-जिठानियां हैं। विशेषता यह है कि तुम्हारी सखियां कुछ दिनों की संगिनी थीं, परन्तु ये रात-दिन तुम्हारे साथ रहती हैं, एक साथ खाती और हंसी दिल्लगी करती हैं। भला बताओ, इस नई दुनियां में कौनसी बात नहीं है? अपने प्रेम और सद्व्यवहार से सबको प्रसन्न रक्खो, फिर देखो सब तुम्हारे लिए जान देने को तैय्यार रहेंगी। ईश्वर न करे, यदि कभी तुम्हारी तबियत खराब हुई तो रात भर

तुम्हारे पलंग के पास बैठी रहेंगी। प्रेम में ऐसा ही जादू है। इस प्रेम ने दुनियां में प्रेमियों से क्या-क्या नहीं करा लिया ?

बहन, इस नवीन गृह की अधिकारिणी तुम्हीं हो। जब तक तुम्हारी सास-जिठानी आदि की तुमपर छत्र-छाया है, तब तक तुम पर इतनी जिम्मेदारी नहीं आती। परन्तु उनके बाद यह उत्तरदायित्व तुम्हींपर आने वाला है। अतः उसे अच्छी तरह निभाने के लिए अभी से अनुभव प्राप्त करती जाओ। यदि दैवयोग से तुम्हें घर साधारण मिला है, यदि यहां तुम्हें कुछ कष्ट है, तो घबराओ नहीं। यदि पति का पवित्र प्रेम तुम्हें निरन्तर मिलता रहता है, तो समझो सब कुछ मिल गया। क्या तुम नहीं जानतीं कि इसी पवित्र प्रेम के लिए महारानी सीता ने स्वयं आग्रह कर राज महल छोड़कर बन जाना स्वीकार किया था। भगवान रामचन्द्र ने उन्हें बन के बहुत से दुःख और कठिनाइयां बतलाईं, किन्तु वे विचलित न हुईं और नम्रता पूर्वक कहने लगीं—

"खग मृग परिजन नगर बन, बलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन सम, पर्णशाल सुख मूल॥
बन देवी बन देव उदारा।
करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुश किशलय साथरी सुहाई।
प्रभु संग मंजु मनोज तुराई॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू।
अवध सौध सत-सरिस पहारू॥

छिनछिन प्रभु पद कमल विलोकी।
रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

महारानी सीता के इस आदर्श को सामने रखकर इस अवस्था में भी तुम अपना जीवन सुख और शान्तिमय बिता सकती हो।

पतिदेव जो द्रव्य उपार्जन करके लावें उसके सदुपयोग का पूरा ध्यान रक्खो। एक पैसा भी फिजूल न खर्च होने दो, व्यर्थ के शृंगार और जीभ की तृप्ति के लिए धन को नष्ट न करो।

धीरे धीरे तुम्हें अपनी निर्णय करने की शक्ति को भी तीव्र करते रहना चाहिए। कौन कार्य किस समय किया जाय तथा अचानक कोई घटना हो जाने पर तत्काल ही क्या करना चाहिए इसके लिए तुम्हें अपनी विचारशक्ति को संस्कृत करते रहना चाहिए। मानलो कि तुम घर में बैठी हो। बालक के कपड़े में आग लग गई, उस समय तुम क्या करोगी? इत्यादि आकस्मिक घटनाओं के लिए अपनी बुद्धि को तीव्र करने की कोशिश करते रहना चाहिए, जिससे कि अवसर आने पर तुम कठिन समय में भी अपनी निर्मल सम्मति दे सको। ऐसी विचारशीला देवियों के लिए ही तो विद्वान् जेम्स नार्थकोट महोदय लिखते हैं कि "सलाह करने के लिए स्त्री पुरुष से अच्छी है। जब कभी किसी मामूली सी बात से मेरा दिल घबरा उठता है तब स्त्री की मदद से मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो यह बात ऐसी नहीं है, जिससे मुझे दुखी होना पड़े। स्त्री सलाह देने में इतनी होशियार कैसे होती हैं? इसका उत्तर यही है कि पुरुष को हर चीज से काम पड़ता है; बहुतसी झंझटों का सामना करना पड़ता है, इसीलिए वह छोटी-

छोटी बातों से भी घबरा उठता है। लेकिन स्त्री इतनी झंझटों से सम्बन्ध नहीं रखती। वह तटस्थ व्यक्ति की तरह हरएक बात को बाहिर से देखती रहती और उनके यथार्थ मूल को जानती है, इसीसे वह उलझन को सहज में सुलझा सकती है। शास्त्रों के पढ़ने में वह पुरुषों से कम होती हो, परन्तु उसकी नैसर्गिक प्रज्ञा-स्वाभाविक बुद्धि अत्यन्त दूरदर्शी है।"

नवीन जगत् को हंसते हुए देखने के लिए तुम्हें प्रसन्नता को अपनाना पड़ेगा। तुम्हारा मुंह कभी उदास न होना चाहिए। तुम्हारी उदासी में दूसरे का भी उदास हो जाना सम्भव है। इसके विपरीत यदि तुम अपने प्रत्येक शब्द से प्रसन्नता लुटाती फिरोगी, तो स्वयं अपने स्वास्थ्य को तो बनाओगीही साथ ही सैकड़ों बाधाओं को दूर भगा दोगी।

तुम्हारे गृह में देवताओं की मूर्तियां भी होनी चाहिएं। तुम यदि सनातन-धर्मी नहीं हो—यदि मूर्ति पूजा में तुम्हारा विश्वास न हो, तो उस अवस्था में भी तुम्हारे घर में एक ऐसा स्थान अवश्य ही होना चाहिए जो उपासना-मंदिर समझा जाये और जहां तुम सुबह और शाम इस विश्व के रचनेवाले की प्रार्थना किया करोगी। पृथ्वी पर पैदा हुए प्राणियों में ईश्वर को न माननेवाला मनुष्य बड़ा ही कृतघ्न है। तुम कहोगी कि वैज्ञानिक लोग तो ईश्वर को नहीं मानते, परन्तु इससे क्या? वे प्रकृति देवी को तो मानते हैं; वे उसीके सामने अपना सिर झुका देते हैं। उपयुक्त धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण पश्चिमीय देशों की तरह धीरे धीरे हमारे यहां से भी ईश्वर और देवी-देवता उड़े जाते हैं। परिणाम स्वरूप साथ साथ हमारे विचार भी बिगड़ते जाते हैं। एक

उच्च एवं पवित्र विचारवाला, अपने शरीर को समाज की सेवा में लगा देनेवाला, रात-दिन अविश्राम परिश्रम द्वारा रोगी और दीनों की सेवा करनेवाला व्यक्ति भले ही ईश्वर के नाम को न याद करे, पर उसके कृत्य तो ईश्वर की सेवा कर रहे हैं। परन्तु हम साधारण श्रेणी के लोगों को अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा, ईश्वर-प्रार्थना के नाते, अच्छे कर्मों की ओर बढ़ना चाहिए। इसका यही उपाय है कि प्रति-दिन प्रत्येक बहन एकन्त में प्रार्थना करते समय अपने दिन भर के अपराधों को ईश्वर के सामने रखे, और उसके बाद फिर कभी ऐसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा कर ईश्वर से उस प्रतिज्ञा पालन का बल प्रदान करने की प्रार्थना करे। श्रद्धा और विश्वास रखने पर वह एक न एक दिन तुम्हारे हृदय में अवश्य बल देगा और तुम्हारी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण होगी। अतएव ईश्वर में अटल-भक्ति और हृदय के विश्वास से दिन भर के कार्यों को प्रारम्भ किया करो। प्रत्येक कार्य करते समय उसकी उपयोगिता और सत्यता पर एक बार विचार कर लिया करो।

बहनो, नवीन जगत् में आते ही तुम्हें एक काम अवश्य ही सौंपा जावेगा, वह है भोजन पकाना। अवश्य ही अपने मातृ-मन्दिर में ही तुमने इस कार्य में निपुणता प्राप्त कर ली होगी। यदि दुर्भाग्य से ऐसा न कर पाई हो, तो कोई चिन्ता की बात नहीं। अपनी सास से पूछ-पूछ कर काम करना सीखो। चीजें बिगड़ने न पायें इसका ध्यान रक्खो। फिर भी यदि बिगड़ जाए तो क्षमा मांग लो। सास के अप्रसन्न होने पर अपनी सेवा और मीठे वचनों से उन्हें सन्तुष्ट कर लो। उनकी झिड़की और डांट का बुरा न मानो। वे सब केवल तुम्हें सुधारने के लिए ही तो

ऐसा करती हैं। तब उनकी बातों से बुरा क्यों माना जाय ? इसका अर्थ तो यह होगा कि तुम रोगी होने पर भी अपने डाक्टर को सजा देना चाहती हो। यदि तुमने ऐसा किया तो सचमुच यह बड़े आश्चर्य की बात होगी। किन्तु आशा है तुम ऐसा करोगी नहीं। अस्तु।

तुम्हारे गृह में दास-दासियां हैं, तो उनके सुपुर्द कोई जिम्मेदारी का काम न छोड़ो। उनपर अविश्वास न करो; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं, कि तुम उनपर सारी जिम्मेदारी छोड़ दो। उन्हें कोई ऐसा अवसर न दो, जिससे वे कोई अनुचित लाभ उठा सकें। प्रकृति बड़ी विचित्र होती है। अच्छे-अच्छे लोगों की नियत भी अवसर पाकर बदल जाया करती है, अतएव तुम्हारी उनके ऊपर पूर्ण निगरानी रहनी चाहिए। किन्तु इसके साथही प्रेम पूर्ण व्यवहार की भी कमी न होने देना। ये सब बातें कठिन हैं, पर धीरे-धीरे तुम इनमें कुशलता प्राप्त कर लोगी।

पतिदेव को प्रसन्न रखना तुम्हारा सबसे बड़ा धर्म है। कहा भी है:—

"न सा स्त्री त्यभिमन्तव्या यस्यां भर्त्ता न तुष्यति।
तुष्टे भर्त्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्व देवताः॥"

अर्थात् "जिस स्त्री से उसका स्वामी प्रसन्न नहीं रहता, उसे स्त्री मत समझो। पति के प्रसन्न होने पर स्त्री पर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं।" अतएव तुम्हारा लक्ष "एकै धर्म, एक व्रत नेमा; काय वचन मन पति पद प्रेमा" होना चाहिए। स्वामी जब काम से लौटें, तब प्रसन्न-चित्त से उनके स्वागत के लिए तुम्हें

तैयार रहना चाहिए। यदि वे धूप में चलकर आए हैं, उन्हें पसीना आ रहा है, तो उनपर पंखा झुलाओ, प्यास लगी हो, तो ज़रा सुस्ता लेने के बाद पानी पिलाओ। उनके कपड़े उतार कर खूंटी पर टांग दो। सार यह कि तुम्हें सब तरह उनके दिवस-श्रम को दूर कर, उनके हृदय को प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए।

कभी कभी तो आजकल की अपठिता स्त्रियों का व्यवहार देखकर हृदय में बड़ी चोट लगती है। वे पति के आते ही दिन-भर का वाद-विवाद लेकर उसके सामने अपना रोना रोने बैठ जाती हैं। इससे पतिदेव को गृहस्थी भार स्वरूप मालूम होने लगती है और धीरे-धीरे उनके हृदय की शान्ति दूर हो जाती है। अतः तुम सदैव इस बात का ध्यान रक्खो कि यदि पति की अनुपस्थिति में कोई घटना हो गई हो, तो उनके आतेही, यदि उनसे कहना आवश्यक ही हो तो भी उन्हें न सुना दो। उन्हें ज़रा आराम कर लेने दो; फिर प्रेम-पूर्ण अवसर देखकर, मीठे शब्दों से सब बात समझा दो।

बहन, तुम सोचती होगी कि लेखक अपनी विचार-धारा में भारतीय गृहों के सर्व-दृश्य को बहा ले गया। नहीं, मैं जानता हूँ, कि हम लोग सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसी दशा में सास-ससुर आदि के सामने तुम किस प्रकार लज्जा त्याग कर इस प्रकार पति-सेवा के लिए उपस्थित हो सकती हो?

पत्नी को भी समाज से इन रूढ़ियों को मिटाने का कुछ प्रयत्न करना चाहिए। प्राचीन काल में इस तरह की कोई रुकावट नहीं थी। अतएव पढ़े लिखे सभ्य समाज को वर्तमान में प्रचलित इन बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बहनो, तुम्हारा यह नया जगत इस विशाल जगत का ही एक भाग है; अलग अंग नहीं। अतः तुम उसे संकुचित करने का प्रयत्न न करना। पति को अच्छे कामों में उत्साहित करते रहना और बुरे कामों, बुरी आदतों को दूर करने में प्रयत्नशील रहना तुम्हारा कर्त्तव्य होना चाहिए। दूसरों के सामने पति के दोष दिखाना अच्छा नहीं, और न घर के बाहर पति सम्बंधी बातों की चर्चा करते फिरना ही अच्छा है। वह तुम्हारा स्वामी है। उसकी बुराई में तुम्हारी बुराई है। तुम्हें चाहिए कि यदि दुर्भाग्यवश उसमें कुछ दुर्गुण पैदा हो गए हों तो समय समय पर अपने विचारपूर्ण वचनों द्वारा इन दुर्गुणों को दूर करने का प्रयत्न करो। कई स्त्रियों ने अपने अदम्य उत्साह द्वारा शराबी और जुआरी तथा वेश्यागामी स्वामियों को भी सीधे रास्ते पर लाने में सफलता प्राप्त की है। तुम भी यही कर सकती हो। परन्तु याद रहे कि तुम्हारा कोई भी उपचार पति के हृदय को दुःखाने वाला न हो। नहीं तो इससे कभी कभी लाभ के बदले हानि अधिक हो जाने की सम्भावना रहती है। अस्तु!

जैसा कि 'सरस्वती उपासना' शीर्षक अध्याय में कहा जा चुका है, अपने नये जगत् में पति की सहायता से तुम्हें धीरे धीरे उपयोगी पुस्तकें संग्रह करना आरम्भ कर देना चाहिए।

किन्तु भूल कर भी किसी खराब पुस्तक को गृह में न घुसने दो अन्यथा भय है कि वही पुस्तक एक दिन तुम्हारे सुन्दर भवन को, तुम्हारी सुखद गृहस्थी को मिट्टी में न मिला दे।

बहनो, स्मरण रखो कि तुम्हें अपने पैरों पर खड़े होना, आत्म सम्मान प्राप्त करना और प्राणीमात्र से प्रेम एवं परमेश्वर की भक्ति करना सीखना है। यदि तुमने यह सीख लिया तो फिर तुम्हारे गृह पर गुप्त रीति से स्वर्ग के दूत पहरा देंगे और स्वयं परमात्मा तुम्हारे गृह में स्थाई रूप से आ विराजेंगे।

इस जीवन-संग्राम में सबके दिन सदैव एक से नहीं जाते, सदा हरियाली नहीं रहती। अतः सम्भव है आगे चल कर तुम पर भी बाधाओं की घनघोर घटायें घिरें, और तुम्हें पद-पद पर अपमान और दूसरों की झिड़कियाँ सुननी पड़ें। सावधान, इनसे घबरा कर अपने व्यवहार में कुछ भूल न कर बैठना। यदि कोई प्रेम का उत्तर प्रेम से न दे, तो समझो कि उसने तुम्हारे हृदय को नहीं जाना है। तुमने अभी उसके हृदय से अपने सम्बन्ध की शंकाओं को दूर नहीं किया है। इसमें गलती तुम्हारी है, उसकी नहीं। अपने हृदय को ऊँचा करो और सदा ही कवि के मालती के दिए हुए इस उपदेश को स्मरण रक्खो।

"पर ऐश्वर्य निलोक न करना, कभी ईर्षा द्वेष मालती।
कर उपकार न आने देना, अहंकार लवलेश मालती॥
नीरस हो या सरस सभी से करना जग में प्यार मालती।
विश्व प्रेम को भूल न जाना, सब धर्मों का सार मालती॥"

इतना करने पर समझ लो तुम्हारे भाग्य में आनन्द ही आनन्द भरा है। किन्तु यदि इस पर भी कोई कहे कि मुझे सुख नहीं मिलता, तो स्पष्ट शब्दों में कहना चाहिए कि वह अभागी है, सच्चे सुख को पहिचानना उसने अभी तक नहीं सीखा है।

विचित्र कुंजी

"द्रव्य का उचित उपयोग और ज्ञानयुक्त गुणागुण-बोध एक धुरी है जिस पर समाज घूमता है।"

शीघ्रता से संग्रह किया हुआ धन घटता जायगा,
परन्तु थोड़ा थोड़ा, हाथों से, संग्रह किया धन बढ़ता ही जायगा।"

—गेटे

'ऋणी होकर उठने से अनाहार सोना अच्छा है।

—कहावत

जैसा कि पिछले किसी अध्याय में बताया जा चुका है, गृहस्थी को अच्छी तरह चलाने के लिए धन के सदुपयोग एवं उसके संग्रह की आदत डालना अत्यन्त आवश्यक है। यदि तुम स्वर्ग-सुख का अनुभव करना चाहती हो; गृहस्थ जीवन में सुख-शान्ति की निद्रा लेना चाहती हो; आपत्ति आ जाने पर एक बड़े सहारे को अपने पास रखना चाहती हो; अपने प्यारे नन्हें नन्हें बच्चों को संसार में उन्नत और प्रसन्न देखना चाहती हो; समय पड़ने पर अपने कुटुम्बियों की यथायोग्य सहायता करना चाहती हो; अपने द्वार से किसी भी दीन-अनाथ को दुखी हो नहीं जाने देना चाहती हो तो प्राप्त धन के सदुपयोग और उचित उपायों से और अधिक धन के संग्रह का प्रयत्न करो।

किन्तु ऐसा करते हुए एक बात सदैव ध्यान में रखना, वह यह कि एक मात्र द्रव्योपार्जन ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य न

बन जाय। संसार की विचित्र समस्याओं ने द्रव्य को आजकल ऐसा चीज बना रक्खा है जिसके असली रूप को समझना साधारण मस्तिष्क के बाहिर की बात है। आजकल का द्रव्य-प्रेम ही वर्तमान अनेक दुःख और दुर्गुणों की जड़ है। अपनी इस धन-पिपासा की शान्ति के ही लिए वो साहूकार लोग अगणित गरीबों को घर-द्वार-विहीन कर देते हैं। ऐसे धन-लोलुप ही तो अपने आदर्शों को त्याग, देश और जाति का अपकार करने के लिए तैयार रहते हैं। इसके विपरीत जो लोग द्रव्य का सदुपयोग करना जानते हैं, वे उसके द्वारा अनेकों गरीबों की सहायता एवम् विधवा और अनाथों की रक्षा करते हैं और देश की स्वतन्त्रता और जाति के उपकार में उसका सद्व्यवहार करते हैं। सारांश द्रव्य की शक्ति सर्व-व्यापिनी है। इसके आवरण में भले और बुरे दोनों का इतिहास छिपा हुआ है। किन्तु तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस समय भारत की अधिकांश रमणियों के सामने द्रव्योपार्जन का प्रश्न नहीं है। उनके सामने प्रश्न है उसे ठीक तौर पर खर्च करने का। तुम कह सकती हो "वाह, यह भी कोई बहुत बड़ी बात है; भला पैसे का खर्च करना कौन नहीं जानता।" किन्तु बात ऐसी नहीं है। अज्ञानवश कई बार सर्वथा अनावश्यक बातों में पानी की तरह रुपया बहा दिया जाता है। अतः इस विषय में बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। मनुष्य की प्रायः अधिक खर्च करने की आदत ही है, क्योंकि उसमें उसे क्षणिक बड़ाई मिल जाती है। कुछ इन्द्रियों की तृप्ति भी हो जाती है। भूत को वह देखना नहीं चाहता; वर्त्तमान उसके हाथ का खिलौना है, भविष्य स्वप्न है।

इसीलिए वह भ्रमग्रस्त कर बैठता है। स्वामी की कमाई का सब द्रव्य तुम्हारे ही हाथ आता है, यदि उसने तुम्हें सच्ची गृह-लक्ष्मी मान एवम् बना लिया है, तो आना ही चाहिए, अतः तुम्हें चाहिए कि तुम लक्ष्मी के गुण को समझ उसके उचित उपयोग द्वारा अपने गृह-लक्ष्मी नाम को सार्थक करने के लिए सदैव सचेष्ट रहो। प्रसिद्ध विद्वान एडवर्ड डेनीसन का कथन है कि मनुष्य को सदैव भावी आवश्यकताओं का ध्यान रखना जरूरी है। उसे सदा परिणाम-दर्शी होना चाहिए। जो परिणाम-दर्शी है, वह मानो जीवन-संग्राम में विघ्न-बाधाओं से मुकाबला करने के लिए अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए खड़ा है। भविष्य के लिए तैयार रहना सर्वोत्तम गुण है।" अतः तुम्हें भी अन्य लोगोंकी जीवन-घटनायें देख कर दूर-दर्शी बनना चाहिए।

बहनो, तुम्हारे पतियों की मासिक आमदनी से ही यदि कोई तुम्हारी सम्पत्ति का निर्णय करना चाहे तो यह निरी मूर्खता होगी। पति की खजानची तो तुम्हीं हो। अतः यदि आवश्यकता पड़े तो तुम किस प्रकार से व्यय करती हो,—इसीसे तुम्हारी सम्पत्ति का अनुमान लगाया जाना चाहिए। तुमने अभी विवाहित जीवन में प्रवेश किया है। कुछ दिन बाद तुम माता बनोगी। गृहस्थी का खर्च बढ़ता जायेगा। प्यारे पुत्र के लालन-पालन और भविष्य के लिए भी द्रव्य की जरूरत पड़ेगी। अतएव तुम्हें द्रव्य का उचित उपयोग करना सीखना चाहिए।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक आवश्यक बात, जो कि तुम्हें सदैव याद रखनी चाहिए, वह यह है कि सदैव इस बात का

ध्यान रखो कि कभी भूल कर भी आमदनी से अधिक खर्च न होने पावे। सारी आमदनी खर्च कर डालने में भी कोई बुद्धिमानी नहीं है। खर्च हमेशा आमदनी से कम ही रहना चाहिए। ऐसा करने से कुछ द्रव्य प्रति मास बचता जावेगा और समय आने पर अच्छी रकम हो जायगी, जो भविष्य की किसी बाधा को दूर करने या बुढ़ापे में काम आयगी।

आमदनी से कम खर्च करने की सब से प्रथम सीढ़ी नियमपूर्वक चलना है। प्रत्येक मास के आरंभ होते ही खर्च का कच्चा चिट्ठा बना लेना चाहिए। भोजन-वस्त्र, लकड़ी-ईंधन, मकान किराया, सफाई, धोबी आदि प्रत्येक चालू खर्च के लिए कुछ द्रव्य नियत कर लेना चाहिए। उससे अधिक खर्च करना उचित नहीं। आरम्भ में कुछ महीने तक तो यह कार्य कुछ कठिन मालूम होगा। जहां तुम एक पैसे का अन्दाज करोगी, वहां डेढ़ पैसा खर्च हो जावेगा। पर अभ्यास होते-होते तुम इतनी निपुण हो जाओगी कि वर्ष के प्रथम दिन ही वर्ष भर के आय और व्यय का बजट तैयार कर सकोगी। प्रतिमास बीमारी आदि दैवी आपत्तियों एवं त्यौहार आदि प्रचलित विशेष अवसरों के लिए एक निश्चित रकम अलग बचा कर रखनी चाहिए। इस तरह काम चलाने में बड़ी ही बचत होती है।

भविष्य-जीवन के लिए घर में द्रव्य जमा रखने में प्रायः एक कठिनाई यह होती है कि किसी आवेग में आकर जमा किया हुआ सारा द्रव्य एक ही बार में खर्च कर डाला जाता है, अतएव बची हुई रकम को पोस्ट ऑफिस-सेविंग बैंक अथवा किसी दूसरे अच्छे बैंक में जमा करा देना अच्छा होगा। इससे रकम तो सुरक्षित

कठिन हो जाता है। रुपये न मिलने पर अदालत की शरण लेना पड़ती है और इस प्रकार की अन्य अनेक झंझटों का शिकार बनना पड़ता है। ऐसी दशा में इस झगड़े में पड़ने से क्या लाभ?

अनुभवी विद्वानों ने मितव्ययिता की बड़ी बड़ी प्रशंसा की है। एक लेखक के शब्दों में "मितव्ययिता दूरदर्शिता की पुत्री, संयम की भगिनी और स्वतंत्रता की माता है।" इस मितव्ययिता की ही बदौलत सैकड़ों निर्धन धनवान बन चुके हैं। अतः यदि तुम धनवान बनना चाहते हो; तो तुम भी इसीका अवलम्बन करो। तुम्हें उचित उपायों से धनवान बनने का प्रयत्न करना ही चाहिए, क्योंकि दरिद्रता से बढ़ कर संसार में कोई दुःख नहीं है। दरिद्री कुटुम्ब को देख और तो क्या, सगे-संबंधी तक मौका आने पर मुंह छिपा जाते हैं! इतना ही नहीं, दरिद्रावस्था से मनुष्य को प्रायः स्वयं ही अपने ऊपर बड़ा अविश्वास सा हो जाता है और प्रत्येक बात के करने और कहने में संकोच है। कदाचित इसीलिए हमारे एक विद्वान नीतिज्ञ का कथन है:—

"दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात्परिभ्रश्यते,
निःसत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्ध्या परित्यज्यते,
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।"

अर्थात् "दरिद्रता के कारण संकोच और लज्जा आती है, लज्जा के कारण धैर्य्य चला जाता है। धैर्य्य के चले जाने से पराभव होता है, पराभव होने से खेद होता है, खेद होने से शोक तथा पश्चात्ताप होता है, और शोक से क्षय अर्थात् नाश होता है, इसलिए दरिद्रता सब

रहती ही है, साथ ही कुछ थोड़ा सा ब्याज भी प्राप्त हो जाता है।

पति की गाढ़ी कमाई को गहनों में खर्च करना अच्छा नहीं। इससे कई हानियां होती हैं। रात-दिन गहने पहिरने के कारण हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ जाता है कि कई स्त्रियां संकट का समय उपस्थित होने पर भी अपने गहनों का मोह छोड़ कर उसे बेच कर विपत्ति से रक्षा के लिए तैयार नहीं होतीं। दूसरी बात यह है कि रात-दिन के उपयोग से ज़ेवर घिसता जाता है और इस तरह से पूँजी घटती ही जाती है। आवश्यकता के समय बेचे जाने पर लागत तो अलग उस समय के मूल्य की अपेक्षा भी कम दाम मिलते हैं। तीसरी हानि यह है कि उतना द्रव्य व्यर्थ ही फंसा रहता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वही रकम किसी बैंक में रखने से ब्याज पैदा कर सकती है। चौथा नुक्सान यह है कि रात-दिन उनकी रक्षा की चिन्ता पड़ी रहती है। चोर, लुटेरे, डाकुओं आदि की दृष्टि हमेशा उनपर गड़ी रहती है। पाँचवीं हानि यह है कि उनसे धीरे-धीरे स्वभाव में भी अन्तर आ जाता है। अहंकार और अभिमान की मात्रा बढ़ती जाती है। अतएव, इस जाल में अपने को फँसाना उचित नहीं। धर्म प्रधान भारत-माता की पुत्री को ज्ञानवान और हृदयवान होना चाहिए न कि शृंगारप्रिया और हृदयहीना।

कभी-कभी स्त्रियाँ बचाए हुए द्रव्य को उधार देकर, ब्याज द्वारा उसकी वृद्धि करना चाहती हैं। परन्तु यह मार्ग निरापद नहीं है। कभी-कभी चालाक लोग गिरवी (धरोहर) में खोटा गहना रख जाते हैं, जिससे पीछे रुपये में आठ आना भी पल्ले पड़ना

कठिन हो जाता है। रुपये न मिलने पर अदालत की शरण लेना पड़ती है और इस प्रकार की अन्य अनेक झंझटों का शिकार बनना पड़ता है। ऐसी दशा में इस झगड़े में पड़ने से क्या लाभ ?

अनुभवी विद्वानों ने मितव्ययिता की की बड़ी प्रशंसा की है। एक लेखक के शब्दों में "मितव्ययिता दूरदर्शिता की पुत्री, संयम की भगिनी और स्वतंत्रता की माता है।" इस मितव्ययिता की ही बदौलत सैकड़ों निर्धन धनवान बन चुके हैं। अतः यदि तुम धनवान बनना चाहते हो; तो तुम भी इसीका अवलम्बन करो। तुम्हें उचित उपायों से धनवान बनने का प्रयत्न करना ही चाहिए, क्योंकि दरिद्रता से बढ़ कर संसार में कोई दुःख नहीं है। दरिद्री कुटुम्ब को देख और तो क्या, सगे-संबंधी तक मौका आने पर मुंह छिपा जाते हैं ! इतना ही नहीं, दरिद्रावस्था से मनुष्य को प्रायः स्वयं ही अपने ऊपर बड़ा अविश्वास सा हो जाता है और प्रत्येक बात के करने और कहने में संकोच है। कदाचित इसीलिए हमारे एक विद्वान नीतिज्ञ का कथन है:—

"दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात्परिभ्रश्यते,
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोक निहतो बुद्धया परित्यज्यते,
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ।"

अर्थात् "दरिद्रता के कारण संकोच और लज्जा आती है, लज्जा के कारण धैर्य्य चला जाता है। धैर्य्य के चले जाने से, पराभव होता है, पराभव होने से खेद होता है, खेद होने से शोक तथा पश्चात्ताप होता है, और शोक से क्षय अर्थात् नाश होता है, इसलिए दरिद्रता सब

आपत्तियों की जननी है।" इस प्रकार द्रव्य की उपयोगिता का यथार्थ परिचय प्राप्त कर, आशा है, अब तुम गृहस्थी के कार्यों को इस प्रकार चलाना आरम्भ करोगी, जिससे भविष्य के लिए कुछ न कुछ अवश्य ही बचता रहे।

इन सब बातों के लिए संयम की बड़ी जरूरत है। वासनाओं के प्रलोभनों और नजाकत से बचे बिना सफलता संभव नहीं है। अत्यन्त साधारण एवं दरिद्र परिवारों के सिवाय, अन्यः प्रायः सभी गृहस्थियों में बरतन माँजने एवं घर में झाड़ू-बुहारा देने आदि के लिए नौकर रक्खे जाते हैं। यह प्रथा दूषित है। इसे छोड़ स्वयं काम करने की आदत डालनी चाहिए। इसका पहिला लाभ तो यह है कि इससे बचत होगी; दूसरा लाभ व्यायाम सम्बन्धी है। निठल्ले बैठे रहना उचित नहीं। आलस्य की यह बीमारी शीघ्र ही शारीरिक स्वास्थ्य पर आक्रमण करती है। इस प्रकार काम में लग जाने से तुम इससे बच सकोगी। हिन्दू समाज में पान खाने की भी एक बड़ी बुरी प्रथा है। इससे लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। चूने का दांतों पर बड़ा ही बुरा असर पड़ता है। अतएव जहाँ तक हो सके इससे बचने

यह तो तुम्हारे गृह में एक खतरनाक बात और आ सकती है, उससे भी हमेशा बचते रहना चाहिए। वह है कर्ज की बीमारी। कर्ज लेकर काम करने की अपेक्षा न करना ही अच्छा है। कर्ज लेकर भोजन करने से भूखों मरना उत्तम है। इसी कर्ज के कारण बड़ी-बड़ी जागीरें तक मिट्टी में मिलती देखी गई हैं। जब तुम्हारे पास पैसा नहीं है, तो तुम्हें किसी चीज के खरीदने का अधिकार नहीं है। एकबार कर्ज हो जाने पर उसके चुकाने की चिन्ता रात-दिन सवार रहती है और कभी सुख से नहीं सोने देती। तिसपर भी यदि दैव-योग से समय पर कर्ज न चुकाया जा सका तो गाली और अपमान सहना पड़ता है, सो अलग।

कभी कभी यह भी देखा जाता है कि कई बहनें सस्ती चीजें देखकर उनपर ललच पड़ती हैं। किन्तु वे यह नहीं जानती कि सस्ती चीजें अक्सर कम टिकाऊ हुआ करती हैं और अन्त में उनसे नुकसान ही होता है। कोई-कोई तो केवल इसीलिए चीजें खरीदती हैं कि वक्तपर काम आवेंगी। इस आदत से कई बार बड़ी हानि उठानी पड़ती है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि "हमारा नाश हमारी यथार्थ आवश्यकताओं से नहीं, कल्पित आवश्यकताओं से होता है। इसलिए आवश्यकताओं की कहीं अन्यत्र खोज न करना चाहिए। यदि वे यथार्थ हैं तो स्वयं तुम्हारे निकट खोज करती हुई आवेंगी, क्योंकि जो कोई अनावश्यक वस्तुयें मोल लेता है, शीघ्रही उसे ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता होगी; जिन्हें वह मोल नहीं ले सकता।"

इसी प्रकार त्योहारों के दिन व्यर्थ बहुत-सा खर्च कर दिया

को मोल नहीं ले सकता, उसके बदले हृदय ही देना पड़ता है। अपना हृदय देकर ही दूसरे का हृदय जीता जा सकता है।

बहनो, एक दूसरे के प्रेम में लीन हुए दम्पतियों को देखने से मालूम होता है कि वे कितने निर्मल कितने शान्त-चित्त और कितने मिले हुए रहते हैं। सच्चा-प्रेम उनके हृदय को इतना सुशील बना देता है कि उनमें से सभी दुर्गुण निकल जाते हैं और पवित्र प्रेम से पावन हुआ उनका मन दुर्गुण की ओर जाने का विचार तक नहीं कर सकता। पवित्र मनःशक्ति दुर्गुणों को दबा देती है। इसीलिए सच्चा-प्रेम उनके हृदय और मन को पवित्र बना देता है।

प्रेम-जन्य आनन्द बढ़ जाने पर दम्पती पर्णकुटी में, तृण-शय्या पर भी स्वर्गीय-सुख और अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं। कुटिल प्रपंच उनके इस आनन्द में बाधा डालने में सर्वथा असमर्थ रहता है। उनके परस्पर व्यवहारादि में इतनी सुशीलता आ जाती है कि मूर्ख उसे देखकर आश्चर्य करते हैं।

वस्तुतः वे दम्पती धन्य हैं, जिन्हें अपने जीवन में सच्चे दाम्पत्य-सुख का अनुभव करने का अवसर मिला है। दाम्पत्य-सुख दाम्पत्य-प्रेम पर ही निर्भर है, और प्रेम-संयम पर। इन सब का परस्पर अभेद्य सम्बन्ध है। एक को परित्याग करने की कल्पना भी नहीं हो सकती। ऐसी दशा में दम्पतियों को प्रेम-पूर्वक प्रेम-धर्म का पालन करना चाहिए।

बहनो, जब इस प्रकार तुम्हारा दाम्पत्य-प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाय; जब तुम्हारे स्वामी के पास सुखी-जीवन के स्थापन और पालन-पोषण के लिए यथोचित द्रव्य हो जाय; और जब तुम्हारी अवस्था १८–२० के लगभग पहुँच जाय, तब तुम

संसार में ईश्वरीय नियम के पालन के हेतु "नवीन यज्ञ"—गर्भ-धारण—का अनुष्ठान कर सकती हो। बालक का भविष्य गर्भिणी की उम्र पर भी निर्भर रहता है। विचार लो कि तुम किस प्रकार के बालक की माता होना चाहती हो। संसार में तीन श्रेणी के मनुष्य रहा करते हैं। एक साधारण योग्यतावाले, दूसरे मध्यम श्रेणी वाले जो समाज में अच्छा स्थान रखते हैं और तीसरे श्रेष्ठ-श्रेणी वाले जो अपनी दूर-दर्शिता एवं उदार कृत्यों से संसार में बहुत आगे रहते हैं। जिनके चरण-चिन्हों को देखकर संसार आगे बढ़ता है, जिनके नाम संसार की सभ्यता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित किये जाते हैं। अनेकों उदाहरणों की जांच करने के बाद एक निर्णय निकाला गया है कि सहवास करने के पहिले स्त्रियों को सोच लेना चाहिए कि "क्या वे स्वस्थ्य, प्रसन्न-चित्त और केवल जीवन-निर्वाह योग्य बुद्धि रखने वाले प्राणी पसन्द करती हैं। यदि हां, तो उन्हें बालकों को अपने प्रारम्भिक काल में जन्म देना चाहिए। बुद्धि में साधारण होने पर भी ऐसे स्वस्थ्य पुरुष भी संसार के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। उनके लिए भी संसार में बहुत काम है। और जो स्त्रियां, शरीर से चाहे उतनी हृष्ट-पुष्ट न हों, परन्तु स्वस्थ्य और ऊपर बतलाए हुए मनुष्यों की अपेक्षा अधिक बुद्धि तथा दृढ़-स्वभाव वाले प्राणी चाहती हैं, उन्हें कुछ अधिक उम्र की हो जाने पर गर्भ-धारण करना चाहिए। इन सबके विपरीत जो स्त्रियां चाहती हैं कि उनके बालक संसार में प्रसिद्ध हों, जिनका बुद्धि-कौशल, जिनके आविष्कार संसार पर अपनी छाप लगा दें, वा वे २५ से ४५ वर्ष की आयु के बीच गर्भ-धारण करें।

इस तरह अपना उद्देश्य पहले से निश्चित कर उस अवस्था तक कठोर ब्रह्मचर्य का पालन कर, धर्म-युक्त जीवन व्यतीत करते रहना प्रत्येक दम्पती का कर्त्तव्य है।

क्या एक ही सहवास से गर्भ रह सकता है? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। पुरुष, स्त्री के शारीरिक विकास के सिवाय उनके ब्रह्मचर्य आदि अनेकों बातों पर गर्भ का स्थिर होना निर्भर रहता है। फिर भी दम्पतियों को ऋतु का स्मरण रखना चाहिए। अपने सहवास का समय इस प्रकार से नियुक्त करो जिससे बसंत-ऋतु में या ग्रीष्म के आरम्भिक काल में सन्तान हो सके। यह समय बच्चों की पुष्टि और पालन के लिए सदा ही उपयुक्त रहा करता है। वर्षा या कड़ी ठण्ड के काल में सन्तान की देख-रेख में बड़ी ही सावधानी रखनी पड़ती है। ऋतु की भीषणता होने से कोमल सन्तान नवीन जगत में प्रवेश कर शीघ्रही किसी न किसी बीमारी का शिकार बन जाती है और उससे रक्षा करने में माता-पिता को अनेकों कष्ट उठाने पड़ते हैं।

वैज्ञानिक बड़ी खोज के बाद इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि सहवास के समय और मानसिक अवस्थाका गर्भ पर बड़ा असर पड़ा करता है। सन्तान उत्पन्न करना एक यज्ञ की पूर्ण आहुति के समान है; एक वरदान प्राप्त करने के समान है। अतएव इस वरदान को प्राप्त करने के लिए तप की आवश्यकता रहा करती। जिस वस्तु के प्राप्त करने में जितना अधिक परिश्रम करना पड़ता है वह उतनी ही सुपरिणामदायक रहा करती है। जिस भांग को तैयार करने में समस्त मानसिक और शारीरिक शक्तियों का व्यय किया जाता है वह सुन्दर और श्रेष्ठ क्यों न होगा?

दुर्भाग्यवश आजकल हमारे यहाँ 'सहवास एक घृणितरूप धारण किए हुए है। स्त्रियाँ काम की पुतलियाँ बना ली गई हैं। पति इन्द्रिय-तृप्ति के लिए समय-असमय एवं ऋतु-कुऋतु पर ध्यान नहीं देता। यह ठीक है कि अधिकांश में सहवास दोनों की इच्छा से ही होता है, परन्तु 'काम-वासना' एक ऐसी संक्रामक बीमारी है, कि वह जरा में ही, किसी भी भली-बुरी अवस्था में युवा-युवतियों में जागृत की जा सकती है। बेचारी स्त्रियां दिन भर घर गृहस्थी के कार्यों को करने के बाद थक जाती हैं। स्वयं पतिदेव की भी क़रीब-क़रीब यही अवस्था रहा करती है; परन्तु रात्रि में पति-पत्नी का मिलन होते ही काम-लीला शुरू हो जाती है। ऐसा होना पति-पत्नी दोनों के ही स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। वस्तुतः सहवास-काल में स्वास्थ्य, प्रसन्न-चित्त और प्रेम-पूर्ण सम्भाषणमें संलग्न रहना चाहिए। भोजन के बाद तीन चार घंटे तक किसी भी प्रकार यह अनुष्ठान न करना चाहिए। प्रसिद्ध डाक्टर ए. ए. फिनिश एम. बी. बी. एस् लिखते हैं कि:—

"जब स्त्री या पुरुष की मानसिक और शारीरिक अवस्था एक दम खराब रहे अथवा कठिन परिश्रम के बाद जब देह थकावट के आ जाने से सुस्त मालूम हो, या भारी भोजन पदार्थ पच रहा हो, तब मनुष्य के सभी स्नायु एवं देह के ऊपर वैद्युतिक प्रवाह का होना उचित नहीं है। रात्रि के अन्त में, निद्रा के बाद जब मन और देह खूब स्वस्थ हों, उसी समय स्त्री-पुरुष प्रसंग होना उचित है।" इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि गर्भाधान के समय शयनागार (सोने का कमरा) अच्छा

सजा हो, तुम अपनी देह शृंगारयुक्त और सुगन्धयुक्त बना लो, और फिर प्रसन्नचित्त हो ईश्वर की प्रार्थना कर अपनी शैय्या पर कदम रक्खो। ईश्वर तुम्हारी सब कामना सिद्ध करेगा।

जननी-दायित्व

(१)

"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यह लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥"

—भगवान मनु

"अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना; उत्पन्न हुए का पालन करना और नित्य के गृह कार्यों का सम्पादन करना स्त्री का कर्त्तव्य है ।"

एक सुन्दरी, जवानी की उमंग में, वासनाओं का शिकार बन, अपने प्राण-प्यारे की गोद में जा पड़ती है । फिर कुछ समय के बाद वे काम-किलोल में प्रवृत्त होते हैं । उस समय उसे अपने भविष्य और अपनी क्रियाओं के होनेवाले परिणाम का कुछ भी खयाल नहीं रहता । इस तरह नवीन युवती माता के रूप को धारण करने लगती है । यदि ऐसी युवती गृह में अकेली है तब तो आगे चल कर कठिनाइयां बहुत बढ़ जाती हैं । वह पास-पड़ोस की अनुभवी स्त्रियों से सलाह लेने का प्रयत्न करती है । परन्तु ये उसे कहां तक ठीक और उपयोगी सलाह दे सकती हैं, इसमें सन्देह ही है । क्योंकि अपने समय में न तो वे प्रत्येक घटना पर पूरा ध्यान दे पाती हैं, और न वे दूसरों को समझाने की ही योग्यता रखती हैं । यही कारण है कि कई बहनों को, अपनी सासुओं तथा अन्य सयानी स्त्रियों की अनेकों सलाहें मालूम

सजा हो, तुम अपनी देह शृंगारयुक्त और सुगन्धयुक्त बना लो, और फिर प्रसन्नचित्त हो ईश्वर की प्रार्थना कर अपनी शैय्या पर क़दम रक्खो। ईश्वर तुम्हारी मनोकामना सिद्ध करेगा।

जननी-दायित्व

(१)

"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥"

—भगवान मनु

"अर्थात सन्तान उत्पन्न करना; उत्पन्न हुए का पालन करना और नित्य के गृह कार्यों का सम्पादन करना स्त्री का कर्त्तव्य है।"

एक सुन्दरी, जवानी की उमंग में, वासनाओं का शिकार बन, अपने प्राण-प्यारे की गोद में जा पड़ती है। फिर कुछ समय के बाद वे काम-किलोल में प्रवृत्त होते हैं। उस समय उसे अपने भविष्य और अपनी क्रियाओं के होनेवाले परिणाम का कुछ भी ख़याल नहीं रहता। इस तरह नवीन युवती माता के रूप को धारण करने लगती है। यदि ऐसी युवती गृह में अकेली है तब तो आगे चल कर कठिनाइयां बहुत बढ़ जाती हैं। वह पास-पड़ोस की अनुभवी स्त्रियों से सलाह लेने का प्रयत्न करती है। परन्तु वे उसे कहां तक ठीक और उपयोगी सलाह दे सकती हैं, इसमें सन्देह ही है। क्योंकि अपने समय में न तो वे प्रत्येक घटना पर पूरा ध्यान दे पाती हैं, और न वे दूसरों को समझाने की ही योग्यता रखती हैं। यही कारण है कि कई बहनों को, अपनी सासुओं तथा अन्य सयानी स्त्रियों की अनेकों सलाहें मालूम

सज्जा हो, तुम अपनी देह शृंगारयुक्त और सुगन्धयुक्त बना लो, और फिर प्रसन्नचित्त हो ईश्वर की आराधना कर अपनी शैय्या पर क़दम रक्खो। ईश्वर तुम्हारी मनोकामना सिद्ध करेगा।

जननी-दायित्व

(१)

"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥"

—भगवान मनु

"अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना; उत्पन्न हुए का पालन करना और नित्य के गृह कार्यों का सम्पादन करना स्त्री का कर्त्तव्य है।"

एक सुन्दरी, जवानी की उमंग में, वासनाओं का शिकार बन, अपने प्राण-प्यारे की गोद में जा पड़ती है। फिर कुछ समय के बाद वे काम-किलोल में प्रवृत्त होते हैं। उस समय उसे अपने भविष्य और अपनी क्रियाओं के होनेवाले परिणाम का कुछ भी खयाल नहीं रहता। इस तरह नवीन युवती माता के रूप को धारण करने लगती है। यदि ऐसी युवती गृह में अकेली है तब तो आगे चल कर कठिनाइयां बहुत बढ़ जाती हैं। वह पास-पड़ोस की अनुभवी स्त्रियों से सलाह लेने का प्रयत्न करती है। परन्तु ये उसे कहां तक ठीक और उपयोगी सलाह दे सकती हैं, इसमें सन्देह ही है। क्योंकि अपने समय में न तो वे प्रत्येक घटना पर पूरा ध्यान दे पाती हैं, और न वे दूसरों को समझाने की ही योग्यता रखती हैं। यही कारण है कि कई बहनों को, अपनी सासुओं तथा अन्य सयानी स्त्रियों की अनेकों सलाहें मालूम

सजा हो, तुम अपनी देह शृंगारयुक्त और सुगन्धयुक्त बना लो, और फिर प्रसन्नचित्त हो ईश्वर की प्रार्थना कर अपनी शैय्या पर क़दम रक्खो। ईश्वर तुम्हारी मनो-कामना सिद्ध करेगा।

जननी-दायित्व

(१)

"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥"

—भगवान मनु

"अर्थात सन्तान उत्पन्न करना; उत्पन्न हुए का पालन करना और नित्य के गृह कार्यों का सम्पादन करना स्त्री का कर्त्तव्य है।"

एक सुन्दरी, जवानी की उमंग में, वासनाओं का शिकार बन, अपने प्राण-प्यारे की गोद में जा पड़ती है। फिर कुछ समय के बाद वे काम-किलोल में प्रवृत्त होते हैं। उस समय उसे अपने भविष्य और अपनी क्रियाओं के होनेवाले परिणाम का कुछ भी खयाल नहीं रहता। इस तरह नवीन युवती माता के रूप को धारण करने लगती है। यदि ऐसी युवती गृह में अकेली है तब तो आगे चल कर कठिनाइयां बहुत बढ़ जाती हैं। वह पास-पड़ोस की अनुभवी स्त्रियों से सलाह लेने का प्रयत्न करती है। परन्तु ये उसे कहां तक ठीक और उपयोगी सलाह दे सकती हैं, इसमें सन्देह ही है। क्योंकि अपने समय में न तो वे प्रत्येक घटना पर पूरा ध्यान दे पाती हैं, और न वे दूसरों को समझाने की ही योग्यता रखती हैं। यही कारण है कि कई बहनों को, अपनी सासुओं तथा अन्य सयानी स्त्रियों की अनेकों सलाहें

कर लेने पर भी, अनेक बार बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। यहाँ तक कि आजकल बालक जनना 'मृत्यु-मुख' में होकर निकलना पड़ जाने लगा है। मरे हुए बालकों का जन्म एवम् बालक और माता दोनों की "जनन-काल" में मृत्यु हो जाने की घटनायें दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही हैं।

इसका प्रधान कारण प्राकृतिक जीवन की बिगाड़ ही है। ज्यों-ज्यों हम सभ्य बनते जा रहे हैं, त्यों त्यों प्राकृतिक नियमों का पालन करना हमें बोझ सा मालूम होता जाता है। इससे स्त्रियों के शारीरिक स्वास्थ्य पर बड़ा ही असर पड़ता है। जिन हड्डियों के द्वार से बालक को निकल कर संसार में आना पड़ता है वे बढ़ नहीं पातीं! उनकी बाढ़ न होना ही मातृत्व के लिए अत्यन्त हानिकारक है। बच्चे का सिर यदि वहाँ से नहीं निकल सकता तो फिर माता और बालक दोनों की मृत्यु हो जाना क्या अस्वाभाविक है?

बहनो, सहवास के बाद यह जानने की इच्छा हुआ करती है, कि क्या तुम गर्भवती हो गई हो? कई स्त्रियों को सहवास के बाद ही इसका ज्ञान हो जाता है; किन्तु सर्व-साधारण स्त्रियाँ इसे नहीं समझ पातीं। उन्हें तभी पता चलता है जब वे इसके बाद ऋतुमति नहीं होतीं। यह एक साधारण बात है कि प्रत्येक स्त्री २८-३० दिन के बाद ऋतुमती हुआ करती है, जिसे मासिक-धर्म, ऋतु-धर्म, एवं कपड़े से होना आदि कहते हैं। गर्भवती हो जाने पर यह ऋतु-धर्म बन्द हो जाता है। परन्तु कई बार, कई स्त्रियों का खून की कमी रक्त वेग ही किन्हीं अन्य कारणों से भी ऋतुधर्म बन्द हो जाया करता है। इस दशा में किसी कुशल

वैद्य-डाक्टर को बता कर उसका इलाज कराना चाहिए। कभी-कभी गर्भवती हो जाने पर भी दो तीन मास तक ऋतुधर्म हुआ करता है, परन्तु वह पहिले के समान अधिक नहीं होता। केवल एक या दो दिन बहुत थोड़ी मात्रा में होता है, उसका ध्यान रखना चाहिए।

गर्भवती का दूसरा लक्षण यह है कि कुछ दिनों तक प्रातःकाल के समय, उसके मुँह से स्वाद-रहित तरल पदार्थ निकला करता है और कभी भोजन के बाद वमन (उल्टी) भी होने लगती है।

गर्भवती का तीसरा लक्षण उसके स्तनों की वृद्धि है। ये धीरे-धीरे बढ़ने एवम् भारी होने लगते हैं; स्तनमुख कड़ा और काला हो जाता है; उसके चारों ओर भी उसी तरह की कालिमा बढ़ जाया करती है; साथ ही स्तन की त्वचा में नीली-नीली रेखायें दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

बहनो, इस प्रकार गर्भवती के लक्षण जानने के बाद एक ओर तुम्हारी उत्सुकता और दूसरी ओर चिन्ता और भी बढ़ने लगेगी। धीरे-धीरे तुम्हारे शरीर की कान्ति भी बदलने लगेगी। परन्तु डरने की कोई बात नहीं है। माता का मातृत्व एक धार्मिक बलिदान है। मातृत्व की महानता विश्व-व्यापिनी है। अनेकों कष्टों को सहकर माता अपना नाम संसार में चिरस्थाई रखती है। संसार की रणस्थली में सब को अपने अपने जिम्मे का भाग चुकाना पड़ता है। एक वैज्ञानिक किसी नियम विशेष की खोज में वर्षों परिश्रम करता है। एक मूर्तिकार अपने जीवन के कई दिवस एक सुन्दर मूर्ति तैयार करने में लगाता है। एक लेखक

अनेकों वर्षों के अध्ययन और अनुभव के बाद एक उपयोगी ग्रन्थ लिखने में सफल होता है। एक देशभक्त देश की भलाई के लिए अपने कुटुम्ब, अपने धन, तथा अपने जीवन तक को उस पर निछावर कर देता है। धर्म-प्रचारक धर्म और सिद्धान्त की वेदी पर अपना सिर कटा देता है। इसी प्रकार तुम भी संसार के उपकार और ईश्वरीय नियम-पालन के लिए प्रसन्नता-पूर्वक मातृ-पद पाने के लिए आगे बढ़ो। महात्मा टालस्टाय के शब्दों में "सच्चा विवाह, जिसका फल सन्तानोत्पत्ति होता है, परमात्मा की अप्रत्यक्ष सेवा ही है। इसीलिए विवाह हो जाने पर हमें एक प्रकार की शान्ति मिलती है। हमें तो अपने काम को दूसरे के हाथों में सौंपने का सुख समझना चाहिए। यदि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया, तो मेरे प्रतिनिधि मेरे बच्चे हैं, वे कर डालेंगे।"

आजकल के नवशिक्षित लोगों का मत है कि गर्भवती स्त्री को सर्वथा आराम करना चाहिए, इसी से गर्भ की ठीक तौर पर पुष्टि होती है। इसके विपरीत बेचारी निम्न-श्रेणी की स्त्रियाँ उस अवस्था में भी कठिन से कठिन एवं अत्यन्त परिश्रम का काम करते देखी जाती हैं। किन्तु ये दोनों ही बातें हानिकारक हैं। साधारण गर्भवती स्त्री को न तो इतना कठिन काम ही करना चाहिए, न सदैव पलंग पर ही पड़े रहना चाहिए। उसका मार्ग मध्यवर्ती है। घर-गृहस्थी के हलके काम करने से कोई हानि नहीं होती, उलटे लाभ ही हुआ करता है। मकान में झाड़ू देना, भोजन तैयार करना, बर्तन माँजना—ये इतने सरल काम हैं; जिन्हें ८ वें मास तक की गर्भवती बिना कष्ट के कर सकती है।

हाँ, एक बात अवश्य है। कई स्त्रियाँ स्वभाव से ही बहुत कमजोर होती हैं। कई बीमारी की हालत में ही गर्भवती हो जाती हैं। उनके लिए यह नियम नहीं लगाया जा सकता। उनकी शारीरिक शक्ति जितना कार्य करने में समर्थ हो, उन्हें उतना ही करना चाहिए।

उनके सिवाय अन्य स्त्रियों के लिए इस प्रकार के हलके काम करना अनिवार्य होना चाहिए। बदहज़मी और इसी प्रकार के पेट के अन्य कई विकार इस अवस्था में प्रायः सभी स्त्रियों को हो जाया करते हैं। उन्हें रोकने का इससे बढ़कर सरल अन्य कोई उपाय नहीं है।

शुद्ध वायु-सेवन एवम् सुबह-शाम आध-पौन घंटा खुली हवा में टहलना भी बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। हमारे देश में, स्त्री-समाज में व्यायाम एवम् इस प्रकार वायु सेवन का रिवाज है ही नहीं। अतः आदत न हो, तो पहले थोड़ी-थोड़ी देर चलने का अभ्यास करना चाहिए। इससे शारीरिक पुट्ठे दृढ़ होते हैं, और गर्भ धारण करने में अधिक कठिनाई नहीं मालूम पड़ती।

गर्भवती स्त्री को रात्रि में अधिक समय तक जागना उचित नहीं। सिनेमा और नाटक देखने में समय नष्ट करना बड़ा ही हानिकारक है। हलके भोजन के बाद ९ बजे सो जाना उचित है। परन्तु यदि दिन में परिश्रम न किया जायगा, तो स्वप्न-रहित एवं शान्त-निद्रा न आवेगी। इसलिए भी कुछ हलका परिश्रम करना आवश्यक है। इसके सिवाय सोने के पहले मन को एकाग्र और शान्त करने का प्रयत्न भी करना चाहिए। अन्यथा स्वप्न बिना सताये नहीं रहेंगे, जिनका गर्भस्थ बालक पर असर पड़े

बिना न रहेगा। सोते समय यदि पैर कुछ ऊँचे रक्खे जावें, तो पैरों के रक्त-संचालन में सहायता मिलती है।

तुम्हारे सोने का कमरा काफी बड़ा और खूब हवादार हो। यदि हो सके तो खटिया या पलंग पर नरम बिछौना बिछा कर सोओ। ज़मीन पर, केवल एक मामूली गद्दा या दरी पर ही लेटे रहना, हानिकारक है। बिछौना और ओढ़ना नरम और ...
उपयोगी होना चाहिए।

हानिकारक सिद्ध होता है। इस अवस्था में नाना प्रकार की वस्तु खाने की इच्छा हो सकती है और होती भी है; इन इच्छाओं की बुद्धिमानी एवं संयम से पूर्ति करना, पेट के बच्चे के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। प्रातःकाल एक गिलास गर्म दूध पीना; दोपहर के समय रोटी-दाल, भात-घी खाना; रात्रि के समय खिचड़ी-दाल या ऐसा ही अन्य कोई हलका भोजन करना चाहिए। प्रतिदिन दोपहर या सन्ध्या के समय किसी न किसी प्रकार के फलों का सेवन करते रहना भी अच्छा होगा। इस प्रकार के थोड़े और रुचि-अनुकूल हलके भोजन से स्वास्थ्य-लाभ होता है और बदहज़मी की व्याधि की विशेष चिन्ता नहीं रहती। यदि किसी कारण-वश बदहज़मी होही जाय, तो दवा की आदत न डालकर, सुबह-शाम एक-एक गिलास गरम पानी पीने से वह आसानी से दूर हो सकती है। भोजन के बाद थोड़ी देर लेटे रहना बड़ा ही लाभ-दायक है। इस प्रकार करने से शरीर के अवयव उचित रीति से काम करने लगते हैं। सारांश व्यायाम और भोजन इन दोनों का समुचित ध्यान रखने से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक बना रहेगा और तुम व्यर्थ की अड़चनों से बच जाओगी। पसीना और पेशाब अधिक निकलने से प्रसव-पीड़ा कम हो जाया करती है। कभी-कभी अरण्डी के तेल से हलका जुलाब ले लेना और पर्याप्त मात्रा में पानी पीना भी अच्छा है।

जिस तरह पेट को स्वच्छ रखने की आवश्यकता है उसी तरह त्वचा को शुद्ध रखना चाहिए। इसके लिए नित्य-स्नान करना सबसे सरल उपाय है। दिन-भर पसीने के द्वारा शरीर से गन्ध-युक्त, दूषित पदार्थ निकला करता है। यदि तुम बराबर

स्नान न करोगी तो पसीना निकलने के ये छिद्र बन्द हो जावेंगे और इस प्रकार अन्दर से सफाई का एक मार्ग बन्द हो जायगा। यदि ठण्डे पानी में नहाने से तुम्हें सर्दी मालूम होती है तो कुन-कुने जल का उपयोग करो।

कई स्त्रियों को गर्भ-पात हो जाने का सदा ही डर रहा करता है। साधारण प्रकार से जीवन-व्यतीत करनेवाली, स्वस्थ स्त्री के लिए तो डर की कोई आवश्यकता ही नहीं, परन्तु जिन्हें रातदिन ऊपर से नीचे उतरना-चढ़ना, भारी चीजों को उठाना-धरना एवं इसी तरह अन्य कठिन काम करने या गाड़ी में इधर-उधर नीचे-ऊँचे में धक्के खाने पड़ते हैं, उनके गर्भ-स्राव हो जाना सर्वथा सम्भव रहता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी आकस्मिक मानसिक वेदना से भी गर्भ-स्राव हो जाता है। एक स्त्री सिनेमा में भयंकर दृश्य देखने के बाद गर्भ को खो बैठी; दूसरी अन्धकार में डर गई और उसकी भी यही दशा हुई। अतः ऐसी बातों से बचने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

कई पथ-विचलिता बहनें, इज्जत बचाने के लिए गर्भ-पात करने की फिकर में रहा करती हैं। इनके लिए पैसा पैदा करने वालों ने कुछ दवाइयाँ भी ढूंढ निकाली हैं। ऐसी बहनों को समझ रखना चाहिए कि अपनी भूल के कारण दूसरे के जीवन को नष्ट करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। यदि तुम एक बार अज्ञानवश गड्ढे में गिर चुकी हो, तो अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अब भी अपने जीवन को उच्च बनाना सीखो। आगे ऐसी भूल न करने की दृढ़-प्रतिज्ञा करो और गर्भस्थ बालक की प्राण-रक्षा का ध्यान कर, संयम पूर्वक उसकी रक्षा करो। यदि समाज तुम्हें न

अपनावे तो ईश्वर पर भरोसा करो; वह कोई न कोई समाज-सेवक तुम्हारी रक्षा के लिए भेज ही देगा। भगवान मनु अपनी स्मृति में लिखते हैं:—

"कृत्वा पापंहि संतप्य तस्मात्पापत्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्या पुनरीति निवृत्त्या पूयतेतु सः॥"

अर्थात् "यदि मनुष्य अपने किए हुए पाप के लिए उचित पश्चात्ताप करले और फिर कभी वैसा कर्म न करने का मन से दृढ़-संकल्प कर ले, तो वह उस पाप से छूट जाता है।"

ऐसी बहनों को यह जान लेना चाहिए कि गर्भ-पात करने की सब दवायें जहरीली रहा करती हैं। उनसे माता और बालक दोनों को हानि पहुँचती है और दोनों ही मृत्यु-मुख में जा पड़ते हैं। यदि गर्भ-पात के बाद सौभाग्य से माता बच भी गई, तो जन्म भर के लिए कोई न कोई व्याधि उसके पीछे लग जाती है। अतः एक बार भूल हो जाने पर उस पाप-मोचन का उपाय गर्भ के बालक की रक्षा कर, उसे उच्च और सदाचारी बनाना है, न कि लोकापवाद के भय से उसके और अपने प्राणों को संकट में डालना। अस्तु।

गर्भवती की अवस्था में सहवास करने के प्रश्न पर भिन्न भिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कई डाक्टर गर्भ-काल में कभी-कभी के संयोगों को हानिकारक नहीं बतलाते। परन्तु कुछ का कहना है कि इस प्रकार के सहवास से स्त्रियों के शारीरिक अंगों पर विशेष दबाव पड़ने से गर्भ को हानि पहुँचती है। मेरी

स्टोप्स का कहना है कि "सहवास करने की इच्छा केवल स्वस्थ गर्भवती में रहा करती है।" परन्तु इसके विपरीत कई ऐसे उदाहरण भी पाये गये हैं, जहां सर्वथा कमजोर स्त्रियों ने भी सहवास की तीव्र इच्छा प्रगट की है। कई बार तो साधारण अवस्था से भी इस अवस्था में उनकी इच्छा कई गुनी अधिक पाई गई है। वासना को वश में रखना यद्यपि कठिन अवश्य है परन्तु असम्भव नहीं। अतः यदि तुम अपने हृदय से सहवास के विचार को दृढ़ता पूर्वक दूर कर दोगी तो निश्चय ही तुम उससे बची रह सकोगी। इसके लिए पति-पत्नी यदि अलग-अलग कमरे में सोया करें, तो बहुत ही अच्छा हो। गर्भावस्था के सहवास से यद्यपि कई स्वस्थ स्त्रियों को हानि होती नहीं देखी गई; परन्तु साधारण स्वास्थ्य एवं दुर्बल शरीर वाली स्त्रियां तो बड़ी आपत्ति में पड़ जाती हैं। कभी-कभी वे स्वयं मृत्यु का शिकार बनती हैं और बालक की जान तो हमेशा खतरे में रहती ही है। कुछ वैज्ञानिकों के मत से गर्भ के दो मास तक के सहवास से गर्भ की पुष्टि होती है, परन्तु इस विषय के परीक्षात्मक उदाहरण बहुत कम हैं और यह विषय अभी बहुत विवादग्रस्त है। अतएव गर्भकाल के महीनों में सहवास बिल्कुल न करना ही सर्वोत्तम उपाय है। महात्मा टालस्टाय के शब्दों में "गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन-काल में विषयोपभोग न करने से स्त्री के शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है।"

गर्भ की अवस्था में यदि हो सके तो किसी अच्छे डाक्टर या दाई को समय-समय पर अपनी हालत बतलाते रहना अच्छा है। और

ऐसा नहीं कर सकतीं; वे ऊपर लिखी हुई बातों पर ध्यान रखने से सरलता पूर्वक गर्भ-रक्षा कर सकेंगी। हां, यदि कोई अचानक अधिक कष्टदायक बात ज्ञात होने लगे तो डाक्टर को बुलाने में देर नहीं करनी चाहिए।

जननी-दायित्व ।

(२)

"यदि मेरे देश में सुमातायें हों, तो मैं अपने देश को स्वर्ग बना सकता हूँ ।"

—सम्राट नेपोलियन ।

"संसार में माता-पिता की अपेक्षा अधिक अच्छे जीव का छोड़ जाना ही सच्चे मातृत्व का उद्देश्य है ।"

—चारलाट गिलमन ।

"बालक के अंगों पर खिलने वाली मधुर कोमल नवीनता अभी तक कहाँ छिपी थी, कोई व्यक्ति जानता है ? हाँ, जब माता एक युवती थी, तब वह स्नेह और शान्त-रहस्यमय प्रेम के रूप में उसके हृदय में विराजमान थी ।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

बहनो, क्या तुम जानती हो महान् नर-पुंगवों के पैदा करने वाली कौन हैं ? किसके उदर से योगीराज कृष्ण, भगवान राम आदि का जन्म हुआ ? ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, छत्रपति शिवाजी, महात्मा गान्धी आदि के उत्पन्न करने का श्रेय किनको है ? यदि तुम नहीं जानतीं, तो सुनो, तुम्हारे समान देवियाँ ही इनकी जननी हैं । तुम जैसी के ही उदर से संसार को कँपा देने वाला नेपोलियन, विश्व को विजय करने वाले अशोक, सीज़र,

अलेकजेण्डर, साहित्य की अमर ज्योतियां कालिदास, शेक्सपियर, होमर, गेटे, तुलसीदास, मधुसूदन; राजनीति विशारद ग्लेडस्टन, पिट, गोखले, तिलक; धर्म की ज्योति से संसार को प्रदीप्त करने-वाले महात्मा बुद्ध, ईसा आदि अपने समाज, देश एवं संसार की सेवा करने वाली सैकड़ों महान् आत्माओं का जन्म हुआ है। तब फिर तुम क्यों निराश होती हो ? क्या इसी प्रकार के वीरों को तुम अब भी उत्पन्न नहीं कर सकतीं ? अवश्य कर सकती हो। तुमने कभी इस विषय पर विचार नहीं किया है। संसार के क्षेत्र में उच्च आत्माओं को जन्म देने का कभी भी तुमने निश्चय नहीं किया। जो कुछ तुमने अपनी आंखों के सामने अपने पुरा-पड़ोस अथवा अपने ग्राम और शहर में देखा, उससे ऊपर उठने की तुम्हारे हृदय में कभी भावना ही नहीं आई। अन्यथा कोई कारण नहीं कि तुम भी किसी ऐसी ही महान् आत्मा की जननी न बनतीं। सम्राट नेपोलियन के शब्दों में 'असम्भव' शब्द केवल मूर्खों के कोष में ही रहना चाहिए, समझदारों के लिए संसार में कोई बात असम्भव नहीं; आवश्यकता है केवल दृढ़ इच्छाशक्ति, सत्य संकल्प और अटल निश्चय की। वैज्ञानिकों ने अनेक उदाहरणों से यह बात भली भांति सिद्ध कर दिखाई है कि माता-पिता यदि चाहें, तो मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। अतः यदि तुम चाहो तो तुम भी अपने सत्य संकल्प और प्रबल इच्छा-शक्ति द्वारा ऐसे ही नर-रत्न उत्पन्न कर अपने नाम को अमर कर सकती हो। अपने भावी बालक की भविष्य विधाता तुम्हीं हो। अतः जिम्मेदारी को समझो और उसी के अनुकूल अपना व्यवहार बनाओ।

तुम जानती हो होगी कि जब कभी तुम किसी पर क्रोध करती हो, तब तुम्हारा कलेजा शीघ्रता से धड़कने लगता है, मुंह लाल हो जाता है, नेत्र रक्त वर्ण हो जाते हैं, शरीर कभी-कभी कांपने लगता है। तुम्हारे क्रोध का स्वास्थ्य पर इतना तीव्र असर होता है कि क्रोध शान्त होने बाद शरीर में कमजोरी और हृदय में दुर्बलता अनुभव होने लगती है। इसी तरह बीमारी की अवस्था में प्रसन्न-मुख व्यक्ति की सान्त्वना कैसी अमृतमयी शांत होती है; आधा रोग केवल उसके सहानुभूति पूर्ण शब्दों से ही दूर हो जाता है। प्रसन्न-चित्त, हँस-मुख व्यक्ति बात-बात में प्रसन्नता के फूल बरसाता रहता है। इससे उसका स्वास्थ्य भी बड़ा अच्छा रहता है, क्योंकि हँसने से रक्त का उचित संचालन होता है और भोजन पचने में बड़ी सहायता मिलती है। यही कारण है कि डॉक्टर लोग भोजन के समय और उसके बाद भी मधुर-मनोरंजन का आदेश करते हैं। इन बातों से तुम समझ सकती हो कि मानसिक अवस्थाओं का शारीरिक स्वास्थ्य पर कैसा असर पड़ता है? कई क्रोधी मनुष्यों के रक्त की परीक्षा करने पर डॉक्टरों ने उसमें एक विषैले पदार्थ को पाया है। गर्भ के पालन-पोषण का सम्बन्ध माता के रक्त से रहता है; अतएव अप्रत्यक्ष रूप से मानसिक परिस्थिति और गर्भ के बालक का अटूट और अचूक सम्बन्ध दृष्टि-गोचर होता है। इसलिए इस संबंध में गर्भिणी का सबसे प्रथम कर्त्तव्य अपने चित्त को प्रसन्न रखना है। उसे कभी भी चिन्ता-युक्त नहीं रहना चाहिए। यह कहा जा सकता है कि घर गृहस्थी की झंझटों में फंसे रहते प्रसन्नता कैसे रखी जा सकती है। इसका सरल उत्तर यही है

कि अपने मन एवम् स्वभाव को अपने वश में रखने से सब कुछ सम्भव हो सकता है। मानलो कि तुम्हारी सास तुम्हें हृदय-भेदी शब्दों से ताड़ रही है, तो क्या तुम अपने मन पर काबू रख उन्हें सुना अन-सुना नहीं कर सकतीं? यदि तुम्हारी किसी भूल के कारण वे ऐसा कर रही हैं, तब तो तुम्हारे बुरा मानने एवम् मुंह फुलाने का कोई कारण हो नहीं, शान्ति पूर्वक उनकी ताड़ना सुन अपनी भूल सुधारने का प्रयत्न करो। और यदि वे अपने दुस्स्वभाव के कारण ऐसा करती हैं, तो यह सोचकर कि इस समय तुम्हारे उदर की सन्तान तुमसे प्रसन्नता का भोजन चाहती है उसे हँसकर टाल दो। यदि तुम प्रसन्न रहोगी तो तुम्हारी सन्तान प्रसन्न और सुन्दर मुख, सुडौल और अच्छी होगी। इसके विपरीत चिन्ता-युक्त रहने एवम् दुःख और शोक में अपना मन फंसाये रहने से सन्तान निर्बल, कुरूप और दुष्ट-हृदय हुआ करती है। कदाचित इसीलिए गर्भिणी का अपने किसी मृत सम्बन्धी को देखना या उसके घर जाना उपयुक्त नहीं समझा जाता। इस प्रकार की समस्त बातों से उसे दूर रक्खा जाता है।

चित्त की प्रसन्नता को कायम रखने का एक और भी उपाय है, अपने मन को किसी न किसी काम में लगाए रहना। निठल्लापन दुष्ट-प्रकृति और कुविचारों का जन्म-स्थान रहा करता है। यदि तुम अकेली बैठी हो अथवा तुम्हारे पास कुछ और काम नहीं है तो किसी महान् पुरुष के जीवन-चरित्र अथवा कोई अन्य उपयोगी पुस्तक ही पढ़ना आरम्भ कर दो। तुम्हारे कमरे में जो पुरुष या स्त्रियों के चित्र टंगे हों, उनको ध्यान-पूर्वक देखो। प्राकृतिक दृश्यों की महत्ता पर विचार करो; सुबह उठते ही प्रातःकाल

के सुन्दर रंग-बिरंगे बादलों पर दृष्टि-पात करो; हरे भरे सुन्दर वृक्षों के विषय में सोचो; उन्हीं के वर्णनों को पढ़ो; मानव मस्तिष्क को महान् आश्चर्य में डाल देने वाले भवनों के चित्रों को हृदयांकित करो। यदि पढ़ते-पढ़ते तुम थक गई हो तो आंख बन्द कर पलंग पर थोड़ी देर के लिए लेट जाओ और अपनी कल्पना के द्वारा बालक के सुन्दर रूप के विषय में विचार करो; उन दिनों के आनन्द को चित्रित करो, जब तुम्हारी सन्तान संसार के एक महान् और उच्च स्थानको विभूषित करेगी और मानव समाज उसकी विद्वत्ता के सन्मुख सिर झुका देगा। वह देखो, मेरा बालक प्लेट-फार्म पर खड़ा हुआ भाषण दे रहा है; सैकड़ों व्यक्ति कान लगा कर सुन रहे हैं। अहा! कैसा सुन्दर चेहरा है; बालक कितना प्रभावशाली है। इस ओर देखो, मेरी सन्तान एक कुर्सी पर बैठी हुई पुस्तक लिख रही है। उस पुस्तक का एक-एक शब्द संसार में गिरे हुओं को उठाने की शक्ति रखता है। उधर

प्रभाव होता है। यह कोरी कल्पना नहीं, विज्ञानसम्मत एवम् अनुभव-सिद्ध बातें हैं।

डॉक्टर मेरी स्टोप्स इसी सम्बन्धमें अपनी पुस्तक में लिखती हैं:—" माता को हर्षित हृदय एक छोटे हँसमुख ईश्वर दूत की कल्पना करना चाहिए; उसका स्त्री या पुरुष-भेद छिपा रहना चाहिए; काल्पनिक सन्तान छोटी उम्र की और स्वर्गीय सरलता और महान् सम्भावना पूर्ण हो। विश्राम के घंटों में इस तरह को सहस्रों सुन्दर-सुन्दर कल्पना और स्वप्नों में वह अपना प्रत्येक दिन व्यतीत कर अपने विचारों को स्वर्गीक करती रहे। उसे विश्वास रखना चाहिए कि ये सब बातें बेकार न जावेंगी। यदि वह इसके साथ-साथ बालक के शारीरिक स्वास्थ्य को अपने शारीरिक मार्गों द्वारा सुरक्षित कर रही है तो उसके शरीर सम्बन्धी सौन्दर्य से अधिक उत्तम स्वप्न सच निकलेंगे।"

इस प्रकार यदि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा है; तुमने गर्भवती-अवस्था में अपने भोजन, व्यायाम और सुखमयी निद्रा आदि पर ध्यान दिया है; यदि तुम्हारी मानसिक अवस्था पवित्र, शान्त और आनन्द-पूर्ण रही है; तो तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुई सन्तान अपनी विद्वत्ता, अपने विश्व-प्रेम और अपने महान् कृत्यों से संसार को चकित कर देगी। सब लोग उसके मुंह की ओर देखेंगे। प्रसन्नता और आदर से उसके सामने अपना सिर झुकायेंगे। अतएव *बहनो, इस विषय पर विचार करो और नर-श्रेष्ठों और जगत्* पूज्य पुत्रियों को जन्म दे, फिर एक बार विश्व में भारत की कीर्ति पताका उड़ाओ।

जननी-दायित्व।

(३)

"स्त्री को जो वेदना होती है और सहनी पड़ती है वह कल्पना के बाहिर है।"

—हरबर्ट स्पेन्सर।

"महान् माता संसार के बड़े से बड़े तपस्वी से किसी हालत में कम नहीं। यह तप के कष्ट को सह, शारीरिक वेदना को अंगीकार कर, पवित्र आत्मा से, वर-स्वरूप सुन्दर बलवान सन्तानें प्राप्त करती हैं।"

—शुद्ध कुमार।

बहनो, पूर्व अध्याय में कथित विधि से जीवन व्यतीत करने से गर्भवती को प्रसव (सन्तानोत्पत्ति) समय अधिक कष्ट नहीं होता। स्वस्थ्य मातायें तो इस समय के १–२ घंटे पहिले तक घर-गृहस्थी के काम करती रहती हैं। इनको इस अवस्था में कम-से-कम यह तो अवश्य ही प्रतीत होता है कि यदि तुम भी अपने शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रक्खोगी तो बिना कष्ट के संसार में एक नवीन जीव को लाने का सौभाग्य प्राप्त करोगी।

हमारे देश में सौर अथवा प्रसूतिगृह की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। प्रकाश-हीन छोटी सी कोठरी इस काम के लिए चुन ली जाती है, एक साधारण सी खटिया उसके एक कोने में बिछा दी जाती है और मैले कुचैले कपड़े उस पर बिछा दिये जाते हैं। प्रसव के समय वहीं आग की अंगीठी

भी जला कर रख दी जाती है; किन्तु कोठड़ी के फर्श में सील हो तो उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। प्रसवकाल की हमारी इस असावधानी एवं लापरवाही का ही परिणाम है कि भारतवर्ष में सैकड़ों बालक जन्मते ही मृत्यु के शिकार बन जाते हैं, और स्वयं मातायें चिर-रोगिणी हो जाती हैं।

अतः समझदार एवं शिक्षित माता-पिता को चाहिए कि वे इस विषय में पूर्ण सावधानी रक्खें। सौर-गृह की कोठरी कम से कम ३-४ गज चौड़ी और ५-६ गज लम्बी होनी चाहिए। उसमें वायु और प्रकाश खूब आता हो। दीवालें चूने से पुती हों, कहीं भी कूड़ा कचरा न पड़ा हो और न फर्श की ही हालत खराब हो। पलंग खूब कसा हुआ हो और उस पर एक गुदगुदा बिछौना बिछा रहे। बिछौने पर मोमजामा और उसके ऊपर सफेद चद्दर बिछा देना चाहिए। पलंग इस अंदाज से बिछाया जाय कि हवा का झोंका एकदम सीधा पलंग के पास न पहुँचे। इसके अतिरिक्त पेट बांधने के लिए वस्त्र, सफेद धुले हुए कुछ कपड़े, गर्म और कुनकुना पानी, तेल, अच्छा साबुन (घटिया साबुन बच्चे को हानि पहुँचाता है) तेज चाकू या कैंची, रेशम और सूत की लच्छी आदि आवश्यक चीजें पहिलेही से तैयार रक्खें। यदि आग रखने की जरूरत हो, तो देख लेना चाहिए कि उसमें से धुंआ तो नहीं निकलता। बच्चा जनने के समय प्रसूता के पास दाई और एक दो स्त्रियों के अतिरिक्त अधिक भीड़ लगाना उचित नहीं है।

खेद है कि हम लोग पुत्रोत्पत्ति के बाद बाजे बजवाने और मिठाई आदि बांटने में तो कभी-कभी शक्ति से भी अधिक रुपया

खर्च कर डालते हैं, परन्तु इन वास्तविक एवं आवश्यक बातों में खर्च करते हुए डरते हैं। यदि दुर्भाग्यवश तुम्हारे पास खर्च करने को काफ़ी पैसा नहीं है, तो जब तक इसके योग्य पैसा संग्रह न करलो, तब तक सन्तानोत्पत्ति का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। अन्यथा सौर-गृह में उक्त विशेषतायें होनी ही चाहियें। साथ ही अनाड़ी दाइयों के हाथों कभी-कभी माता और बालक दोनों का जीवन खतरे में पड़ जाता है। अतएव जहां तक सम्भव हो सके परीक्षा पास दाई या लेडी डाक्टर आदि को बुला लेना चाहिए। इस समय कुछ खर्च कर देने से, आगे चल कर माता और बालक की बीमारी में सैकड़ों रुपये खर्च न करने पड़ेंगे।

"बालक कब होगा" इसका हिसाब लगाना भी कई बहनों को नहीं आता। इसका सबसे सीधा हिसाब यह है कि पिछले ऋतु-धर्म के अन्तिम-दिवस से ९ मास १ सप्ताह बाद बालक का जन्म होना चाहिए। परन्तु कई कारणों से कभी इससे जल्दी और कभी देर से पैदा होता है। जो स्त्रियां गर्भवती हो जाने पर भी एक-दो मास तक ऋतुमती होती रहती हैं, उनके विषय में हिसाब लगाने में अक्सर भूल हो जाया करती है, पर उन्हें याद रखना

लगती है। इस समय प्रायः अजीर्ण सद आने की भी सम्भावना रहती है। बार-बार पेशाब आने लगता है और अन्तिम सप्ताह में एक सफेद तरल पदार्थ निकलना शुरू हो जाता है। इसके बाद कभी-कभी २४ घण्टे के अन्दर बालक पैदा हो जाता है 'जन्म-काल' का अन्य चिन्ह "वेदना" का होना है। 'गर्भ-कोष' के सुकड़ने से 'वेदना' होती है। इसके सुकड़ने से बालक के बाहिर निकलने में सहायता मिलती है। परन्तु याद रखना चाहिए कि यह 'वेदना' दो प्रकार की रहा करती है; एक सची और दूसरी झूठी झूठी 'वेदना' लगभग एक महीने पहिले से आरम्भ हो जाती है। उसका क्षेत्र पेट ही रहा करता है; यह पीठ तक नहीं पहुँच सकती। यदि तुम 'गर्भ-कोष' पर हाथ रक्खोगी तो 'सची-वेदना' के समय वह तना हुआ और कड़ा मालूम होगा, परन्तु 'झूठी वेदना' के समय वह नरम ही बना रहता है। 'सच्ची वेदना' पेट में शुरू होती है और फिर पीठ की ओर बढ़ जाती है। पहिले यह कुछ देर तक होती है और कुछ समय के लिए बन्द हो जाती है। यह लगभग एक या आधे मिनट तक रहती है और प्रति चौथाई घंटे के बाद हुआ करती है। फिर धीरे-धीरे यह अन्तर घटता जाता है, वेदना तीव्रता धारण करती जाती है और अधिक समय तक रहती है। जब "जनन-काल" लगभग आ जाता है, तब असह्य 'वेदना' होती है; प्रत्येक 'वेदना' के बीच का समय पांच मिनट के करीब रहा करता है और जब तक बालक गर्भ-कोष से बाहर नहीं निकल पड़ता, बराबर वेदना होती रहती है।

"जनन-काल" आने से पहिले स्त्री को केवल एक ढीली धोती ही पहिनना चाहिए और हलका जुलाब या एनीमा का

उपयोग करें मले निकाल देना चाहिए। इससे "जनन" शीघ्र होता है। "जनन-काल" तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। पहिली अवस्था लगभग १८ से २० घंटे तक रहा करती है। इसमें गर्भ-कोष' का गला घटता बढ़ता रहता है और अन्त में गर्भ-कोष फट पड़ता है और कुछ पानी बाहिर निकलता है। दूसरी अवस्था में बालक बाहिर निकल पड़ता है; यह एक से तीन मिनट तक रहा करती है। इसके बाद कुछ समय तक (५ से १५ मिनट) आराम रहता है, फिर "वेदना" शुरू हो जाती है, परन्तु वह तीव्र नहीं रहती, यही तीसरी अवस्था है।

पहिली अवस्था में गर्भिणी को कमरे में धीरे-धीरे टहलते रहना चाहिए। यदि वह चाहे तो कुछ दूध पी सकती है। इसी समय दाई या की डॉक्टर बुलाई जानी चाहिए। दूसरी अवस्था के शुरू होते ही बिस्तर पर लेट जाना चाहिए।

आजकल "क्लोरोफार्म" और "स्कोपोलामाइन" का उपयोग होने लगा है। इससे 'वेदना' आधी घट जाती है; और 'जनन' शीघ्र हो जाता है। किन्तु होशियार डॉक्टर ही इसका उपयोग कर सकते हैं। 'जनन' के बाद ५-६ दिन तक बराबर खून निकला करता है, अतएव उसके सोखने के लिए कुछ साफ कपड़े रखने चाहियें।

प्रसूता को पूर्वावस्था को प्राप्त करने के लिए लगभग ६ सप्ताह लगा करते हैं। प्रसव के बाद एक दो दिन तक माता को भूख नहीं लगती, किन्तु प्यास बार-बार लगती है; उस समय दूध पिलाना चाहिए।

'जनने' के बाद स्त्री को आराम करने देना चाहिए। उसे कब उठकर बैठना चाहिए, इस प्रश्न पर भिन्न-भिन्न मत हैं। पुरानी प्रथा के अनुसार डॉक्टर लोग स्त्री को दस दिन तक लेटे रहने की सलाह देते हैं और कहीं-कहीं तो यह समय तीन महीने का रक्खा जाता था। नई प्रथा के अनुसार स्त्री दूसरे-दिन बिछौने पर उठकर बैठती है और तीसरे दिन आध घंटे के लिए बिछौना त्यागने की सलाह देते हैं। इस प्रकार बिछौना त्यागने का समय एक घंटा प्रतिदिन के क्रम से बढ़ने लगता है।

पहिले विचार के लोगों का कहना है कि ऐसा करने से स्त्री शीघ्र ही स्वस्थ्य हो जाती है, गर्भ-कोष भी अपनी साधारण अवस्था पर लौट आता है, रक्त के संचालन में मदद मिलती है, और अजीर्ण होने का डर कम रहता है।

इस विषय पर मेरी स्टोप्स लिखती हैं कि:—"मैं तो यहां तक कहती हूँ कि स्त्री न केवल एक मास तक ही बिछौने पर रहे, बल्कि और दो सप्ताह तक अपना पैर भी पलंग से उतारकर जमीन पर न रक्खे। वह प्रसव के बाद छः सप्ताह तक बाहर खुली हवा में पलंग पर पड़ी ही रहे। क्योंकि प्रसव-काल में माता के शरीर के समस्त भाग हिल जाते हैं और उन्हें धक्का लगता है। इस धक्के के प्रतिकार के लिए उसकी सारी शारीरिक कार्य प्रणाली को बिलकुल आराम की जरूरत है। इसके अतिरिक्त गर्भ-कोष उसके पेट के मध्य में रहता है। गर्भ-काल के अन्तिम दिनों में वह बालक के कारण बहुत बढ़ गया था। बालक-जन्म के बाद वह अपनी असली दशा में धीरे-धीरे लौटता है। इसकी पुट्ठेदार दीवालें बड़े खिंचाव के साथ

हो जाती है। आवश्यकता पड़ने पर स्वयं गीले बिस्तर पर सो, बालक को सूखे में लिटाती हैं; स्वयं वस्त्र न ओढ़ बच्चे को सर्दी से बचाने के लिए खूब ढक कर छाती से लगा लेती है। जरासी बीमारी हो जाने पर अनेकों अनुष्ठान करती है, देवी देवताओं को मनाती और इस प्रकार अपनी शक्ति, धन और बुद्धि सबसे जो कुछ हो सकता है, उसके करने में वह कोई बात शेष नहीं छोड़ती।

इतना सब होने पर भी हमारे देश में लगभग ५० प्रतिशत से अधिक बालक जन्म से एक वर्ष के अन्दर ही मृत्यु-मुख में जा पड़ते हैं। बेचारी माताएं इतना कष्ट सहने पर भी खाली गोद हो जाती हैं। इस दैवी आपत्ति से बचने का उन्हें कोई सफल उपाय नहीं मिल पाता। कुछ वर्षों पहिले अन्य देशों में भी बाल-मृत्यु-संख्या इसी प्रकार बहुतायत पर थी, परन्तु पीछे वहां के विद्वान, चिकित्सकों ने इस विषय पर गम्भीर अध्ययन किया और अन्त में इसके कारणों को ढूंढ उसके प्रतिबन्ध के उपाय खोज निकाले। फलतः आज इंग्लैण्ड में प्रति सहस्र केवल ७६ के लगभग बालकों की ही मृत्यु होती है। इसी प्रकार यूरोप के अन्य देशों में भी यह संख्या बहुत घट गई है। किन्तु हमारे यहां वह घटने की बजाय और बढ़ती ही जा रही है। इसका एक प्रधान कारण जहां हमारा अज्ञान है, वहां दूसरा कारण हमारी पराधीन अवस्था है। हम पर लगभग पौने दो सौ वर्ष से जो विदेशी शासन हो रहा है, वह अत्यन्त अस्वाभाविक अतएव हमारे शारीरिक, आर्थिक एवम् बौद्धिक आदि सब प्रकार के विकास के लिए अत्यन्त हानिकारक है। देश की आय का

अधिकांश भाग सेना आदि अनावश्यक बातों में फूँक दिया जाता है, और विद्या-प्रचार एवम् कला-कौशल आदि की शिक्षा द्वारा हमारे अज्ञान एवम् आर्थिक दुरवस्था को दूर करने की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता। उसीका नतीजा है कि सौर-गृह के गंदलेपन ने और अनाड़ी दाइयों के अज्ञान ने कितने ही बालकों और माताओं को अकाल ही काल-कवलित बना डाला। इसी अज्ञान के ही कारण, अन्ध विश्वासों से जकड़ी हुई माता, बालक के बीमार हो जाने पर वैद्य और डाक्टरों से दवा न करा कर, भूत-प्रेत, देवी-देवताओं की शरण लेती फिरती है। कहीं सिर से पानी उतारती है, कहीं प्रसाद चढ़ाती है; कहीं मंत्र फुंकवाती है और कहीं जादू-टोना कराती है। सारांश यह सब कुछ कराती है, परन्तु जो दवा कराना चाहिए, उससे दूर रहती है। इसका कारण यह नहीं है कि वह दवा पर पैसा खर्च नहीं करना चाहती, वरन् उसका यह भय है कि दवा कराने से कहीं भूत-प्रेत, देवी-देवता अप्रसन्न न हो जायँ! यदि ईश्वर कृपा से बालक के रक्त में बीमारी रोकने की शक्ति हुई या बीमारी साधारण हुई, तो बालक कुछ काल में प्राकृतिक चिकित्सा से स्वयं ही अच्छा हो जाता है। उस दशा में अज्ञान स्त्रियों का इन भूत-प्रेत एवम् देवी-देवताओं में विश्वास और भी बढ़ जाता है। और यदि बीमारी जोर पकड़ बालक को अपना भक्ष्य बना लेती है, तो उसे अपने भाग्य का दोष समझ रो-पीट कर चुप रह जाती हैं।

गरीबी के कारण अनेकों गृहस्थ अपने बच्चों को पर्याप्त वस्त्र नहीं पहना सकते। कई बालक तो सात-आठ वर्ष की अवस्था तक दिगम्बर रूप धारण किये रहते हैं। कई मातायें अपने बच्चों

को वस्त्र होते हुए भी इस लिए नहीं पहनाती कि कहीं किसी की नजर न लग जाय और बालक बीमार न हो जाय। माता की इस असावधानी का परिणाम अच्छा नहीं होता। बच्चों को शीत हो जाने का भय रहता है और बीमार हो वे शीघ्र धराशायी हो जाते हैं। इसी प्रकार कई छूत की बीमारियों के समय अबोध माता अपनी सन्तान को बीमार बालक के पास ले जाने में संकोच नहीं करती, क्योंकि वह समझती है कि यदि वह संकोच करेगी तो देवी जी अप्रसन्न हो जायँगी और उसके बालक को कष्ट देंगी। इस असावधानी के कारण अनेकों बच्चों में शीतला आदि की बीमारी फैल जाती है।

इसी प्रकार के अन्य अनेकों कारण हैं, जिनके कारण छोटे छोटे बच्चे माता-पिता की अज्ञानता और अंध-विश्वास के कारण मृत्यु के गाल में जा पड़ते हैं। अतएव बहनो, तुम्हें इस प्रकार के अन्ध-विश्वास को त्याग, बालक के बीमार होते ही कुशल वैद्य से उसकी उपयुक्त दवा करा, इतने कष्ट और परिश्रम से उत्पन्न की हुई सन्तान की रक्षा का उचित प्रयत्न करना चाहिए।

(ख)

बालक का सब से उत्तम भोजन माता का दूध ही है। हमारे देश में सभी मातायें अपने बालकों का पालन पश्चिमीय देशों की तरह धाय एवं गाय अथवा जमे हुए दूध द्वारा नहीं वरन स्वयं स्तन-पान कराकर करती हैं। माता के दूध की बराबरी

न तो गाय का दूध कर सकता है न कोई जमा हुआ कृत्रिम दूध।
अतः हमें अपनी यह पुरानी प्रथा छोड़ने की आवश्यकता नहीं।
हाँ, यदि माता क्षय आदि किसी संक्रामक एवम् भयङ्कर
रोग से गृसित हो या हो जाय, तो उस हालत में उसे स्तन-पान
कराना बन्द कर देना चाहिए। नहीं तो इससे बालक में भी ये
रोग आजायँगे। साधारण अवस्था में माता के दूध की पुष्टता
पर बालक का स्वास्थ्य निर्भर रहता है; अतएव माता को चाहिए
कि वह घी, दूध, फल आदि पुष्टिकर भोजन का शक्ति, अनुसार
पर्याप्त सेवन करे। तरल पदार्थ से दूध अधिक परिणाम में पैदा
होता है। अतः उनका उपयोग अधिक आवश्यक है। इसके
लिए गाय के दूध का पर्याप्त सेवन अच्छा होगा। परन्तु इस
बात का पूरा ध्यान रक्खे कि उसे कहीं अजीर्ण न हो जाय।
यदि सावधानी रखने पर भी कभी ऐसा होजाय तो अंडी के
तेल का हलका सा जुलाब लेले, अन्य तीव्र दवाइयों का उपयोग
न करे। क्योंकि स्तन-पान-काल में उनका उपयोग हानि-कारक
सिद्ध होता है। भोजन अधिक मसाले-दार या मिर्चयुक्त नहीं
होना चाहिए।

दूध पिलाने का समय नियुक्त कर लेना भी आवश्यक है।
बालक का दिन सवेरे ६ बजे से शुरू होना चाहिए और १२
बजे रात्रि को उसका अन्त समझना चाहिए। इस अवसर में
प्रति दो घंटे बाद दूध पिलाना चाहिए और स्तन-पान के बाद
स्तन-मुख "बोरिक एसिड" मिले हुए पानी से धो डालना
चाहिए। इसी पानी से प्रति दिन बालक का मुँह भीतर से धोकर
साफ़ कपड़े से पोंछ देना चाहिए। एक समय में केवल एक स्तन से

५ से १० मिनट तक दूध पिलाने से बच्चे का पेट भर जाता है। दूसरे समय दूसरे स्तन से दूध पिलाना चाहिए। एक महीने के बाद स्तन-पान का समय बढ़ा देना चाहिए। इसी प्रकार दूध पिलाने को बीच के समय में भी क्रमानुसार वृद्धि करते जाना चाहिए। इस प्रकार लगभग ९ मास तक स्तन-पान जारी रक्खा जा सकता है। कोई-कोई डाक्टर एक वर्ष तक की सलाह देते हैं। किन्तु प्रायः ९ मास के बाद माता रजस्वला अर्थात् ऋतुमति होने लगती है, अतः जहाँ तक सम्भव हो, उसके बाद दूध छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। दूध एकदम नहीं धीरे-धीरे छुड़ाना चाहिए। आरम्भ में माता के दूध के बजाय गाय का दूध पिलाना शुरू करना चाहिए। साथ ही माता को तरल पदार्थों के खाने में कमी कर देनी चाहिए जिससे कि दूध कम हो, स्तन अधिक न भरे रहें।

दूध पिलाते समय माता का सर्वथा शान्त और प्रसन्न-चित्त रहना आवश्यक है, क्योंकि उसकी मानसिक अवस्था का दूध पर असर पड़ता है और यह बालक के स्वास्थ्य को बनाता-बिगाड़ता है। कहीं-कहीं तो क्रोध-युक्त माता के दूध से बच्चे के प्राण तक चले जाने के उदाहरण देखे गये हैं। अतएव इस सम्बन्ध में पूरी सावधानी रक्खी जानी चाहिए।

यदि किसी कारण से माता के स्तन में दूध न हो, तो उस दशा में ऊपरी दूध देने की अपेक्षा किसी धाय का प्रबन्ध करना चाहिए। किन्तु धायको उसे नौकर रखते समय पहिले उसके (धाय के) स्वास्थ्य तथा दूध की परीक्षा अवश्य करा लेना चाहिए। यदि माता-पिता किसी धाय को रखने में समर्थ न हों, तो उस

दशा में गाय का दूध पिलाना अच्छा होगा। आरम्भ में दो चम्मच दूध, और ५ चम्मच पानी में थोड़ी शकर मिलाकर पिलाने का दूध तैयार कर लेना चाहिए। हमारे यहां दूध चाहे जितनी देर का रक्खा हो, स्त्रियां प्रायः उसे शुद्ध समझा करती हैं; परन्तु अनुभवी चिकित्सकों का कहना है कि बड़ी सावधानी से रक्खे हुए एक चम्मच दूध में भी ३५,००००००० कीटाणु रहते हैं। अतएव बालक को कच्चा दूध न देकर, उसे लगभग २० मिनट तक उबाल लेना चाहिए और फिर उसे दूध पिलाने की शीशी में बन्द कर रख देना चाहिए। शीशी का उपयोग करते समय दो बातें जानने योग्य हैं। पहली तो यह कि शीशी ऐसी लेनी चाहिए, जो भीतर से रोज बड़ी अच्छी तरह से साफ की जा सके। दूसरी यह कि शीशी द्वारा दूध पिलाते समय शीशी और दूध में काफी गरमी रहनी चाहिए। यदि शीशी या दूध ठंडा होगा, तो बालक को अजीर्ण आदि हो जाने का डर रहेगा। यदि माता अथवा गाय के दूध से बालक की वृद्धि न होती दीखे (वृद्धि का मुख्य-चिह्न बालक का उत्तरोत्तर वजन बढ़ना है) तो समझना चाहिए कि दूध में बालक को पुष्टि के पदार्थों की कमी है। ऐसी हालत में डॉक्टर को बतला, माता के भोजन का निश्चय कराना चाहिए। यदि वह उपयुक्त न समझा जाय तो बालक को "ग्लैक्सो" (Glaxo) का सेवन कराना चाहिए। दवाइयों की किसी भी बड़ी दूकान पर वह मिल सकता है। वह दूध द्वारा तैयार की हुई वस्तु है और बालकोपयोगी-तत्व उसमें पर्याप्त परिमाण से मिले रहते हैं। एक वर्ष के बाद बालक को अन्न शुरू करा देना चाहिए। अन्न खिलाना शुरू करते समय

५ से १० मिनट तक दूध पिलाने से बच्चे का पेट भर जाता है। दूसरे समय दूसरे स्तन से दूध पिलाना चाहिए। एक महीने के बाद स्तन-पान का समय बढ़ा देना चाहिए। इसी प्रकार दूध पिलाने की बीच के समय में भी क्रमानुसार वृद्धि करते जाना चाहिए। इस प्रकार लगभग ९ मास तक स्तन-पान जारी रक्खा जा सकता है। कोई-कोई डाक्टर एक वर्ष तक की सलाह देते हैं। किन्तु प्रायः ९ मास के बाद माता रजस्वला अर्थात् ऋतुमति होने लगती है, अतः जहां तक सम्भव हो, उसके बाद दूध छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। दूध एकदम नहीं धीरे-धीरे छुड़ाना चाहिए। आरम्भ में माता के दूध के बजाय गाय का दूध पिलाना शुरू करना चाहिए। साथ ही माता को तरल पदार्थों के खाने में कमी कर देनी चाहिए जिससे कि दूध कम हो, स्तन अधिक न भरे रहें।

दूध पिलाते समय माता का सर्वथा शान्त और प्रसन्न-चित्त रहना आवश्यक है, क्योंकि उसकी मानसिक अवस्था का दूध पर असर पड़ता है और वह बालक के स्वास्थ्य को बनाता-बिगाड़ता है। कहीं-कहीं तो क्रोध-युक्त माता के दूध से बच्चे के प्राण तक चले जाने के उदाहरण देखे गये हैं। अतएव इस सम्बन्ध में पूरी सावधानी रक्खी जानी चाहिए।

यदि किसी कारण से माता के स्तन में दूध न हो, तो उस दशा में ऊपरी दूध देने की अपेक्षा किसी धाय का प्रबन्ध करना चाहिए। किन्तु बालक को उसे सौंपते समय पहिले उसके (धाय के) स्वास्थ्य तथा दूध की परीक्षा अवश्य करा लेना चाहिए। यदि माता-पिता किसी धाय को रखने में समर्थ न हों, तो उस

दशा में गाय का दूध पिलाना अच्छा होगा। आरम्भ में दो चम्मच दूध, और ५ चम्मच पानी में थोड़ी शक्कर मिलाकर पिलाने का दूध तैयार कर लेना चाहिए। हमारे यहां दूध चाहे जितनी देर का रक्खा हो, स्त्रियां प्रायः उसे शुद्ध समझा करती हैं; परन्तु अनुभवी चिकित्सकों का कहना है कि बड़ी सावधानी से रक्खे हुए एक चम्मच दूध में भी ३५,००००००० कीटाणु रहते हैं। अतएव बालक को कच्चा दूध न देकर, उसे लगभग २० मिनट तक उबाल लेना चाहिए और फिर उसे दूध पिलाने की शीशी में बन्द कर रख देना चाहिए। शीशी का उपयोग करते समय दो बातें जानने योग्य हैं। पहली तो यह कि शीशी ऐसी लेनी चाहिए, जो भीतर से रोज बड़ी अच्छी तरह से साफ़ की जा सके। दूसरी यह कि शीशी द्वारा दूध पिलाते समय शीशी और दूध में काफ़ी गरमी रहनी चाहिए। यदि शीशी या दूध ठंडा होगा, तो बालक को अजीर्ण आदि हो जाने का डर रहेगा। यदि माता अथवा गाय के दूध से बालक की वृद्धि न होती दीखे (वृद्धि का मुख्य-चिह्न बालक का उत्तरोत्तर वज़न बढ़ना है) तो समझना चाहिए कि दूध में बालक को पुष्टि के पदार्थों की कमी है। ऐसी हालत में डॉक्टर को बतला, माता के भोजन का निश्चय कराना चाहिए। यदि वह उपयुक्त न समझा जाय तो बालक को "ग्लैक्सो" (Glaxo) का सेवन कराना चाहिए। दवाइयों की किसी भी बड़ी दूकान पर वह मिल सकता है। वह दूध द्वारा तैयार की हुई वस्तु है और बालकोपयोगी-तत्व उसमें पर्याप्त परिमाण से मिले रहते हैं। एक वर्ष के बाद बालक को अन्न शुरू करा देना चाहिए। अन्न खिलाना शुरू करते समय

सबसे पहले बिलकुल हलकी और शीघ्र पचने वाली वस्तुएं खाने को देना चाहिए। साथ ही दूध भी देते जाना चाहिए। दूध-भात दूध-रोटी, साबूदाना आदि प्रारम्भिक अवस्था में खिलाये जा सकते हैं।

हमारे यहां देखा जाता है कि मातायें अपनी सन्तान को प्रायः अपने पास ही, एक ही बिछौने पर, सुलाया करती हैं। यह प्रथा बड़ी ही हानि कारक है। कभी-कभी माता की असावधानी से बालक का मुँह कपड़े से ढंक जाता है और बालक सांस न ले सकने के कारण मृत्यु का शिकार बन जाता है। इसके अतिरिक्त माता के पास पड़े-पड़े जब वह रोता है, तब माता उसे चुप करने के लिए उसके मुँह में स्तन दे दिया करती है। इससे बुरी आदत पड़ जाती है और बालक के स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा असर पड़ता है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, प्रसव के बाद माता को पूर्ण विश्राम की जरूरत रहती है, किन्तु बालक के साथ में रहने से उसमें बड़ी बाधा पड़ती है, इस लिए एक अलग छोटे से पलंग पर बालक के सोने का प्रबन्ध करना चाहिए। पलंग के चारों ओर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे बालक असावधानी से जमीन पर गिर न पड़े। उस पलंग में मच्छरदानी रहे तो अच्छा है; क्योंकि इससे हवा का झोंका एक दम बालक तक न पहुँचेगा, साथ ही मक्खी मच्छरों आदि से भी उसकी रक्षा होगी। इसी तरह कम-से-कम चार ढीले कुरते रखने चाहिएं, ताकि प्रति-दिन एक बदला जा सके। स्वच्छता की दृष्टि से बालक के शरीर में तैल की मालिश कर उसे दिन में दो बार स्नान कराना चाहिए, यदि दो

बार नहीं तो कम-से-कम एक बार स्नान कराना तो अनिवार्य नियम हो। स्नान के बाद नरम तौलिये से शरीर पोंछ देना चाहिए। ऐसा करने से शरीर का रूखापन दूर होजाता है और स्वास्थ्य सुधरता है।

अच्छा दूध मिलने पर बालक की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। आरम्भ में कुछ दिनों तक तो वजन घटता है; परन्तु फिर क्रमानुसार बढ़ता चला जाता है। छोटी अवस्था में ही माता अर्थात् चेचक का टीका लगवा देना चाहिए। इससे बालक को भविष्य में सताने वाली इस बीमारी से उसकी रक्षा हो जाती है। कुछ महीनों बाद अर्थात् ६ या ७ मास की उम्र में बालक कुछ-कुछ सरकने लगता है; घुटनों और हाथों के बल आगे खिसकने का प्रयत्न करता है। ऐसी अवस्था के आते ही उसके खेलने के कमरे की सब हानिकारक चीजें बालक की पहुँच से दूर रख देना चाहिए। इसके बाद बालक किसी चीज को पकड़कर खड़ा होना शुरू करता है और एक वर्ष की अवस्था में दिवाल पकड़ कर चलने लगता है। प्रथम वर्ष के समाप्त होते-होते दांत निकलने लगते हैं। दांत निकलते समय मसूड़े फूल जाने के सिवा बालक को कोई अधिक कष्ट नहीं होना चाहिए। इस समय उसकी भूख मारी जाती है, अतः उसके दूध न पीने पर जबर्दस्ती दूध पिला, उसे अजीर्ण-ग्रसित न कर देना चाहिए। अजीर्ण हो जाने से दांत निकलने में बड़ा कष्ट होता है और रंग-बिरंगे दस्त होने लगते हैं।

बच्चों के पहिरने के सब वस्त्र खूब साफ और ढीले होने चाहिएं। सोते समय बालक प्रायः मुंह के द्वारा सांस लेने

लगते हैं। इस आदत में प्रारम्भ ही से सुधार करना चाहिए। सोते समय उसका मुँह बन्द कर देने से वह नाक से सांस लेने लगेगा।

कोई-कोई यूरोपीय डॉक्टर बालकों को व्यायाम कराने की विधियें भी काम में लाते हैं; परन्तु इनसे लाभ होने की अपेक्षा हानि ही अधिक होते देखी गई है। बालक स्वाभाविक रीति से इधर-उधर हाथ-पैर फेंककर और कुछ बड़ा होने पर कूद-फांद कर अपने शरीर योग्य व्यायाम करही लेता है। ऐसी दशा में उसे अधिक थका देने वाली व्यायाम करानी उचित नहीं। हां, केवल एक बात याद रखना चाहिए कि बालक के खेलने का स्थान प्रकाश और शुद्ध हवा से पूर्ण हो। उसे वहां स्वतंत्रता से विचरण करने देना चाहिए। इससे अधिक व्यायाम की कोई आवश्यकता नहीं दीखती।

बीमारियों से बालक की रक्षा करना प्रत्येक माता का कर्त्तव्य है। जरासी बीमारी होने पर किसी अच्छे योग्य डाक्टर को दिखाना चाहिए। जुकाम, कुकर खांसी, शीतला आदि अनेकों रोग उस पर आक्रमण करने को दाव-घात लगाए रहते हैं। उनका पहिले ही से समुचित प्रतिबन्ध कर देना चाहिए। जहां तक सम्भव हो सके, प्राकृतिक नियमों का उचित रूप से पालन किया जाय, आरम्भ से ही उसके कोमल शरीर को तेज दवाइयों से भरना अच्छा नहीं है।

देवदूतों के बीच

(२)

केवल वही विवाह करे, जो साधनहीन होने पर भी अपने बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा का बोझ उठाने की क्षमता रखता हो।

—म० टालस्टाय

बच्चों को मा की गोद भी मकतब से कम नहीं,
इस मदरसे में हाजिते लोहो-क़लम नहीं॥
गुरुकुलों, स्कूल, कालेज, सारे ही बेकार हैं,
जब तक इस देश की, मूर्खायें अबला नार हैं॥

—एक उर्दू कवि

बहनो, माता-पिता सन्तान को अल्प काल में बहुत सी बातें सिखा सकते हैं। विशेषतः माता गोद में सन्तान को लिए हुए, बड़ी आसानी से उसे संसार की बहुत सी उपयोगी बातों का ज्ञान आसानी से करा सकती है। बालक उसे बहुत सी चाहता है, अतः यदि वह बालक के स्वभाव से परिचित और उसे केवल अपने विनोद की सामग्री न समझ, उसे एक विशेष शक्ति बनाना चाहती है, तो उसे इसी समय से शिक्षित करना आरम्भ कर देना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश की मातायें प्रायः अशिक्षिता होती हैं। वे बालक का स्वभाव जानने की कुछ आवश्यकता नहीं अनुभव करतीं। यही कारण है कि इस अवस्था में हमारे बालकों को कुछ

उपर्युक्त शिक्षा नहीं मिल पाती है। कवि के शब्दों में यद्यपि हम जानते हैं कि :—

> "गुरु सिखवत बहु भांति सो, यदपि बालकन ज्ञान।
> पै माता-शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान॥
> भूल जात बहु बात जो, जोवन सीखत जाय,
> पै भूलत नहिं बालपन, देखो सुनो जो होय॥
> जिमि लै काची मृत्तिका, सब कछु सकत बनाय,
> पै न पकाये पर चलत तामें कछुक उपाय॥
> सो शिशु शिक्षा मात बस, जो करि पुत्रहिं प्यार,
> खान पान खेलन समय, सकत सिखाय विचार।
> लाल पुत्र कहि चूम मुख, विविध हँसाय खिलाय।
> माता सब कछु पुत्र को, सहजहिं सकत सिखाय॥

किन्तु फिर भी हम इन भावी माताओं की शिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं देते। समाज-सुधारक इस सम्बन्ध में प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में शीघ्र-से-शीघ्र अधिक-से-अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

हमारे यहां बालक के बड़े हो जाने पर शिक्षा देने का जो ढंग है, वह कुछ कम दूषित नहीं। कुछ ऐसी धारणा बन गई है कि शिक्षा के लिए शारीरिक दण्ड अनिवार्यता है। इस धारणा ने इतना जोर पकड़ा है कि साधारण समाज में "ताड़न तें दुख होत है, ताड़न तें सुख होय" आदि ऐसी कितनी ही कहावतें प्रचलित हो गई हैं। कुछ समय पहिले तो बालक को मौलवी साहब के मकतब एवम् गुरूजी की पटशाला में भेजते समय, मौलवी

साहब एवम् गुरूजी से यहां तक कह दिया जाता था कि इसका माँस-माँस तुम्हारा है और हड्डियां हमारी हैं ! बालक से कोई भूल हो जाने पर कभी-कभी स्वयम् माता-पिता उसे इसी क्रूरता से मार बैठते हैं। उनकी धारणा रहती है कि यदि बालक आरम्भ में ही डरा दिया जायगा, तो वह फिर वैसी ग़लती न करेगा। वे इसे प्रकृति द्वारा बतलाई हुई विधि मानते हैं; परन्तु वे यह नहीं समझते कि प्रकृति के नियमों को भंग करने से वह दण्ड दिये बिना नहीं रहती। बालक पर इस प्रकार से मार का उसके शारीरिक विकास पर तो नाशक प्रभाव पड़ता ही है; साथ ही मानसिक विकास में भी अत्यन्त बाधा पड़ती है। अतः माता-पिताओं को आगे भूल कर भी इस प्रकार दण्ड न देना चाहिए।

इसके विपरीत कभी-कभी माता-पिता संतान को इतना अधिक प्यार करते हैं कि उसे किसी प्रकार कष्ट देना उन्हें सहन ही नहीं होता। बालक की आदतें चाहे जितने बिगड़ती जाती हों, वह चाहे उन्हें कितना ही कष्ट दे, वे उसे कुछ नहीं कहते। यदि पिता ने किसी समय बालक को ताड़ना करने का विचार किया तो माता झट से उसका पक्ष से कहने लगती है "घेरो न लल्ला को भला है नौकरी करनी नहीं।" फल यह होता है कि इससे बालक बिलकुल बिगड़ जाते हैं। सारांश 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार न तो उसे ऐसा शारीरिक दण्ड ही देना चाहिए, जिसका उसके शारीरिक एवम् मानसिक विकास पर कुछ विरुद्ध असर पड़े, न उसे इतना ढीला ही छोड़ देना चाहिए कि वह अपनी आदतें बिगाड़ बैठे। बालक में भली-बुरी

उपर्युक्त शिक्षा नहीं मिल पाती है। कवि के शब्दों में यद्यपि हम जानते हैं कि :—

"गुरु सिखवत बहु भांति सो, यदपि बालकन ज्ञान।
पै माता-शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान॥
भूल जात बहु बात जो, जोवन सीखत लाय,
पै भूलत नहिं बालपन, देखो सुनो जो होय॥
जिमि लैं काची मृत्तिका, सब कछु सकत बनाय,
पै न पकाये पर चलत तामें कछुक उपाय॥
सो शिशु शिक्षा मात बस, जो करि पुत्रहि प्यार,
खान पान खेलन समय, सकत सिखाय विचार।
लाल पुत्र कहि चूम मुख, विविध हंसाय खिलाय।
माता सब कछु पुत्र को, सहजहिं सकत सिखाय॥

किन्तु फिर भी हम इन भावी माताओं की शिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं देते। समाज-सुधारक इस सम्बन्ध में प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में शीघ्र-से-शीघ्र अधिक-से-अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

हमारे यहां बालक के बड़े हो जाने पर शिक्षा देने का जो ढंग है, वह कुछ कम दूषित नहीं। कुछ ऐसी धारणा बन गई है कि शिक्षा के लिए शारीरिक दण्ड अनिवार्य सा है। इस धारणा ने इतना घोर पकड़ा है कि साधारण समाज में "ताडन ते दुख होत है, बाहन तें सुख होय" आदि ऐसी कितनी ही कहावतें प्रचलित हो गई हैं। कुछ समय पहिले तो बालक को मौलवी साहब के मकतब एवम् गुरुजी की चटशाला में भेजते समय, मौलवी

उनका मत है कि शिक्षा द्वारा यालकों में तं. क्यों (१) इच्छा शक्ति (२) शारीरिक शक्ति और (३) साहस का विकास होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने इन नियमों की रचना की है, जिनके अनुसार—

(१) मातायें अपनी सन्तान के खेल-कूद, अध्ययन आदि में उनकी संगिनी बनती हैं न कि शासिका।

(२) बालकों को खेलने में किसी प्रकार की रोक टोक नहीं है। चाहे खेल में उनके कपड़े फट जायँ या उनको चोट लग जाय, तो भी वे धमकाये नहीं जाते सब विषयों में आत्म-विकास के लिए उन्हें पूरा मौका दिया जाता है। उनके किसी कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। अपने इच्छानुसार काम करने की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता रहती है।

(३) बालकों को देश भक्त होना, सत्य बोलना, आत्म-सम्मान रखना, साहसी बनना, दूसरों के अधिकारों का मान करना, धन का मूल समझना आदि बातों की शिक्षा घर ही से आरम्भ कर दी जाती है।

(४) कष्ट में हताश न होना, एवम् चोट लग जाने पर उसे हँसते हुए सह लेना सिखाया जाता है।

(५) घर के बाहर संसार की बातें जानना, प्रकृति के सौन्दर्य्य का बोध, पशु, पक्षी, पुष्पलता, वृक्ष आदि से परिचय, ऐतिहासिक गाथाओं का पाठ, इतिहास और साहित्य आदि के ज्ञान की ओर पूरा ध्यान दिया जाता है। शरीर को पुष्ट और बलवान् बनाने वाले खेलों का जानना तथा तैरना, घोड़े पर चढ़ना

दोनों प्रकार की प्रवृत्ति रहती है। उनमें से भली-प्रवृत्ति को जागृत कर, उसकी वृद्धि करना माता-पिता का कर्त्तव्य होना चाहिए। इसी कर्त्तव्य को सुरीति से निबाहने का नाम सु-शिक्षा है।

नवीन शिक्षा प्रणाली ने इसी का अनुकरण करना शुरू किया है। यह प्रणाली कठोर दंड द्वारा शिक्षा देने के विपक्ष में है। इसके प्रचारकों का मत है कि बालकों को भय से नहीं, प्रेम से शिक्षा देनी चाहिए, क्योंकि उनके विचार में दण्ड से बालक को न केवल शारीरिक ही कष्ट होता है, बल्कि उसका आचरण भी खराब हो जाता है। वह दिल खोल कर अपनी गलती बतलाना ठीक नहीं समझता और इस तरह से झूठ बोलना सीख लेता है। इसी प्रकार के और भी कई दुर्गुण उसमें आ जाते हैं, इसलिए उन्हें प्रेम-पूर्वक शिक्षा देना चाहिए।

बालकों को शिक्षा देने का एक सबसे अच्छा उपाय है और वह यह कि उन्हें उनकी विचार और कार्य-शक्ति की वृद्धि करने का पूरा अवसर दिया जाय। बालक स्वभाव से ही स्वतंत्र कार्य-प्रेमी रहा करते हैं। वे अपनी कठिनाई को हल करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु माता-पिता स्वयं विकास का अवसर न दे, उनकी मदद कर, उनके उत्साह को घटा देते हैं। ऐसा न होना चाहिए।

बालकों की शिक्षा का तीसरा उपाय माता-पिता का अपना निजी आचरण एवं व्यवहार है। पिछले किसी अध्याय में कहा ही जा चुका है, कि इसका बालकों के जीवन पर बड़ा असर पड़ता है।

अमेरिका की माताओं ने अपने बालकों की शिक्षा के लिए कुछ नियम बनाये हैं, वे बड़े ही उत्तम और अनुकरणीय हैं।

उनका मत है कि शिक्षा द्वारा बालकों में तं. क्यों (१) इच्छा शक्ति (२) शारीरिक शक्ति और (३) साहस का विकास होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने इन नियमों की रचना की है, जिसके अनुसार—

(१) मातायें अपनी सन्तान के खेल-कूद, अध्ययन आदि में उनकी संगिनी बनती हैं न कि शासिका।

(२) बालकों को खेलने में किसी प्रकार की रोक टोक नहीं है। चाहे खेल में उनके कपड़े फट जायँ या उनको चोट लग जाय, तो भी वे धमकाये नहीं जाते सब विषयों में आत्म-विकास के लिए उन्हें पूरा मौका दिया जाता है। उनके किसी कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। अपने इच्छानुसार काम करने की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता रहती है।

(३) बालकों को देश भक्त होना, सत्य बोलना, आत्म-सम्मान रखना, साहसी बनना, दूसरों के अधिकारों का मान करना, धन का मूल समझना आदि बातों की शिक्षा घर ही से आरम्भ कर दी जाती है।

(४) कष्ट में हताश न होना, एवम् चोट लग जाने पर उसे हँसते हुए सह लेना सिखाया जाता है।

(५) घर के बाहर संसार की बातें जानना, प्रकृति के सौन्दर्य्य का बोध, पशु, पक्षी, पुष्पलता, वृक्ष आदि से परिचय, ऐतिहासिक गाथाओं का पाठ, इतिहास और साहित्य आदि के ज्ञान की ओर पूरा ध्यान दिया जाता है। शरीर को पुष्ट और बलवान् बनाने वाले खेलों का जानना तथा तैरना, घोड़े पर चढ़ना

तीर कमान और बन्दूक चलाना, मल्ल-युद्ध और गेंद का खेल आदि का सीखना आवश्यक रहता है।

(७) छुट्टी के समय खूब जी भर कर खेलना, धूम मचाना परन्तु काम के समय काम करना, नियम उल्लंघन के दंड को सहर्ष स्वीकार करना, न्यायपरता और पितृ-मातृ-प्रेम (भक्ति नहीं बल्कि प्रेम) आदि की शिक्षा दी जाती है।

बहनो, यदि तुम भी इन नियमों का ध्यान पूर्वक पालन करोगी तो अपने बालकों को अच्छे शिक्षित बना सकोगी।

परमात्मा के मन्दिर की देख-रेख

"क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारा शरीर परमात्मा का मन्दिर है।"

"जीवन की वास्तविक सफलता स्वास्थ्य के ऊपर निर्भर रहती है।"

—सेल्फ हेल्प।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम्।
तच्च सर्वार्थ संसिद्ध्यै भवेद्यदि निरामयं॥"

अर्था " यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थो का मुख्य साधन है। इसके आरोग्य-युक्त होने पर उक्त सब कार्यों की सिद्धि हो सकती है।"

—भावप्रकाश।

बहनो! शरीर सचमुच परमात्मा का मन्दिर है। इस मन्दिर की उपयुक्त देख-रेख रख, इसे ठीक रखने से संसार के सब कार्य सुलभ हो सकते हैं। कौन नहीं जानता कि हमारी जरा सी असावधानी एवम् आचार-व्यवहार की गड़बड़ी से हमारे शरीर की क्रियाओं में उथल-पुथल हो जाती है? क[illegible]ीं जानता कि हमारा सौन्दर्य, हमारी खुशी बिना स्वस्थ्य शरीर के नष्ट हो जाती हैं? कभी-कभी तो रोगी कुटुम्बियों पर भार-रूप हो जाता है और वह स्वयम् अपने ऐसे जीवन से उकता जाता है। कदाचित् इसी कारण विद्वानों ने स्वास्थ्य-रक्षा की बड़ी ही आवश्यकता बतलाई है और "तन्दुरुस्ती हजार नियामत", "स्वास्थ्य ही द्रव्य है" इत्यादि अनेकों कहावतें प्रचलित हो गई हैं।

शरीर की तुलना प्रायः एक मशीन से की जाती है। एक निर्जीव मशीन की देख-रेख मनुष्य बड़ी ही सावधानी से करता है, परन्तु सजीव और मशीन से कई गुनी उपयोगी-वस्तु अपने शरीर की देख-भाल करने में कभी-कभी वह बड़ी असावधानी कर जाता है। मशीन में तेल के स्थान में पानी कभी नहीं दिया जाता। किसी एक हिस्से को जरा गड़बड़ होते देख शीघ्र ही वह हिस्सा बिगड़ने के पहिले सुधार दिया जाता है। परन्तु शरीर की देख-रेख पर उस समय तक ध्यान नहीं दिया जाता, जब तक कि स्वयं शरीर काम करने से इन्कार न कर दे। उसके जवाब दे बैठने पर ही कुछ चिन्ता सवार होती है। अमेरिका में समर्थ आदमी प्रति-मास डाक्टर द्वारा अपने शरीर की परीक्षा कराया करते हैं, परन्तु हमारे यहां उक्त अवस्था उपस्थित होने तक कभी कोई इस ओर ध्यान तक नहीं देता। यही कारण है कि हमारे जीवन के वर्ष घट रहे हैं? प्राचीन-काल में मनुष्य १२५ वर्ष तक जीते थे, पर आजकल ६० वर्ष ही सबसे बड़ी अवधि समझी जाती है। ऐसा क्यों होने लगा, इस पर विचार करने की कभी हमारी इच्छा ही नहीं होती। यह हमारी बड़ी भूल है। शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली बातों का जानना प्रत्येक बहन का कर्त्तव्य होना चाहिए, क्योंकि उसकी शारीरिक अवस्था पर ही हमारी जाति का भविष्य निर्भर है।

शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ उपयोगी भोजन की आवश्यकता रहती है। यदि कुछ दिनों तक उपयुक्त भोजन न मिले तो शरीर दुर्बल होने लगता है और विविध रोगों का शिकार बन अन्त में मृत्यु मुख में जा पड़ता है। अत-

एव इस सम्बन्ध में तुम्हें पूरी सावधानी रखनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सबसे पहिले तुम्हारा ध्यान इस बात पर रहना चाहिए कि क्या तुम्हारा भोजन तुम्हारे शरीर के लिए उपयुक्त है ? तुम्हारे शरीर के लिए जिन-जिन तत्त्वों की आवश्यकता है क्या वे सब तुम्हारे भोजन से प्राप्त होते हैं ? उदाहरणार्थ दिमाग़ से काम लेने वाले व्यक्ति के भोजन में फासफरस का अंश अधिक होना चाहिए। वह व्यक्ति यदि केवल भात-दाल खाकर ही जीवन व्यतीत करेगा तो कुछ दिन में उसका दिमाग़ काम करना बन्द कर देगा। यदि तुम्हारे शरीर में अधिक चर्बी हो गई है और तुम यौवन-अवस्था में ही वृद्धासी दीखने लगी हो, तो उस दशा में तुम्हारा घी दूध आदि चर्बीवाले पदार्थ अधिक मात्रा में खा रात-दिन लेटे रहना तुम्हारे स्वास्थ्य को और भी जल्दी मिट्टी में मिला देगा। अतएव अपने शरीर की अवस्था के अनुकूल ही भोजन का निर्णय करना चाहिए। मसालों से चट-पटा एवम् स्वादिष्ट बनाये हुए भोजन की लत छोड़ सादा भोजन करने की आदत डालनी चाहिए। ऋतु अनुकूल फलों का भी सेवन करते रहना चाहिए।

दूसरे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्या मेरा पेट भोजन माँग रहा है ? क्या मुझे सची भूख लग आई है ? भूख और रुचि इन दो में भेद है। अच्छे स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थ को देख बिना भूख भी खाने की इच्छा होने लगती है। इस इच्छा की पूर्ति करना शरीर के साथ अन्याय करना है। जब तक भूख न लगे, कभी भूलकर न खाओ। खूब भूख लगने पर ही भोजन करो और उस समय भी पानी की घूंट के साथ कौर निगलने की कोशिश न करो, वरन् प्रत्येक कौर या ग्रास को दाँतों से इतनी

देर तक चबाओ कि वह रस सा बन जाय। इससे एक तो 'स्लीवा' नाम के मुँह के रस के साथ उसका मिश्रण हो जाने से भोजन का स्वाद बढ़ता है, दूसरे इससे पाचन इन्द्रिय को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। हमारे यहां सबको जल्दी-जल्दी खाने की पड़ी रहा करती है। खासकर स्त्रियां तो बड़ी जल्दी करती हैं। इसीसे हमारे दांत भी जल्दी खराब हो जाते हैं और स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। अतः जल्दी खाने की आदत छोड़नी चाहिए।

भूलकर भी कभी खूब पेट भर न खाना चाहिए। हमारे यहां एक बड़ी दूषित-प्रथा प्रचलित है कि जब कभी महमान भोजन करता है तो उसे "और खाओ, और खाओ" कहकर उसे भूख से अधिक खिला दिया जाता है, जिससे महमान प्रायः घर लौट कर बीमार हो जाता है। जिसके पेट में जितनी जगह है, या जिसे जितना रुचिकर मालूम हो, उसे उससे अधिक एक कौर भी अधिक खाने के लिए जोर न देना चाहिए।

मानसिक अवस्था का भोजन करते समय ध्यान देना तीसरी बात है। जब हृदय अशान्त है, क्रोध चढ़ा हुआ है, या शोक से आँसू बह रहे हैं, ऐसे समय में भोजन करने से बड़ी हानि होती है, क्योंकि मानसिक उत्तेजना के कारण भूख तो मारी जाती है, और बिना भूख खाने से हानि स्वाभाविक ही है।

बहनो, सुखमयी निद्रा की चाह सभी करते हैं। दिन भर के बाद थकावट दूर करने का सब से सुलभ और अचूक इलाज निद्रा ही है। किन्तु हमारे यहां "सुखमयी निद्रा" आजकल केवल कहने मात्र के लिए रह गई है। बहुत कम प्राणी होंगे, जिन्हें रात्रि में स्वप्न न आते हों, जो सोते-सोते रोते, हँसते और

चड़चड़ाते न हों। स्वप्न से निद्रा का असली अभिप्राय नष्ट हो जाता है, शरीर की थकावट दूर नहीं होती और सुबह उठकर भी हम अपने को ताजा नहीं पाते।

इस अवस्था को दूर कर निद्रा को अपने वश में करने का उपाय तुम्हारे पास मोजूद है। यदि तुमने दिन में पर्याप्त शारीरिक परिश्रम किया है और सोने के पहिले मन को शान्त और चित्त को एकाग्र कर लिया है, तब तो तुम्हें अवश्य ही सुखमयी, स्वप्न रहित निद्रा आवेगी, सोने के पहिले स्थिर चित्त हो, सब प्रकार की चिन्ता, क्रोध, शोक, दूर कर दो और मुँह बन्द कर, नाक के द्वारा सांस लेते हुए बिस्तर पर लेट जाओ। धीरे-धीरे इस साधन को काम में लाने से तुम स्वप्न-विकार को अपने से दूर कर सकोगी। सोने के पहिले खूब खा लेने से या अधिक पानी पी लेने से भी निद्रा दुखमयी हो जाती है अतः रात्रि का भोजन हल्का होना चाहिए। खुले और स्वच्छ हवादार कमरे का भी निद्रा पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है।

स्वास्थ्य के लिए स्वच्छता की भी बड़ी आवश्यकता है। कहा भी है "जहां मैलापन रहता है, वहीं बीमारी का वास रहता है।" बीमारियों की जड़ मैलापन है। शरीर को बाहिर-भीतर दोनों ओर स्वच्छ रखना चाहिए। जैसा कि पहिले किसी अध्याय में कहा जा चुका है, हमारे शरीर के लाखों छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा रात-दिन विषैला पसीना निकला करता है। यदि नित्य स्नान द्वारा इसे धोया न जाय तो कुछ समय में अनेकों छिद्रों को बन्द कर देता है, जिससे अन्दर से दूषित पदार्थ का निकलना बन्द हो, अन्दर ही अन्दर खराबी बढ़ने लगती है और

इधर बाहर शरीर से दुर्गन्ध भी आने लगती है। साथ ही दिन भर चलते-फिरते एवम् काम करते रहने से शरीर में धूल मिट्टी आदि भी लग जाती है। अतः इन दोनों प्रकार के मैल को दूर करने के लिए स्वच्छ जल से स्नान करना आवश्यक है। खूब रगड़-रगड़ कर मैल को छुटा देना चाहिए। शरीर के गुप्त भाग, बगल, कुहनी, कान के पीछे के भाग आदि के साफ करने की ओर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता। उस ओर ध्यान देना चाहिए। स्नान करने का जल आवश्यकतानुसार ठण्डा या गर्म कैसा ही लिया जा सकता है, परन्तु यह याद रखना चाहिए कि सिर और मुँह को जहां तक हो सके ठण्डे पानी से ही धोया जाय, क्योंकि गरम जल आँखों की ज्योति को हानि पहुँचाता है। नहाने के पश्चात सारे शरीर को एक स्वच्छ कपड़े से रगड़ कर पोंछ डालना चाहिए। ऐसा करने से शरीर का रक्त गर्म हो जाता है और ठण्ड नहीं मालूम होती। बहुत सी स्त्रियां स्नान करते समय अपने सिर के बालों को नहीं धोतीं; यह अनुचित है। उन्हें नित्य प्रति धोना चाहिए। हां धोने के बाद गीले बालों को एक सूखे वस्त्र से तुरन्त पोंछ डालना चाहिए, क्योंकि बालों के अधिक समय तक गीले रहने से ठण्ड हो जाने का भय रहता है।

आठ दिन या पन्द्रह दिन में एक बार उबटन लगाकर नहाने से शरीर की कान्ति बढ़ती है। साबुन से यद्यपि मैल निकल जाता है, परन्तु साथ-साथ शरीर पर रूखापन सा आ जाता है। अतएव उनका उपयोग कम करना चाहिए और यदि करो ही तो बढ़िया साबुन का।

इसी प्रकार शरीर के भीतरी भाग को साफ करने के लिए दो प्रकार के उपाय काम में लाये जाते हैं। भीतरी भाग से हमारा अभिप्राय पेट से है। पहिला उपाय तो जुलाब ले लेना है। एक वेढ़ औंस तक, अंडी का तेल दूध में मिला कर पी लेने साधारण जुलाब हो पेट साफ हो जाता है। दूसरा उपाय इससे श्रेष्ट और पालन करने योग्य है, वह है उवास का। यदि प्रकृति को समय दिया जाय तो वह स्वयं ही पेट को कुछ समय में साफ कर देगी। अतः सप्ताह में एक दिन उपवास कर डालने से और उपवास के दिन केवल पानी पीने से, प्रकृति पेट के पदार्थों को बाहिर निकाल देगी। महीने में लगातार दो चार दिन के उपवास से शरीर स्वस्थ्य रहता है और बल बढ़ता है। कदाचित् इस शरीर शुद्धि के विचार सेही हमारे पूर्वजों ने व्रतों की प्रथा चलाई थी, किन्तु अज्ञान के कारण आजकल उपवास के दिन, दूसरे दिनों की अपेक्षा और भी अधिक खाया जाता है। इस तरह यह उपयोगी नियम लाभकर होने की अपेक्षा एक प्रकार से हानिकर हो रहा है।

शरीर-सुख के लिए इन नियमों का उचित रूप से पालन करना आवश्यकता है, परन्तु जो ऐसा न कर सकती हों, उन्हें चाहिए कि नित्य प्रातःकाल सोकर उठते ही एक गिलास ठण्डा या गर्म पानी पी लिया करें। ऐसा करने से कब्ज की शिकायत दूर हो दस्त होने लगेगा।

पेट साफ करने के लिए आजकल "एनीमा" का उपयोग भी होने लगा है। एक नली के द्वारा गुदा-मार्ग से पेट में पानी

जाती है ! जब एक व्यक्ति अपने हाथ को कड़ा कर ऊपर की ओर उठाता है, उस समय यह आवश्यक है कि उसका ध्यान हाथ के मसेल्स (पुट्ठों) की ओर रहे। बहनो, इसी प्रकार तुम्हें भी चाहिए कि शारीरिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए तुम घर-गृहस्थी के जो काम करो, उन्हें मन लगा कर करो। इसके सिवा सवेरे उठ, नित्यकर्म से निवृत्त हो, किसी खुले दरवाजे या खिड़की के सामने इस प्रकार से खड़ी हो जाओ कि किसी की तुम्हारे ऊपर दृष्टि न पड़े। अपनी चोली या छाती पर के कड़े वस्त्र को उतार डालो, या बिलकुल ढीला कर लो, फिर अपनी कमर को सीधी कर लो, गर्दन तान कर रखो और फिर धीरे-धीरे नाक से साँस लो, साँस खींचती जाओ, छाती को उठाओ और फिर धीरे-धीरे साँस को बाहिर निकाल दो। इस क्रिया को प्रतिदिन २० बार किया करो।

दूसरा उत्तम व्यायाम चक्की का पीसना है। परन्तु जिस प्रकार से साधारण स्त्रियां चक्की पीसा करती हैं वह ढंग उपयोगी नहीं है। चक्की के दोनों ओर पैर फैलाओ, उन्हें बिलकुल सीधा जमीन से मिलते हुए रखो; घुटनों के पास झुकने न दो, तान कर रखो। ऐसा करने से पैरों के कई पुट्ठों पर बड़ा जोर पड़ता है। फिर इस प्रकार से बैठो कि तुम्हारी कमर झुकने न पावे और न मुँह ही चक्की पर झुक जावे। इस प्रकार अपने अंगों को कड़ा कर बैठ, एक हाथ से चक्की का मुठिया पकड़ो और पीसना शुरू कर दो। प्रतिदिन कम-सेकम एक सेर गेहूँ इस प्रकार पीसने से बहुत ही अच्छी कसरत होती है। पीसते समय नाक से सांस लेते रहना चाहिए। चोली या किसी अन्य विधि

से अपने स्तनों को लटकने से रोकना चाहिए। ऐसा न करने से हानि होती है और उस भाग का सौन्दर्य बिगड़ जाता है।

इसके बाद घर झाड़ने-बुहारने की बारी आती है। यह तीसरी कसरत है। बुहारी लगाते समय पैरों को बिलकुल कड़ा या तना हुआ रखते हुए, गर्दन, सिर और पीठ तीनों को एक सीध में रख, गोड़ा झुका, तने हुए एक हाथ में बुहारी ले, दूसरे हाथ को मोड़ कर कमर पर रखो। नांक से साँस लेते हुए धीरे-धीरे झाड़ना शुरू करना चाहिए। झाड़ चुकने के बाद, एक बार बिलकुल सीधी खड़ी हो जाओ, अपने हाथों को ऊपर की ओर उठाओ, साँस लो और पीछे की ओर जहाँ तक बने झुक जाओ। साँस छोड़ दो और सीधी अवस्था में खड़ी हो जाओ। इस तरह ५ या १० बार करना चाहिए।

जहां बहनों को पानी भरने जाना पड़ता है, वहां कुए से पानी खींचने में भी व्यायाम होता है। बर्तन मांजते समय स्त्रियां प्रायः बिलकुल ढीली सी बैठ कर बर्त्तन माँजती है। इससे काम भी जल्दी नहीं होता और व्यायाम भी ठीक तौर से नहीं होता। अतएव बिलकुल तनी हुई स्थिति से इस काम को करना चाहिए।

इनके सिवा दाल-चाँवल कूटना, छाछ बिलौना आदि अनेकों प्रकार के काम, जिनसे काम और व्यायाम एक साथ हो जाते हैं। शरीर में तेल की मालिश करना और भिन्न-भिन्न अंगों को थपकना भी अत्यन्त उपयोगी व्यायाम है। इससे रक्त संचालन तेजी से होने लगता है। इतना ही नहीं, कई अंग सुचिक्कण एवम् सुडौल हो जाते हैं, चिहरे पर की सिकुड़न दूर हो जाती है, चमड़े की कई बीमारियां भाग जाती हैं।

सोने के पहिले या दिन में किसी समय, ज़मीन पर पीठ के बल लेट जाओ, हाथ पैर बिलकुल ढीले कर लो, कोई भी अंग तना हुआ न हो, नाक के बल १० बार साँस लो, फिर उठ कर अपना काम करने लगो। इससे तुम्हारी थकावट बहुत कुछ दूर हो जायगी।

मानसिक अवस्था से शारीरिक स्वास्थ्य का गहरा सम्बन्ध होने के सम्बन्ध में पहिले लिखा जा चुका है, अतः यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि तुम्हें रात-दिन प्रसन्नचित्त एवम् हंसते रहना चाहिए। इससे भोजन शीघ्र हजम होता है और स्वास्थ्य सुधरता है। किसी की बढ़ती देख ईर्षा करने से कुछ लाभ तो होता नहीं, उल्टे शरीर और आत्मा पर उसका बड़ा बुरा असर पड़ता है। इसी प्रकार दूसरों की निन्दा करने से भी हानि के सिवा लाभ कुछ नहीं। अतः इन बातों से सदैव बचती रहो। यदि तुम्हारा मन किसी कष्ट आदि के कारण क्षुब्ध हो रहा है तो शान्ति प्राप्त करने के लिए एक शान्त कमरे में भाग जाओ; बिलकुल सीधी खड़ी हो जाओ; नाक के एक नथुने से सांस ले दूसरे से निकाल दो, कुछ हलका व्यायाम करने लगो; बस तुम्हारा शोक, क्रोध आदि भाग जायगा और तुम्हारे स्वास्थ्य को नुक्सान न होने पावेगा।

बहनो, तुम्हारे स्वास्थ्य का थर्मामीटर तुम्हारा ऋतु धर्म है। इस देश में प्रायः १२ वर्ष की अवस्था के लगभग ऋतु का प्रारम्भ होता है। कहीं-कहीं कृत्रिम कारणों के पैदा हो जाने से इससे भी कम उम्र में हो जाया करता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उस कम उम्र में कन्या गर्भ के भार को सहने

योग्य हो जाती है। इस प्रकार के गर्भ से उत्पन्न सन्तान के जीवित रहने की बहुत कम सम्भावना रहती है और स्वयं माता का सारा जीवन नष्ट हो जाता है।

ऋतुकाल प्रतिमास नियमित समय पर २७ या २८ दिन के बाद, कभी कभी २१ या २३ दिन के बाद हुआ करता है। इस से तीन दिन तक परिमित मात्रा में रक्त-स्राव हुआ करता है। भिन्न-भिन्न स्वास्थ्य की स्त्रियों के रक्त की मात्रा उनके स्वास्थ्य पर निर्भर रहती है। ऋतुकाल में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिए। परन्तु हमारे रहन-सहन की असावधानी के कारण आजकल सिर, पेट, कमर, जंघा आदि में बहुत दर्द होने लगता है। इस अवस्था में किसी योग्य डाक्टर को बतला कर दवा कराना चाहिए।

कई स्त्रियों का ऋतु धर्म बन्द हो जाया करता है। इसके कई कारण होते हैं। सबसे पहिला कारण है, गर्भधारण। उस दशा में चिन्ता की कोई बात नहीं। किन्तु इसके लिए कभी खून की कमी और कभी किसी भयंकर घटना या बीमारी के कारण ऐसा हो जाता है। प्रायः ऋतुकाल में ठण्ड लग जाने या शरीर की ठीक-ठीक देख रेख न करने से भी स्त्रियों को नुकसान उठाना पड़ता है। इन अवस्थाओं में बहनो को चाहिए कि वे इस बात को लज्जा के कारण छिपा कर न रक्खे, वरन् जरा भी गड़बड़ होते ही किसी अच्छे डाक्टर की मदद लें। खेद है कि हमारे यहां अधिकांश बहनें अपने स्वास्थ्य और भावी सन्तान के ऊपर चोट पहुँचाने वाली इस व्याधि को साधारण समझ चुप रह जाती

हैं। इससे बढ़ कर अज्ञान और क्या हो सकता है। भविष्य में, तुम्हें भूल कर भी ऐसा न करना चाहिए।

ऋतुकाल के समय देखा जाता है कि स्त्रियाँ बड़ी ही असावधानी करती हैं। अछूत समझी जाने के कारण वे प्रायः एक वस्त्र बिछाये जमीन पर सोया करती हैं। क्या ऋतुमती स्त्री सचमुच इतनी अपवित्र है कि उसके छूने से धर्म नष्ट हो जाता है? वास्तव में बात कुछ और ही है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि ऋतुमती स्त्री साधारण अवस्था के समान ही अपना जीवन व्यतीत करे तो स्वयं उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और पति का भी रोगी हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यही प्रधान कारण है कि हमारे ऋषियों ने ऋतुकाल में स्त्रियों को अलग रहने की आज्ञा दी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे अपने शरीर को इस प्रकार कष्ट दें। वरन् उन्हें चाहिए कि इस अवसर पर पूरी सावधानी रक्खें। सर्दी आदि से अपने को बचाये रहें, क्योंकि ऐसा न करने से श्वेत प्रदर आदि अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं; और ऋतु धर्म भी ठीक तौर पर नहीं होता। इन दिनों भोजन भी हल्का करना चाहिए। घर-गृहस्थी के किसी ऐसे काम को हाथ में न लो, जिसमें अधिक परिश्रम करना पड़े। सहवास भूल कर भी न करना चाहिए अन्यथा इसका तुम्हारे पति के और भावी सन्तान के स्वास्थ्य पर इसका भयंकर दुष्परिणाम होगा। इन थोड़ी-सी बातों को ध्यान में रखने, तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से तुम अपने स्वास्थ्य को नीरोग बनाये रख सकती हो।

तुम्हारा भवन

मानव-जीवन के प्रारम्भिक काल में मनुष्य प्रकृति देवी की गोद में निवास करता था। गुफा, पत्तों से ढके हुए स्थान आदि उसके निवास स्थान थे। जंगलों में निर्द्वन्द्व घूमना, पशु-पक्षियों का शिकार करना, वृक्ष की छालों से शरीर की धूप और ठंड से रक्षा करना, तथा निर्मल तारात्रों से आच्छादित आकाश के नीचे शयन करना ही उसके प्रतिदिन के जीवन का इतिहास था। रात-दिन प्रकृति की शक्तियों से उसकी शारीरिक शक्तियों का द्वंद हुआ करता था। उसकी हड्डी-हड्डी, उसका चमड़ा, सब निरोग और हृष्ट-पुष्ट रहा करते थे। प्रकृति माता सदा ही उसकी रक्षा किया करती थी।

धीरे धीरे सभ्यता का विकास हुआ। विस्तृत वायु-मंडल में विचरण करनेवाला प्राणी मकान की एक चहारदीवारी के भीतर क़ैद कर दिया गया। सूर्य की किरणों द्वारा पोषित शरीर अब अन्धकार युक्त खोह में निवास करने पर बाध्य किया गया। अथाह जल में, निर्मल झरने में किलोल करने वाले को पैसे द्वारा खरीदे हुए नल के नियमित पानी से शरीर धोने की सुविधा प्राप्त हुई। इसी प्रकार विशालता के स्थान में संकुचितता का श्री गणेश हुआ। इस संकुचितता ने मानव-शरीर पर बड़ा ही बुरा असर किया। मनुष्य रोगों का शिकार बन चला। धीरे-धीरे अगणित

रोग उसकी ताक में रहने लगे। बेचारे ने इन्हें रोकने के उपायों को ढूँढ़ निकाला।

शरीर के स्वास्थ्य रक्षण के लिए प्रकृति की सहायता की बड़ी ही आवश्यकता होती है। हमेशा प्रकृति की शक्तियों को बांट लेने के लिये युद्ध हुआ करता है। अतएव हर एक प्राणी का कर्त्तव्य है कि वह अपने शरीरोपयोगी शक्तियों को जाने। बहनो, हमारा अधिकांश समय घर में ही व्यतीत होता है। तुम्हारे बालक, तुम्हारे कुटुम्बी सभी घरों में रहा करते हैं। अतएव तुम्हें सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये भवन-सम्बन्धी ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए।

हमारे देश में शारीरिक स्वास्थ्य और घर के सम्बन्ध की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। लोग कहा करते हैं कि हृष्ट पुष्ट माता-पिता का संयोग होने दो, हृष्ट-पुष्ट संतान का जन्म होगा। इसकी सत्यता पर भला कौन संदेह कर सकता है, परन्तु बालकों की असामयिक मृत्यु, बार बार घेरने वाली बीमारियों, और शरीर को दुर्बल एवम् मस्तिष्क के निर्बल होने के अन्य अनेक कारणों में एक प्रधान कारण अस्वास्थ्यकर मकान भी है। अतः जिन्हें अपनी भावी संतान से प्रेम है, जो अपने बालकों को संसार में योग्य और सदाचारी बनाना चाहती हैं, उन्हें घर के विषय को मामूली न समझना चाहिए। पाश्चात्य देश में इस विषय का ज्ञान प्रत्येक माता-पिता को रहता है, इसीलिए वे जगत की प्रतिद्वन्द्वता में अच्छे से अच्छे वीरों को भेजने में समर्थ होते हैं।

गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करते ही, तुम्हारे सामने एक यह

समस्या भी आयगी। यदि तुम्हारे स्वामी द्रव्योपार्जन के लिए विदेश जायँगे तो वहां तुम्हें अपने रहने के लिए घर किराए से लेना पड़ेगा। सौभाग्य से यदि तुम्हारे स्वामी स्वयं ही घर के मालिक हों तो फिर तुम्हारे हाथ में घर को सुधारने की बहुत सी सुविधा रहेगी, जो कि किराये के घर में प्राप्त होना कठिन रहता है। फिर भी मनुष्य-जीवन के लिए किन-किन बातों की जरूरत है, इसे जान लेना ठीक होगा।

प्राचीन समय से लेकर आज तक मनुष्य को किसी न किसी प्रकार के घर की आवश्यकता हमेशा रही है। प्रकृति की भयंकर शक्तियाँ, आँधी, पानी, ओले गरमी, सरदी आदि समय-समय पर मनुष्य पर अपना आक्रमण करती रहती हैं। चोर-लुटेरे, मनुष्य की गाढ़ी कमाई के द्रव्य को, उनकी प्यारी वस्तुओं को, हरण करने की फिराक में रहा करते हैं। शेर-चीते आदि हिंसक-पशु अपना ग्रास बनाने की ताक में रहते हैं। इन्हीं सब बातों से रक्षा के लिए उसे मिट्टी की दीवालों और छप्पर की शरण लेना पड़ी। इन मिट्टी के झोंपड़ों ने बड़ी उन्नति की, यहाँ तक कि वर्त्तमान काल के विशाल भवन देख कर बुद्धि चकरा जाती है और उसके निर्माणकर्त्ता कारीगर की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता।

प्रत्येक की आवश्यकता, प्रत्येक का रहन-सहन, प्रायः एक दूसरे से भिन्न होता है, अतएव घर की पसन्दगी कभी एक सी नहीं हो सकती। इतना सब होने पर भी कुछ बातें ऐसी हैं, जिनका होना प्रत्येक अच्छे घर के लिए जरूरी रहता है। क्या घर में समस्त कुटुम्ब स्वतन्त्र रूप से निवास कर सकता है?

किसी की स्वतन्त्रता पर, या किसी के एकान्त में तो कोई विघ्न नहीं पड़ता? वायु स्वच्छन्द रूप से घर में विचरण कर, वहाँ की गंदी हवा को दूर करती रहती है न? क्या सूर्य देव अपनी शक्ति-पूर्ण और आरोग्यदायिनी किरणों को उस घर में प्रतिदिन भेजते हैं? क्या घर-गृहस्थी और शरीर के कार्य-संचालन के लिए निर्मल और शुद्ध पानी सुगमता से प्राप्त होता है? क्या पुरा-पड़ोस में भले व्यक्ति रहते हैं? क्या चोरों, दुष्टों और लम्पटों से घर रक्षा करने में समर्थ है? आदि प्रश्नों पर मकान पसन्द करते समय सबसे प्रथम विचार करना चाहिए।

हिन्दुस्तानी अपने शरीर को एक निर्जीव पदार्थ सा समझने लगे हैं। जहाँ उन्होंने देखा कि चार हाथ जगह है, बस कह उठते हैं कि हाँ, ठीक है, दो आदमियों की गुजर चल जायगी। उन्हें अन्य बातों का ज्ञान नहीं रहता। यही कारण है कि हमारा स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता ही जा रहा है।

जगह सम्बन्धी कठिनाई गांवों में रहने वाले लोगों को प्रायः कम रहती है। इसीसे उनका स्वास्थ्य भी शहरवालों की अपेक्षा अच्छा ही रहता है। यदि गांव वाले कुछ स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों को जान लें तो, वे अपने स्वास्थ्य को और भी अच्छा बना सकते हैं। इसके विपरीत शहर वालों को मकान के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाइयां रहती हैं। एक तो आजकल गांवों से शहर की ओर बाढ़ आ रही है। कृषि की असफलता के कारण (जो कि वास्तव में अज्ञानता के कारण होती है) अनेकों कृषक और अन्य मजदूर सब शहरों में नौकरी करने के लिये दौड़ते हैं। इस से मजदूरी की दर तो, जीवन की आवश्यकताओं की तुलना में

बहुत ही घट गई है। साथही इन सबको रहने लिए घर भी बड़ी कठिनाई से किराये से मिलते हैं। बेचारे कहीं भी सो रहने और भोजन तैयार करने जितने भी स्थान से सन्तोष करने के लिए तैयार हो जाते हैं। फलतः वे शीघ्र ही अपने स्वास्थ्य से हाथ धो बैठते हैं, क्योंकि जगह का स्वास्थ्य पर बड़ाही असर पड़ता है। महीने में "दो रुपये का घी खाने की अपेक्षा, वेही दो रुपये मकान किराये में खर्च कर देना अधिक उपयोगी है।" विशेषतः बालकों के जीवन की उन्नता तो जगह परही निर्भर रहा करती है। डॉक्टर चाले पोरटर का कथन है कि "यदि अंगों और शरीर के पुट्ठों की वृद्धि करना है तो उनके संचालन के लिए उपयुक्त जगह की आवश्यकता है। उपयुक्त जगह न मिलने से बालक के शारीरिक और मानसिक विकास में बड़ी हानि पहुँचती है, और ये हानियां एक ऐसे बालक में उत्तम रीति से दीखती हैं जिसे कि जगह और हवा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हुई है। ऐसे बालकों का चमड़ा, मैला और पीला रहता है, उनकी आंखें भारी, फूली हुई और गोल रहती हैं, अंग और शरीर की बाढ़ मारी जाती है। दिमाग और बुद्धि कमजोर हो जाती है। उनमें कमजोरी बनी रहती है और काम करने की इच्छा नहीं रहती। उन्हें भूख कम लगती है, शरीर में खून की कमी रहती है और बीमारियों के रोकने की शक्ति कमजोर हो जाती है।"

प्रत्येक व्यक्ति के निवास के लिए कम से कम ९००-१००० घन फुट जगह की आवश्यकता होती है। साथ ही वह सर्वथा

स्वच्छ रहनी चाहिए। उसमें दरवाजे और खिड़कियां अवश्य ही होनी चाहिएं, जिससे दूषित वायु बाहर निकल सके और शुद्ध उसके स्थान को ले सके। हमारे यहां के मकानों की बनावट प्रायः बड़ी बुरी है। उनमें एक दूसरे मकान के बीच में शुद्ध-वायु और प्रकाश आने के लिए स्थान रखने का कुछ विचार नहीं रक्खा जाता। कई कोठे तो चूहे के बिल ही रहा करते हैं। इनमें प्रवेश करने के दरवाजे को छोड़कर दूसरा दरवाजा नहीं रहता। ऐसे ही कोठों में रहकर हम लोग आत्म-हत्या किया करते हैं। हमें अब इस बेहूदा-ढंग को दूरकर मकानों के बनाने में कुशादगी और वायु एवम् प्रकाश आने-जाने की पूरी व्यवस्था रखनी चाहिए।

बहनो, तुम गृहिणी कही जाती हो। किन्तु यदि तुम गृह का उचित प्रबन्ध न करोगी, उसे ठीक-ठीक अवस्था में न रक्खोगी, तो कौन तुम्हें गृहिणी कहेगा? आजकल तुम गृह-सजावट के अपने कर्त्तव्य और उस की उपयोगिता को भूल गई हो। गृह की सजावट का दृष्टि पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है, हृदय प्रसन्न रहने लगता है और यह प्रसन्नता हमारे स्वास्थ्य को सुधारती है। अतः तुम्हारे घर का प्रत्येक कमरा सजा हुआ होना चाहिए। सजावट का अर्थ केवल यही नहीं है कि तुम बड़े-बड़े शीशे, झाड़ फानूस और रंग-बिरंगी तस्वीरें लगाओ। जिन्हें ये सुविधायें प्राप्त हैं, जो इन बातों में द्रव्य खर्चकर सकती हैं, वे इनका प्रसन्नता-पूर्वक उपयोग करें। परन्तु यदि तुम्हें इतनी सुविधा प्राप्त नहीं है, तो तुम अपनी स्थिति के अनुसार सादगी से भी अपना घर सजा सकती हो। काम काज की चीजें यथास्थान अच्छी रीति

से रक्खो रहें, प्रत्येक कमरे की दीवाल साफ़ पुती हो, इधर-उधर जाले लटके न रहें, ऊपर नीचे नित्य बुहारे से वह बिलकुल साफ़ रहे। यदि मकान कच्चा है, तो सप्ताह-दो सप्ताह में गोबर-मिट्टी आदि से लिपता रहे, और यदि पक्का है तो उसका फ़र्श समय-समय पर पानी से धुलता रहे, तो तुम्हारे स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए यह भी काफ़ी है। हमारे यहां छतों पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। रात दिन ज़रासी हवा चलने पर घर के छप्पर से बहुधा कूड़ा-करकट नीचे गिरने लगता है। गरमी के दिनों में तो कभी-कभी ऐसी दशा हो जाती है कि मानो हम मिट्टी की खान में से काम करके निकले हों। कभी-कभी भोजन करते समय ऊपर से मिट्टी थाली में गिर पड़ती है। इसकी रोक के लिए यदि और कुछ न किया जा सके तो कम-से-कम टाट या किसी अन्य कपड़े की मज़बूत और मोटी चादर तानने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। आओ, तुम्हें आज एक सजे हुए मकान की सैर करावें। इसमें प्रवेश करते ही हमारा क़दम बैठकख़ाने में पड़ता है। देखो, यद्यपि यह कमरा छोटा है, फिर भी इसमें दो खिड़कियां और एक दरवाजा है। कमरे की ऊँचाई १० फुट के लगभग है, क्योंकि इस गृह के स्वामी जानते हैं कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ७ फुट से कम ऊँचाई के कमरे में रहना हानिकारक है। विदेशों में तो १२ फुट की ऊँचाई के कमरे में रहना एक साधारण बात है। कई कालेजों के कमरे की ऊँचाई २० से ३० फुट तक रखी जाती है। इसका कारण यह है कि सांस के द्वारा जो दूषित-वायु निकलती है, वह गरम होने के कारण ऊपर की ओर चली जाती है। वहां वह इकट्ठी होती रहती है; जब

तक कि शुद्ध हवा का झोंका उसे बाहर नहीं निकाल देता। अस्तु।

यहां से आगे बढ़कर देखो, दाहिनी ओर शयन-गृह है। क्या ही सुन्दर मच्छरदार पलंग खिड़कियों के सामने बिछे हुए हैं। एक खूंटी पर लालटेन टंगी हुई है, दूसरी खूंटी के पास कपड़े टांगने का प्रबन्ध है तथा आले में अन्य आवश्यकीय वस्तुएं रक्खी हुई हैं। बस इसके अतिरिक्त कमरे में कुछ नहीं दीखता, बहुतसी जगह बिलकुल साफ और खाली है। बैठकखाने की अपेक्षा यहाँ की खिड़कियां बड़ी-बड़ी हैं और प्रत्येक खिड़की में जाली लगी है। अतएव खिड़की खुली रहने पर भी कोई व्यक्ति भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। हम लोग शयन-गृह पर भी अपना लक्ष्य नहीं रखते। प्रतिदिन का सबसे बड़ा भाग, लगभग ८ से १० घंटे, शयन-गृह में ही व्यतीत होता है। सोते समय हमारी वायु क्रियाएं इतनी तीव्र नहीं रहतीं। बुरी हवा का प्रभाव इस अवस्था में बहुतही अधिक पड़ता है। निद्रा की अवस्था में ही कई व्यक्ति रोगी हो जाते हैं। इससे बचने के लिए प्रत्येक सोने के कमरे में पर्याप्त जगह होना चाहिए। सोते समय सब खिड़कियों के खुले रखने से शुद्ध-वायु आती जाती रहती है। ठंड लगने से बचने के लिए कपड़े रखने चाहिए न कि मुँह की गरम हवा के द्वारा कमरे को गर्म कर ठंड से बचने की युक्ति की शरण लेनी चाहिए। कई तो मुँह ढककर सोते हैं, जिससे उनके मुँह की दूषित-वायु बार-बार भीतर-बाहर आती जाती है। यह बुरी चाल है, स्वयं अपने हाथ से विष पीना है। सोने के कमरे में अन्य सामान रखने से जगह कम हो जाती है और उसी परिणाम में हवा की मात्रा भी घट जाती है। कई

व्यक्ति अंधकार में सो नहीं सकते। किन्तु इसकी आदत डालनी चाहिए, क्योंकि अन्धेरे में सोने से दो लाभ होंगे। एक तो खर्च की बचत होगी, दूसरे मिट्टी के तेल से जो विषैला-धुंआ निकलता है, उससे बच सकेंगे। यह धुंआ इतना भयंकर होता है कि केवल इसीमें सांस लेने से कुछ समय में प्राण निकल जाते हैं। अतः इससे बचने का ध्यान रखना चाहिए।

आगे चलकर हम रसोई-गृह में पहुँचते हैं। यहाँ एक ओर संदूक में मंजे हुए बरतन रक्खे हुए हैं। चूल्हे के ऊपर धुंआ निकलने का स्थान है। भोजन करने की जगह के ऊपर एक साफ चूने से पुती हुई चादर तनी हुई है। फर्श बिलकुल साफ और पक्का है; कहीं भी कचरे का नाम नहीं है। एक मक्खी कहीं बैठी हुई नहीं दिखती। यद्यपि हम भारतीय अपने आचार-व्यवहार के कारण भोजनालय को पाश्चात्य जगत के समान सुन्दरता पूर्ण नहीं बना सकते, फिर भी स्वच्छ और आरोग्य-प्रद तो रख सकते हैं।

कई घरों में देखा जाता है कि धुंआ निकलने का कोई प्रबंध नहीं रहता। बेचारी स्त्रियां आंसू बहाती जाती हैं और रोटी बनाती रहती हैं। इससे केवल उनकी आँखों को ही हानि नहीं पहुँचती, बल्कि धुआँ उनके कलेजे और हृदय को रोगी बना देता है। उनके स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है। हमें इस दोष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अब हम भंडार-गृह की ओर नजर डालते हैं। वह देखो, लकड़ी की बेंचों के ऊपर टीन के बन्द पीपों में अन्न भरा हुआ है। भंडार-गृह भी पक्का होना चाहिए जिससे चूहे बिल न बना

सकें। प्रत्येक वस्तु ढंककर रखने से कोई कीड़े आदि अन्न में प्रवेश कर उसे बिगाड़ नहीं सकते।

देखो, उस ओर वह स्नानागार है। नल लगा हुआ है, कपड़े टांगने का उचित प्रबन्ध है। मंजन, साबुन, तेल आदि सब प्रकार की सुविधा है। कीचड़ नहीं है, दुर्गन्ध का निशान नहीं है। हमारे देश में नहाने के स्थान आंगन के किसी भी कोने में बना दिए जाते हैं। ऐसा न कर इसके लिए ऐसी जगह स्नानागार होना चाहिए जहां धूप-ठंड और वर्षा में बिना कष्ट के स्नान किया जा सके।

बहनो, हर एक घर में बैठक-खाना, शयन-गृह भोजनालय और भंडार-गृह ये ही प्रधान रहा करते हैं। उनकी संक्षिप्त उपयोगी बातों पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है। इन कमरों को ही नहीं, बल्कि घर के प्रत्येक भाग को साफ़ रखना तुम्हारा काम है। देखो, कहीं किसी वस्तु पर धूल न जमी हो, किसी कमरे के फर्श पर कूड़ा-कचरा न पड़ा हो, भंडार-गृह में अन्न के दाने वगैरह रहने से रात्रि-दिन चूहे घुड़-दौड़ मचावेंगे, अतः वह न बिखरे रहने पावें। अच्छी तरह से देखलो कि मकान के किसी कोने में किसी सन्दूक या सामान के पीछे मकड़ी ने अपना जाला तो नहीं फैला रखा है।

कई बहनें घर झाड़ने के समय इतनी बुरी तरह से बुहारी चलाती हैं कि धूल उड़कर कमरे के अन्य सामान पर जम जाता है। उन्हें या तो कमरे की सब चीजों को ढँक देना चाहिए या बड़े धीरे-धीरे सावधानी से झाड़ना चाहिए या कुछ पानी के छींटे फर्श पर मार कर फिर झाड़ना चाहिए। याद रहे कि धूल ही सैकड़ों रोगों की जड़ है। इसी के कणों पर सैकड़ों कीटाणु (रोगों

के) निवास करते हैं। वृद्धि पाते हैं और फिर सांस के द्वारा मनुष्य-शरीर में प्रवेश कर बीमारियां उत्पन्न करते हैं। अतएव धूल बड़ी ही ज़हरीली और भयंकर चीज़ है। इसके अतिरिक्त पान, तम्बाकू खाकर इधर-उधर थूकना, नाक कफ आदि का जगह-जगह त्याग करना भी बीमारियों का प्रचारक और घृणोत्पादक है।

घर लेते समय यह देख लेना चाहिए कि वहां पर पानी, पेशाब, पाखाने का उत्तम प्रबन्ध है कि नहीं। खराब पानी घर के बाहर निकलने के लिए प्रत्येक घर में पक्की नाली का होना और मल-मूत्र त्याग के लिए चूने के पक्के पाखाने की आवश्यकता रहती है। कहीं-कहीं नालियां सड़ा करती हैं और पाखानों में दुर्गन्ध के मारे एक मिनट बैठना कठिन हो जाता है। इस बात का अवश्य ध्यान रहे कि पाखाना सोने-बैठने आदि की जगह से दूर हो और वहां की दूषित हवा का झोंका निवास-गृह में न आता हो।

जल की शुद्धता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। गहरे कुओं का पानी प्रायः अच्छा रहता है। किन्तु जिस कुए के आस-पास गंदगी हो, उसका पानी काम में नहीं लाना चाहिए। नलों के पानी की देख-रेख स्वास्थ्य-विभाग के आफीसर किया करते हैं, अतएव वह पानी अन्य स्थानों के पानी से सुरक्षित रहता है। पानी कहीं का भी हो, उसे छान अवश्य लेना चाहिए, हो सके तो कोयले और रेत से फिल्टर कर लेना अच्छा होगा। पानी को हमेशा ढँका रहने दो। हैज़ा आदि सांघातिक बीमारियों के समय पानी को उबालकर काम में लाना अच्छा है। इससे रोग-जन्तुओं का नाश हो जाता है।

अन्य उपयोगी चीजों के समान गृह में प्रकाश का होना भी अनिवार्य है। अन्धकार बीमारी का घर है। प्रकाश की किरणें में बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट कर देने की शक्ति रहती है। यह उष्णता-वायु की गति में परिवर्त्तन कर देती है, जिससे दूषित वायु के दूर होने में बड़ी सहायता मिलती है। अतः घर का प्रत्येक कमरा प्रकाश-पूर्ण होना चाहिए। सारांश घर सम्बन्धी इन बातों पर यदि तुम पूरा ध्यान रक्खोगी तो अवश्य ही तुम्हारा घर सुन्दर और निरोग रहेगा। तुम, तुम्हारे पति-देव, तुम्हारे बच्चे और सब कुटुम्बीजन स्वास्थ्य रहेंगे।

सामयिक आंधियां

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः॥

—भगवान मनु

अर्थात् "अपने मान्य पुरुषों के द्वारा घर में बन्द की जाने पर भी स्त्री रक्षित नहीं रह सकती। जो आप अपनी रक्षा करती है, वही अपने को सुरक्षित रख सकती है।"

बहनो, आजकल स्त्रियों का जीवन धीरे-धीरे बड़ा ही संकट पूर्ण होता जाता है। सदाचार के पतन हो जाने से सैकड़ों पुरुषों और स्त्रियों ने अपने धर्म को त्याग दिया और अनेकों क्षणिक सुख के लिए त्यागने को तैयार रहती हैं। पुलिस या शासक लोग केवल उन्हीं अपराधियों को दण्ड दे सकते हैं जो भ्रूण-हत्या आदि अपराध करने के कारण उनके चंगुल में फंस जाते हैं। कहीं-कहीं तो वे भी अधिकारियों की मुट्ठी गरम करके ही छुटकारा पा जाते हैं।

मनुष्य ने अपने को काम का पुतला समझ लिया है। जरा में ही वह उत्तेजित हो उठता है। किसी सुन्दर स्त्री को देखा कि बस हो उठा उसके पीछे पागल। घर वनसा दीखने लगा, अपनी पत्नी कोयल सी दीखने लगी। धर्म का ख्याल जाता रहा, इज्जत की कुछ परवा नहीं है, एकमात्र यदि किसी बात का ध्यान है, तो किसी तरह उक्त सुन्दरी को प्राप्त करने की। यदि पैसा पास है,

अन्य उपयोगी चीजों के समान गृह में प्रकाश का होना भी अनिवार्य है। अन्धकार बीमारी का घर है। प्रकाश की किरणों में बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट कर देने की शक्ति रहती है। यह उष्णता-वायु की गति में परिवर्त्तन कर देती है; जिससे दूषित वायु के दूर होने में बड़ी सहायता मिलती है। अतः घर का प्रत्येक कमरा प्रकाश-पूर्ण होना चाहिए। सारांश घर सम्बन्धी इन बातों पर यदि तुम पूरा ध्यान रक्खोगी तो अवश्य ही तुम्हारा घर सुन्दर और निरोग रहेगा। तुम, तुम्हारे पति-देव, तुम्हारे बच्चे और सब कुटुम्बीजन स्वस्थ्य रहेंगे।

सामयिक आंधियां

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः॥

—भगवान मनु

अर्थात् "अपने मान्य पुरुषों के द्वारा घर में बन्द की जाने पर भी स्त्री रक्षित नहीं रह सकती। जो आप अपनी रक्षा करती है, वही अपने को सुरक्षित रख सकती है।"

बहनो, आजकल स्त्रियों का जीवन धीरे-धीरे बड़ा ही संकट पूर्ण होता जाता है। सदाचार के पतन हो जाने से सैकड़ों पुरुषों और स्त्रियों ने अपने धर्म को त्याग दिया और अनेकों क्षणिक सुख के लिए त्यागने को तैयार रहती हैं। पुलिस या शासक लोग केवल उन्हीं अपराधियों को दण्ड दे सकते हैं जो भ्रूण-हत्या आदि अपराध करने के कारण उनके चंगुल में फंस जाते हैं। कहीं-कहीं तो वे भी अधिकारियों की मुट्ठी गरम करके ही छुटकारा पा जाते हैं।

मनुष्य ने अपने को काम का पुतला समझ लिया है। जरा में ही वह उत्तेजित हो उठता है। किसी सुन्दर स्त्री को देखा कि बस हो उठा उसके पीछे पागल। घर बनसा दीखने लगा, अपनी पत्नी कोयल सी दीखने लगी। धर्म का ख्याल जाता रहा, इज्जत की कुछ परवा नहीं है, एकमात्र यदि किसी बात का ध्यान है, तो किसी तरह उक्त सुन्दरी को प्राप्त करने की। यदि पैसा पास है,

तो पानी की तरह बहाया जाने लगता है; यदि पैसा नहीं है, तो और कपट उपाय रचे जाते हैं। ऐसे-ऐसे रूप के आशिक आज-कल चारों तरफ भरे पड़े हैं। जिस समय उनकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर पड़ गई, बस उसी समय समझ लो कि तुम पर शनि की दिशा सवार हो गई। अतएव उनकी कुवासना का पता लगते ही तुम्हें अपने को इनके चंगुल से बचने के लिए सब प्रकार से सावधान और सतर्क हो जाना चाहिए।

एक और प्रकार के दुष्ट इस सम्बन्ध में बड़े पटु रहते हैं। वे स्त्री जाति के हृदय की कमजोरी से लाभ उठाने की ताक में रहते हैं। वे जानते हैं कि स्त्री कामवासना की बड़ी गुलाम होती हैं। यहां तक कि कभी-कभी वे इसके लिए अपने पति और पुत्र को जहर दे सकती हैं। वे भावना के साथ बहती हैं विवेचना का उन्हें ध्यान भी नहीं रहता। अतः स्त्री हृदय की इस कमजोरी से लाभ उठाने के लिए वे इस बात की खोज में रहते हैं कि किस घर में, कौन सी स्त्री अपने परिजनों से अप्रसन्न

तुम उसका मुक़ाबला करने को खड़ो हो जाओगी, ऐसे ही महान संकट के अवसर पर ये दुर्गुण तुम्हारे शत्रु के सहायक हो जायंगे, और उनकी सहायता से तुम पर विजय प्राप्त कर लेंगे। अतः अच्छा हो कि तुम इन सब दुर्गुणों से अपना पक्ष बचाए रहो।

इस श्रेणी के दुष्टों का उद्देश्य सदैव विषय-वासना की तृप्ति ही नहीं रहता। अनेक धूर्त धन के लोभी रहते हैं। विषय-वासना उनका सहायक हथियार रहता है। स्त्री की काम-वासना को शान्त कर वे उसे अपने वश में कर लेते हैं और फिर धीरे-धीरे उसी की सहायता से वे उसके द्रव्य को हरण करते जाते हैं। कभी-कभी उसकी बिना सम्मति भी वे उसके द्रव्य को चुराते और खर्च करते हैं। स्त्री तो उनकी दासी हो ही जाती है, वह सब चुपचाप सहती जाती है। इसी श्रेणी के दुष्ट अपने स्वामी आदि की मृत्यु हो जाने पर घर की मालिकिनों को क़ाबू में ला, उनके द्रव्य को हरण कर लेते हैं। बाद में अनेकों उत्पात खड़े हो जाते हैं। अतएव ऐसे दुष्टों की चालबाज़ियों से आरंभ से ही सावधान रहना चाहिए। तुम सोचो, क्या ऐसे लोग किसी सच्चे प्रेमी एवम् हितचिन्तक हो सकते हैं? कदापि नहीं। उन्हें तो अपने स्वार्थ की पूर्ति का ध्यान रहता है, जहां वह हुई और वे झट ऐसी स्त्रियों को अंधेरे में छोड़ चल देते हैं। स्त्रियां ऐसे लोगों के वाग्जाल में फंस अपना धर्म और धन सब खोकर अपना इह लोक और परलोक बिगाड़ लेती हैं, और अपने कुटुम्ब को कलंकित कर स्वयम् नारकीय जीवन व्यतीत करने को बाध्य होती है। अतएव ईश्वर न करे, कभी किसी बहन को स्वामी की मृत्यु आदि का दुर्दिन देखना पड़े, तो वे उस दीनदशा

तो पानी की तरह बहाया जाने लगता है; यदि पैसा नहीं है, तो और कपट उपाय रचे जाते हैं। ऐसे-ऐसे रूप के आशिक आज-कल चारों तरफ भरे पड़े हैं। जिस समय उनकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर पड़ गई, बस उसी समय समझ लो कि तुम पर शनि की दिशा सवार हो गई। अतएव उनकी कुवासना का पता लगते ही, तुम्हें अपने को इनके चंगुल से बचने के लिए सब प्रकार से सावधान और सतर्क हो जाना चाहिए।

एक और प्रकार के दुष्ट इस सम्बन्ध में बड़े पटु रहते हैं। वे स्त्री जाति के हृदय की कमजोरी से लाभ उठाने की ताक में रहते हैं। वे जानते हैं कि स्त्री कामवासना की बड़ी गुलाम होती हैं। यहां तक कि कभी-कभी वे इसके लिए अपने पति और पुत्र को जहर दे सकती हैं। वे भावना के साथ बहती हैं, विवेचना का उन्हें ध्यान भी नहीं रहता। अतः स्त्री हृदय की इस कमजोरी से लाभ उठाने के लिए वे इस बात की खोज में रहते हैं कि किस घर में, कौन सी स्त्री अपने परिजनों से अप्रसन्न है? किसका पति दुर्बल, असमान आयुवाला एवम् दुराचारी है? यदि हो तो उसकी स्त्री किस तरह अपने चंगुल में फँसाई जा सकती है? ऐसे लोगों के पास इन बातों का पता लगाने के साधनों की कमी नहीं रहती। अतः जहां उन्हें पता लगा नहीं कि उनके प्रयत्न आरम्भ हो जाते हैं। अतएव बहनो, यदि तुम इन लोगों से बचना चाहती हो, तो उक्त दुर्गुणों में से यदि तुम भी किसी दुर्गुण की शिकार हो, तो उसे तुरन्त छोड़ दो, क्योंकि यही दुर्गुण तुम्हारे इस सुरक्षित किले के अन्दर कपटी मनुष्य के समान है। जब तुम पर किसी शत्रु का आक्रमण होगा और

तुम उसका मुकाबला करने को खड़ी हुओगी, ऐसे ही महान संकट के अवसर पर ये दुर्गुण तुम्हारे शत्रु के सहायक हो जायंगे, और उनकी सहायता से तुम पर विजय प्राप्त कर लेंगे। अतः अच्छा हो कि तुम इन सब दुर्गुणों से अपना पल्ला बचाए रहो।

इस श्रेणी के दुष्टों का उद्देश्य सदैव विषय-वासना की तृप्ति ही नहीं रहता। अनेक धूर्त धन के लोभी रहते हैं। विषय-वासना उनका सहायक हथियार रहता है। स्त्री की काम-वासना को शान्त कर वे उसे अपने वश में कर लेते हैं और फिर धीरे-धीरे उसी की सहायता से वे उसके द्रव्य को हरण करते जाते हैं। कभी-कभी उसकी बिना सम्मति भी वे उसके द्रव्य को चुराते और खर्च करते हैं। स्त्री तो उनकी दासी हो ही जाती है, वह सब चुपचाप सहती जाती है। इसी श्रेणी के दुष्ट अपने स्वामी आदि की मृत्यु हो जाने पर घर को मालिकिनों को क़ाबू में ला, उनके द्रव्य को हरण कर लेते हैं। बाद में अनेकों उत्पात खड़े हो जाते हैं। अतएव ऐसे दुष्टों की चालबाजियों से आरंभ से ही सावधान रहना चाहिए। तुम सोचो, क्या ऐसे लोग किसी सच्चे प्रेमी एवम् हितचिन्तक हो सकते हैं? कदापि नहीं। उन्हें तो अपने स्वार्थ की पूर्ति का ध्यान रहता है, जहां वह हुई और वे झट ऐसी स्त्रियों को अंधेरे में छोड़ चल देते हैं। स्त्रियां ऐसे लोगों के वाग्जाल में फंस अपना धर्म और धन सब खोकर अपना इह लोक और परलोक बिगाड़ लेती हैं, और अपने कुटुम्ब को कलंकित कर स्वयम् नारकीय जीवन व्यतीत करने को बाध्य होती है। अतएव ईश्वर न करे, कभी किसी बहन को स्वामी की मृत्यु आदि का दुर्दिन देखना पड़े, तो वे उस दीनदशा

में अधीर हो अपने नौकरों एवम् अर्थ-लोलुप सम्बन्धियों के चक्र में न फंसे बरन शहर के प्रसिद्ध सद-आचरण वाले व्यक्तियों को अपना सहायक बनाने की कोशिश करें। उन्हीं की सहायता से अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था करें।

तीसरी श्रेणी में वे दुष्ट हैं, जिनकी जाति-पांति का कोई ठिकाना नहीं रहता, या जो अपने दुष्कर्मों के कारण जाति-च्युत हो चुके हैं। इन लोगों को कोई भला मनुष्य अपनी लड़की देना नहीं चाहता। अतएव ये लाग भी अपना घर बसाने के लिए भले घरों की बहू-बेटियों पर ताक लगाए और जाल में फंसाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

चौथी श्रेणी के लोग बड़े चतुर और सुसंगठित स्त्री हृदय की कमजोरी का लाभ उठाने में बड़े पटु होते हैं। इनके दूत भिन्न-भिन्न रूप से घरों में प्रवेश करते हैं और असंतुष्ट या दुख में पड़ी हुई स्त्रियों को नाना प्रकार के प्रलोभन देते हैं। हमारा मतलब मुसलमान तथा ईसाई धर्म-प्रचारकों से है। अपने धर्म को अच्छी तरह समझने वाले, शुद्ध-हृदय मुसलमान एवम् ईसाई-धर्म-प्रचारक इन उपायों से काम लेना पसन्द नहीं करते। किन्तु निम्न श्रेणी के लोग इन उपायों को काम में लाने में कोई बुराई नहीं समझते। इनके दूत अपने-अपने धर्म की प्रशंसा करते हैं और समझाते हैं कि देखो तुम यदि मेरे साथ भाग चलो तो मैं तुम्हें अमुक बड़े आदमी की स्त्री बना दूँगा। वह बड़ा भला मनुष्य है, कभी तुम्हें पीटेगा नहीं, वरन् तुम्हारा बड़ा आदर करेगा। वह बड़ा ही धनवान है। उसके चार नौकर लगे हैं। अतः तुम व्यर्थ ही यहां पड़ी कष्ट क्यों भोगती हो ? दुनियां तो मजे से जिन्दगी बिताने की

जगह है। देखो न अमुक स्त्री ने मेरी बात मान ली, तो अब वह बड़े ही मजे में है। जब तुम्हारे घर के लोग तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, तो तुम इसका बदला उन्हें क्यों नहीं देतीं?" इस प्रकार बातों का जाल बिछाये स्त्री को खूब प्रभावित कर लेती हैं। फिर किसी गिरजे या मसजिद में ले जाकर उसें ईसाई या मुसलमान बना लेती हैं। इसके बाद कुछ दिनों तक मजहबी संस्था के पैसे से उसका पेट पालन करती हैं। बाद में किसी व्यक्ति को वह स्त्री बेच दी जाती है या किसी भी व्यक्ति के साथ उसकी शादी कर दी जाती है। बस उसी समय स्त्री को अपनी भूल का पता चलता है। न उसे धन मिलता है और न सुख मिलता है, धर्म-भ्रष्ट हो जाती है, कुल को कलंकित कर देती है। अतएव बहनो, इन प्रपंचियों की बातों में मत आओ। यदि तुम सुखी होना चाहती हो, तो स्वयं अपने को सुधारो साथ ही घर को भी सुधारने का प्रयत्न करो। प्रयत्न करने पर कुछ वर्षों में तुम्हें सफलता अवश्य मिल जायगी और उस दशा में तुम बड़ी सुखी रहोगी।

एक और श्रेणी है जिससे तुम्हें सावधान कर देना आवश्यक है। ये हैं तुम्हारे परिवार के किसी व्यक्ति से असंन्तुष्ट व्यक्ति। कभी, किसी ने, इनसे, तेजी में, कोई चुभती हुई बात कह दी है, या किसी समय तुम्हारे किन्हीं सम्बन्धियों ने इन्हें कष्ट दिया एवम् इनका द्रव्य हरण कर लिया था, इसलिए वे सदैव इसी ताक में रहते हैं कि जब तक वे तुम्हारे घर को मिट्टी में न मिला देंगे, तुम्हारे धर्म को नष्ट न कर देंगे, तुम्हारी संतान को गली-गली का भिखारी न बना देंगे, तुम्हारे कुल में कलंक न लगा देंगे, तब

तक वे हृदय में शान्ति नहीं प्राप्त कर सकेंगे। इस श्रेणी के लोग बड़े ही भयंकर रहते हैं। वे विविध प्रकार की विधियों को काम में लाते हैं। वड़े हा मीठे रहते हैं, तुम उनके व्यवहार में कोई गलती नहीं पकड़ सकती, उनपर कभी सन्देह नहीं कर सकती। ऐसे लोगों से अपनी मान और प्रतिष्ठा बचानी ही बुद्धिमानी और चतुरता का काम है। फिर वे सफलता क्यों न पावेंगे? यदि तुम कहो कि उन्हें उनके दुष्ट-कर्म का दण्ड समाज और ईश्वर अवश्य देगा परन्तु वे इससे डरते नहीं, वे अपना बदला ही लेना चाहते हैं, उसके बदले में स्वयं मर मिटने को तैयार रहते हैं। ऐसे भयंकर पुरुषों से अपनी रक्षा करना तुम्हारा और तुम्हारे सम्बन्धियों का काम है। वे तुम्हारी मीठी-मीठी बातों में फंस नहीं सकते। उनसे अपनी रक्षा के लिए तुम्हें अपने व्यवहार में बड़ा सतर्क रहना चाहिए। उनके दुष्ट व्यवहार का बदला दुष्टता से देने का प्रयत्न न करो। तुम्हारे उपाय उनकी धार्मिक भावना को जागृत कर, उनके हृदय के प्रेम और सहानुभूति की वृत्ति को उन्नत करने की ओर होने चाहिएं। प्रत्येक दुष्ट-से-दुष्ट हृदय चेष्टा करने पर उचित मार्ग पर लाया जा सकता है। उसका केवल यही एक उपाय है। कदाचित इसीलिए हमारे महापुरुष दूसरों के साथ प्रेम-मय व्यवहार करने का आदेश करते हैं। ऐसा करने से हम गुप्त या प्रकट रूप में किसी को अपना शत्रु नहीं बनाते और जीवन के एक बहुत बड़े संकट से दूर रहते हैं।

पापात्माएं इनके सिवा और भी अनेक रूपों में छिपी रहती हैं। तुम मन्दिरों और तीर्थ-स्थानों से आत्म-सुख प्राप्ति की अभिलाषा से देव-दर्शन एवम् तीर्थ-यात्रा के लिए जाती हो किन्तु

इन पवित्र स्थानों पर भी स्वयम् पुजारी-पंडे या उनके अनुचर तुम पर पाप-दृष्टि लगाए रहते हैं। तुम्हें धोका देकर ऐसे स्थानों में ले जाने का प्रयत्न करते हैं, जहां स्त्रियां किसी प्रकार से अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं। ऐसे समय भीरु-स्त्रियां विवश हो अपने सतीत्व को लुटा किसी तरह वहां से छुटकारा पाती हैं। पहिले तो यहां तक होता था, कि एकबार इनके चंगुल में फंस जानेपर वहां से जीवित बचकर निकलना कठिन होता था, किन्तु अब प्रबन्ध हो जाने से इतना डर तो नहीं रहा; फिर भी ऐसे स्थान अभी सर्वथा निरापद नहीं हुए हैं। अतः वहां जाने में बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। यदि सच पूछा जाय तो हमें तो स्त्रियों के इस प्रकार मन्दिर एवं तीर्थ जाने आदि की कुछ आवश्यकता ही समझ में नहीं आती। क्योंकि भगवान मनु स्वयं लिखते हैं:—

> वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम, संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
> पति सेवा गुरौवतो गहार्थोऽग्नि परिष्क्रिया।
> भर्त्ता देवो, गुरुर्भर्ता, धर्म तीर्थ व्रतानि च।
> तस्मात्सर्व परित्यज्य, पतिमेव समर्चयेते॥

अर्थात् "स्त्रियों के लिए विवाह ही उनका वैदिक संस्कार है; पति की सेवा ही उनके लिए गुरुकुल वास है और घर के धन्धे करना ही अग्नि-होत्र है। स्त्री अपने पति ही को देवता, पतिही को गुरु, पतिही को धर्म और पतिही को व्रत समझे, सबको छोड़कर केवल एक पति को ही पूजे।"

इसी प्रकार जिन स्त्रियों के बच्चे नही होते, उनको पुत्रवती

बनाने, अनुष्ठानों से धन बढ़ाने वाले तथा झाड़ा-फूंकी कर बच्चों की बीमारी दूर करने वाले, धूर्त साधु भी तुम्हारे सतीत्व के भूखे रहते हैं। अतएव इन लोगों से भी सदैव दूर ही रहना चाहिए।

निर्जन रास्ते और तंग गलियों में अकेले यात्रा करना भी बड़ा खतरनाक है। कभी-कभी ऐसे स्थानों पर दुष्ट लोग मौका देख कर हाथ मार दिया करते हैं। कभी-कभी घर में किसी पुरुष के न होने पर भी धूर्त लोग स्त्रियों को धोका दे जाते हैं। उनके धोका देने के सैकड़ों तरीक़े रहते हैं। कभी आकर झूठ-मूठ ही कह देते हैं कि तुम्हारा पति अमुक-अमुक भयंकर विपत्ति में फंस गया। वह मोटर के नीचे दब गया, या चोरी में पकड़ लिया गया, या स्टेशन पर उसका सामान चोरी चला गया, इसलिए तुम्हें शीघ्र बुलाया है, अथवा इतना रुपया मँगाया है। बिचारी स्त्रियां इनके भावों को न समझ घबराकर इनके साथ हो जाती हैं, या उनकी बताई हुई रकम उन्हें दे देती हैं। पीछे जब कपट-जाल खुलता है, तब हाथ मलकर पछताती हैं। अतः ऐसे धूर्तों से भी सदैव सावधान रहना चाहिए। इस बात का खयाल न करो कि ईश्वर न करे कि यदि बात सच्ची हुई तो पति क्या कहेंगे ? इसके विपरीत तुम्हें सोचना चाहिए कि पति बिना उनकी आज्ञा के तुम्हारे इस प्रकार एक अपरिचित के साथ घर से बाहर जानेपर तुमपर कितना अविश्वास करने लगेंगे और एकबार उनके हृदयमें तुम्हारे प्रति अविश्वास जम जाने पर प्रेम-मय सुखी-जीवन किस प्रकार नष्ट हो जावेगा। अस्तु।

सिनेमा और नाटक-गृह भी निरापद स्थान नहीं हैं। यहां पर भी दुष्ट लोग अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ताक लगाये ही रहते हैं।

कुटनी स्त्रियों द्वारा वे भली स्त्रियों को अपने काबू में लाने का प्रयत्न करते हैं। ये दूतियां बड़ी चालाकी से भोली-भाली स्त्रियों को अपने जाल में फंसा लेती हैं।

दुष्टगण अपने कार्य साधन के लिए कुछ ऐसी स्त्रियों को अपनी दूती बनाते हैं जो भले घरों में बिना सन्देह के आती-जाती हैं। धोबिन, नाइन, बरीनी, कहारिन, चूड़ी बेचने वाली, इत्यादि अनेकों स्त्रियां उनके इस काम को करती हैं। इनके चंगुल से बचने का सबसे सरल उपाय यही है कि उन्हें एकान्त में बातचीत करने का मौका कभी न दिया जाय। अपने घर की बूढ़ी सास-जिठानी आदि के सामने इनसे बातचीत की जाय, जिससे ये दुष्टायें अपना जादू न चला सकें।

संकट के समय आत्म एवं सतीत्व रक्षा के सैकड़ों उपाय हैं-।जैसी व्याधि हो वैसी ही दवा करनी पड़ती है। कभी छल से, कभी बल से, कभी भय दिखा कर, कभी साहस दिखाकर काम लेना चाहिए। यदि तुम कमजोर हो, तो ऐसे समय अपनी रक्षा करने में असमर्थ ही प्रतीत होगी। अब तुम्हें संयम से रहने का अभ्यास करना चाहिए, जिससे तुम्हारे शारीरिक बल की वृद्धि हो। शारीरिक बल से भी अधिक आवश्यक आत्म-बल वृद्धि की है, क्योंकि कईबार ऐसा देखने में आया है कि शरीर से हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी आत्मा में बल न होने से लोग हार गए हैं। इसके विपरीत अनेक महिलाओं के शारीरिक बल में कम होते हुए भी केवल आत्म-बल के द्वारा प्रबल पराक्रमी आक्रमणकारी को हरा देने के अनेक उदाहरण देखे गए हैं। इस प्रकार आत्म और शारीरिक बल-युक्त होने पर प्रत्येक बहन को चाहिए कि वह एक

छोटीसी छुरी या बड़ा चाकू हर समय अपने पास रक्खे। केवल पास ही न रक्खे, बरन् प्रतिदिन ५-१० मिनट उसे किसी लकड़ी खरबूज, काशीफल आदि फलों पर उसका प्रयोग कर उसे उपयोग में लाने का अभ्यास डाले।

बहनो, याद रक्खो कि जो व्यक्ति तुम्हारे ऊपर अपना हाथ उठाने की कोशिश करता है, जो तुम्हारे सतीत्व को नष्ट करना चाहता है, जो तुम्हें तुम्हारे धर्म से विचलित करना चाहता है, वह मनुष्य नहीं राक्षस है। यद्यपि हमारे धर्म-शास्त्रों में अहिंसा को परम धर्म कहा है; किन्तु यदि तुम्हारी आत्मा अहिंसात्मक साधनों के उपयोग-द्वारा अपनी रक्षा करने में समर्थ नहीं, तो भीरुतावश सतीत्व खो देने की अपेक्षा शस्त्र-द्वारा ऐसे राक्षस का प्राण लेलेना भी कोई अधर्म नहीं है।

आशा है, इस प्रकार तुम धूर्तों से अपने को सावधान रख, अपने आचरण को निर्मल बनाये रख, अपने जीवन को सुख और शान्ति-पूर्ण बनाओगी।

विकट चोट

"संकट आवे उसे झेलना, साहस हिय में लाय।
धीरज धर कर सहते रहना, कभी न कहना हाय॥"

—मुन्शी देवीप्रसाद

"दुर्भाग्य और कष्ट से ऐसी योग्यता प्राप्त होती है, जो सुखमय जीवन होने पर भी कदाचित अस्फुटित सी रह जाती।"

—होरेस

"दुःख शोक जब जो आ पड़ें, सो धैर्य-पूर्वक सब सहो।
होगी सफलता क्यों नहीं, कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहो॥"

—मैथिलीशरण गुप्त

"देवगण अपनी उदारता और कृपा से हमारे चारों ओर बड़ी बड़ी प्रचण्ड आँधी उठाया करते हैं, जिससे मानव-जाति को अपना गुप्त बल और पौरुष प्रगट करने का समय मिले और वह शक्ति काम में आवे जो प्रकाश से घृणा करती है और जीवन के शान्त और अचंचल भाग में छिपी ही रहती।"

—एडीसन

संसार में सदा किसका समय एक सा जाता है? जहाँ आज शान्ति और सुख का साम्राज्य फैला हुआ है, कौन कह सकता है कि वहाँ कल क्या होगा? आज तुम सुख की नींद सो रही हो; ईश्वर न करे। कल, कहीं तुम पर अकस्मात आपत्ति

के बादल न उमड़ पड़ें। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। जो रानियाँ किसी समय मखमल के फ़र्श पर चलती थीं; सैकड़ों दास-दासी जिनकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे; उन्हीं महान् रूस के अधिपति ज़ार और उनके पुत्र-पुत्रियों की आगे चल कर कैसी दुर्गति हुई, यह समाचार-पत्रों के पाठकों एवम् इन बातों की जानकारी रखनेवालों से छिपी नहीं। इससे सर्वथा भिन्न किन्तु कहीं अधिक वीरता-पूर्ण उदाहरण महारानी अहल्या बाई, चाँद बीबी तथा महारानी दुर्गावती आदि के हैं। यद्यपि ये महिलाएँ साधारण स्त्रियों से भिन्न परिस्थिति वाली हैं; उनका क्षेत्र भी भिन्न था; परन्तु क्या उनकी वीरता, हमारे लिए अनुकरणीय नहीं हो सकती? दुर्दिन आ पड़ने पर धैर्य्य पूर्वक उस के सामना करने की शक्ति ही की प्रशंसा करना और उससे शिक्षा ग्रहण करना ही हमारा काम है। यदि आज उस शक्ति को तुम अपने हृदय में स्थान दोगी, तो अवश्य ही समय आने पर यह शक्ति तुम्हारा दाहिना हाथ बन कर, सब प्रकार की विपत्तियों में तुम्हारी मदद करेगी।

प्रत्येक कुटुम्ब पर कुछ-न-कुछ आपत्तियों का आना सम्भव रहता है। संसार में बिरले ही प्राणी मिलेंगे, जो मृत्यु के समय धीरता-पूर्वक यह कह सकें कि "मैंने फूलों के मार्ग पर यात्रा की; जीवन में मेरे ऊपर कोई आपत्ति न आई।" किन्तु इन आपत्तियों का वीरता-पूर्वक सामना करना ही सच्चा पुरुषत्व है। बहनो, दृढ़ प्रतिज्ञा कर लो कि तुम आपत्तियों से कदापि न डरोगी। जब जैसा अवसर उपस्थित होगा, धीरज रख कर उस समय उसके उपयुक्त काम करोगी। तुम्हारी यह दृढ़ इच्छा-

शक्ति आपत्तियों से विजय प्राप्त करने में बड़ी सहायक सिद्ध होगी। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात और भी अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी।

एक ग्राम में कलावती नाम की एक देवी रहती थी। दुर्भाग्य-वश उसके पति को जुए का दुर्व्यसन लग गया था, जिसमें न केवल वह अपनी आय का ही अधिकांश भाग उड़ा देता था, वरन् घर में पहिले संचित द्रव्य एवं कलावती के आभूषण आदि सब स्वाहा कर दिए। कुछ दिनों बाद दैवयोग से उन पर हैजे का आक्रमण हुआ और उसी में उनकी मृत्यु हो गयी। कलावती के माता-पिता आदि पहिले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। सुन्दरी युवती की आशा का एकमात्र आधार उसका एक नन्हा सा बालक रह गया। वह उसी का मुँह देख ही अपना जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत करने लगी। किन्तु ईश्वर को यह भी स्वीकार न था; दुर्दैव की सताई हुई का वह पुत्र भी काल के गाल में चला गया। माता का धैर्य्य छूट गया। बेचारी घंटों पुत्र को छाती से लगाए रोती रही। वह सोचने लगी संसार में यही मेरी आशा की एक ज्योति रह गई थी, वह भी अब विलीन हो गई; अतः अब मैं संसार में किसके लिए जीऊँ ? जीकर क्या करूँ ? ऐसा सोचते-सोचते अन्त में उसने आत्म-हत्या करने का निश्चय किया। पति पुत्र से मिलने की इच्छा से वह नदी के किनारे पहुँची। परन्तु वहाँ पहुँचते ही अकस्मात विचारों ने पलटा खाया। वह सोचने लगी:—"भला मेरे इस प्रकार मरने से क्या लाभ ? ईश्वर को जो करना था वही हुआ; आगे भी जो वह चाहेगा, वही होगा। फिर मैं क्यों आत्म-हत्या के पाप को सिर पर लूँ ?" यह सोच

वह घर लौट आई। कुछ दिनों में वह अपने शोक को भुला बैठी। उसके मुख पर प्रसन्नता झलकने लगी। लोगों ने उस पर नाना प्रकार के लांछन लगा, उसे बदनाम करना चाहा। परन्तु वह इन बातों से डरी नहीं, अपने निश्चय पर दृढ़ रही। कुछ ही समय बाद संसार ने उसे एक अनाथालय की संचालिका होते देखा उसने अपना शेष जीवन इस प्रकार समाज के उपकार में लगा दिया। एक दिन अपने एक मित्र के साथ बात करते समय उसने कहा यदि मुझ पर दैवी आपत्तियों का हर प्रकार प्रहार न हुआ होता, और मुझे आत्म-विकास का इतना अवसर न मिला होता, तो आज इन सैकड़ों मातृ-पितृ-हीन बालकों को मैं न खिला सकती। देखो ये बच्चे मुझे कितना चाहते हैं; रातदिन मेरी आज्ञा मानने और सेवा करने को तैयार रहते हैं। जीवन में ऐसा आनन्द मुझे कभी नहीं मिला।" बहनो, देखा तुमने, आपत्ति का कैसा सदुपयोग है? इस अवस्था में कौन कह सकता है कि कलावती अनाथ है और उसका जीवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है? इसके विपरीत आज सारा समाज कलावती का सम्मान करने के लिए तैय्यार है।

कलावती के सदृश्य ही कई देवियों पर आपत्तियाँ आ जाती हैं। पति या पुत्र की मृत्यु हो जाने पर, आधार विहीन होकर वह सोचने लगती है कि वह अपना जीवन-निर्वाह कैसे करेगी? अपने नन्हें-नन्हें बालकों का किस प्रकार से पालन कर सकेगी? उनकी शिक्षा और अपनी लड़की की शादी के लिए द्रव्य कहाँ से लावेगी? इस प्रकार के सैकड़ों प्रश्न उनके सामने उपस्थित होते हैं। कई बहनें ऐसे अवसरों पर अत्यन्त घबरा उठती हैं;

कभी-कभी धूर्तों के फन्दे में फँस, उदर-पोषण एवम् बालकों के लालन-पालन के लिए अपनी आत्मा और सतीत्व को दूसरे को दे डालती हैं। किन्तु इस प्रकार के आचरण से न तो ये सम्मान-पूर्वक अपना उदर-पोषण कर सकती हैं, न इनके बालक ही संसार में प्रतिभाशाली व्यक्ति बन सकते हैं। बालक-बालिकाओं के हृदय में आत्माभिमान का नाम भी नहीं रह जाता। वे भविष्य में अपनी माँ को उसके दुष्कर्मों के लिए भला-बुरा कहने लगते हैं। भला उस बालक के हृदय को देख कर किसकी रग-रग में बिजली नहीं दौड़ उठती; जो प्रसन्नता-पूर्वक दृढ़ता से कहता है कि—"मुझे किसी के मुँह की ओर देखने की आवश्यकता नहीं। मेरी माता ने मुझे अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा दी है। माता का वह मुँह मुझे इस समय भी स्मरण आता है, जब वह सन्तोष-पूर्वक घर का रूखा—सूखा भोजन कर भी, दूसरे की दी हुई मिठाई को खाना पसन्द नहीं करती थी। मुझे अपने पर विश्वास है कि मैं संसार में अपनी कीर्ति फैला कर मरूँगा।" इसके विपरीत उस पुत्र या पुत्री के हृदय की कमजोरी और नपुंसकता पर दृष्टिपात करो, जो कहता है "मैं क्या करूं? माता ने विपत्ति आने पर ऐसा कर्म किया था।" जब कभी संसार में वह आगे बढ़ने की इच्छा करता है; भले समाज में प्रवेश करना चाहता है, उसी समय उसका शरीर कांप उठता है; वह अपनेको कलंकिनी पराश्रित माता की सन्तान समझता है और आगे बढ़ता हुआ उसका कदम रुक जाता है।

अतएव बहनो, इन सब परिस्थितियों पर विचार करो और कवि के इन शब्दों को ध्यान रक्खो—

"अपने बल पर आप खड़े रह, करो सदा तुम अपने काम।
यही वीर पुरुषों का मत है, रखो हमेशा इस पर ध्यान॥
जो जन सदा पराये मुख को खड़े खड़े ही तकते हैं।
उनके हाथ न कुछ भी आता, और न कुछ कर सकते हैं॥"

विपत्ति को देखकर डर जाने से कार्य करने का साहस जाता रहता है; बुद्धि का नाश हो जाता है; हृदय संदेह-युक्त हो जाता है और सन्देह-युक्त आत्मा वाले प्राणी का नाश निश्चित रहता ही है। अतः यदि तुम आरंभ से ही सोचलो कि मैं सब प्रकार की आपत्तियों का सामना कर आगे बढ़ूंगी, तो कुछ समय तक भले ही तुम्हारे कार्यों से तुम्हें कठिनाइयां दिखाई दें, परन्तु एक समय अवश्य आवेगा, जब तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और तुम शान्ति से अपनी और अपने बाल-बच्चों की वृद्धि और उन्नति होते देखोगी। स्वामी रामतीर्थ ने अपने एक भाषण में कहा था "सिंह केवल एकबार दृढ़ता से देखने से पालतू बनाये जा सकते हैं; केवल एकही बार देखने से शत्रु भयभीत किये जा सकते हैं और केवल एक ही बार के साहस-पूर्ण आक्रमण से विजय प्राप्त हो सकती है। मैंने स्वयं ऐसा किया है। हिमालय के बन्य-प्रदेश में मैंने हिंसक-जंतुओं को उनके ठीक सामने खड़े रहकर देखा है; मेरी आंखों से उनकी आंखें मिलते ही वह हिंसक पशु भयभीत हो गये और जिनको लोग मनुष्य भक्षक-जीव कहते हैं ये भी दुम दबा-कर भाग गये। इसीलिए मेरा कहना है कि निर्भय होओ और फिर तुम्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता। कांपने और भयभीत होने ही से मनुष्य पराजित होता है और मारा जाता है।"

दुर्दैववश यदि कभी किसी बहन पर सर्वथा निराश्रिता ही

जाने की आपत्ति आ पड़े, तो आपत्ति के आतेही उसे अपने सारी परिस्थिति की जांच पड़ताल कर लेनी चाहिए। वह देखे कि उनके पास कौन-कौनसी अनावश्यक वस्तुयें हैं। उन्हें वह धीरे-धीरे बेंच डाले। फिजूल के नौकर-चाकरों को दूर कर दे। यथा सम्भव गृहस्थी के सब कामों का संचालन अपने ही हाथों से करे। ऐसा करने से खर्च में तो काफी बचत होगी ही हृदय में आत्म-विश्वास भी खूब बढ़ जायगा। पर्दे की प्रथा के कारण कई स्त्रियां विपद्-ग्रस्त हो जाने पर छिपे-छिपे दुष्कर्म एवम् बुरे आचरणों को तो स्वीकार कर लेती हैं; परन्तु साहस-पूर्वक पर्दे को तोड़ जीवन-समस्या हल करने के लिए आगे नहीं आतीं। उन्हें इस व्यर्थ की लाज-शर्म को दूर कर देनी चाहिए। लाज-शर्म तो बुरे कार्यों के करने में है न कि हाथों से किसी काम के करने में। हम आज इतने अज्ञानी बन गये हैं कि कार्य की महत्ता को भूल बैठे हैं। काम करने से हमारी जाति चली जाती है, परन्तु भीख मांगने से हम भिक्षुक महाराज कहे जाते हैं। हमारे अज्ञान का इससे बढ़ कर और क्या उदाहरण होगा ?

बहुतसी बहनें, निराश्रिता होनेपर इसी निकृष्ट-मार्ग भीख का सहारा लेती हैं, और कई जो अधिक लज्जाशीला होती हैं, वे आत्म-हत्या कर लेती हैं। किन्तु बहनो, इनमें से कोई भी मार्ग अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता। सबसे अच्छा उपाय जो हो सकता है, वह यह है कि इस प्रकार की आपत्तियों का सामना करने के लिए तुम्हें अपने आरम्भिक जीवन में ही कुछ कलायें अवश्य सीख लेनी चाहिए। ये कलायें तुम्हारे भाग्य को विपत्ति के समय सुखमय बना देंगी।

गायन-कला ऐसी जबर्दस्त कला है कि इसके द्वारा शीघ्र ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। स्त्रियों की इस ओर स्वाभाविक रुचि भी रहती है। किन्तु आजकल यह कला निरापद नहीं रही है। प्रथम तो इसकी उचित शिक्षा देने वाले भले आदमी मिलते ही नहीं, फिर यदि किसी प्रकार उसकी शिक्षा मिल भी गई, तो जीवन-निर्वाह के लिए उसका सहारा ले घूमने फिरने से कई दुष्ट-प्रकृति के लोग तुम्हें अपने जाल में फंसाने के लिए चालें चलने लगेंगे, जिनसे बचने में तुम्हें अपनी बहुतसी शक्ति नष्ट करनी पड़ेगी। इसके बजाय कपड़ों की सिलाई करना, उनपर क़सीदा निकालना, कपड़ों की मरम्मत करना, छोटे-छोटे लड़कों को पढ़ाना, चित्र खींचना, सिखाना, मिट्टी आदि के छोटे-छोटे खिलौने बनाना आदि अनेकों ऐसे काम हैं जो तुम्हें तुम्हारे निर्वाह-युक्त द्रव्य दे सकते हैं। समय-समय पर अपने शहर के विद्वान् और उपकारी सज्जनों की सलाह लेने के लिए जाने से बड़ा ही लाभ होता है। वे लोग समय की स्थिति और वर्त्तमान आवश्यकताओं से परिचित रहने के कारण योग्य सलाह देने में समर्थ रहते हैं। इतना ही नहीं उनकी सहानुभूति-पूर्ण बातें तुम्हारे हृदय में अपूर्व-शक्ति का संचार करेंगी, जिससे तुम अपनी आपदाओं का सामना और भी दृढ़ता से कर सकोगी।

इसमें सन्देह नहीं कि "विपत्ति मूर्खों को भड़काती है, कायरों को उदास करती है, बुद्धिमान और परिश्रमी मनुष्यों में नवीन योग्यता का संचार करती है।" परन्तु विपत्तियों से लड़ने के लिए तुम्हें धर्म और शान्ति का उपासक बनना पड़ेगा। बिना धैर्य और शान्ति को हृदय में स्थान दिये, तुम ज़रा-ज़रासी बातों में घबरा

उठोगी, अधीर हो जाओगी। ऐसे समय अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये बिना तुम कुछ न कर पाओगी। सच पूछा जावे तो ७५ प्रतिशत आपत्तियों का जन्म इन्द्रियों की स्वच्छन्दता से ही होता है। इन्द्रियों की सारी वासनाओं को कर्त्तव्य की वेदी पर चढ़ा दो; शृंगार और अच्छे-अच्छे वस्त्र-धारण करने की भावना को त्याग दो; सुगन्धित तेल और बढ़िया साबुनों के स्थान में तिल्ली के तेल और स्वच्छ जल का उपयोग करना सीखो। सब कार्यों में सरलता और सीधेपन का व्यवहार करो। किसी वस्तु के प्राप्त न होने पर चिन्ता द्वारा अपने शरीर को न जलाओ। दूसरों की वृद्धि, उनकी सुख-समृद्धि को देख अपने हृदय में ईर्षा और द्वेष की आग मत सुलगाओ। किसी को झूठ, दगाबाजी, चोरी, दुराचार आदि द्वारा फूलते-फलते देख, अपने हृदयमें इन साधनों के उपयोग की इच्छा न आने दो। अधीर मन उतावली की शरण कभी न लो। सबके साथ प्रेम और पवित्रता का बर्ताव करो और अपने कर्त्तव्य-क्षेत्र में अग्रसर होती जाओ। याद रक्खो:—

"जिसपर अत्याचार किये अति घृणित गये हैं।
घोर तीव्र अन्याय अनेकों नित्य सहे हैं॥
भोग, भोग—अभोग आदि में वह कितने ही
भोगेगा सुख-भोग अन्त में पर उतने ही॥
उसके दुख संकट वे कष्ट छूँट जावेंगे सभी।
सुख के प्यारे सुदिन भी जल्दी आवेंगे सभी॥"

विषैला घूँट

"विषय-वाण के आक्रमण अत्यन्त विषम होते हैं।"

—महात्मा टाल्स्टाय

"ऐसे दुनिया न कभी रंज से खाली देखा।
जैसे गुलशन में न गुल से खार जुदा॥"

—राहत

"जो लोग मनुष्य निर्मित नियमों को तोड़ देते हैं, वे कभी दण्ड से बच भी जाते हैं। परन्तु प्रकृति के बनाये हुए नियमों को तोड़ने पर दण्ड अवश्य मिलता है। जो व्यक्ति एक ऊँची पहाड़ी के किनारे पर चढ़ता है, उसे अपने कार्य का फल शीघ्र ही मिलता है, चाहे वह महात्मा हो, चाहे पापी हो, चाहे वह जान कर काम करे या अनजान कर। गुरुत्वाकर्षण के नियम के समान ही, स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम भी बिना दण्ड पाए तोड़े नहीं जा सकते।"

—सर ग्रेगरी

गत अध्यायमें यह बात काफी तौरपर बताई जा चुकी है कि विवाह का उद्देश्य इन्द्रिय-तृप्ति नहीं है। क्या एक क्षणिक सुख प्राप्त करने के ही लिए ईश्वर ने इस कारीगरी से मानव-जाति का निर्माण किया था? क्या इन्द्रिय-जनक लाभ उठा, अपने शरीर के बहुमूल्य भाग को व्यर्थ कर देने के ही लिए ईश्वर ने इतना सब प्रयत्न किया था? गम्भीरता से जरा सोचने पर

प्रश्नों का उत्तर सहज ही मिल जाता है। उस क्षणिक सुख की एक बार कल्पना करो; उसके बाद के शारीरिक ह्रास पर विचार करो; हाथ पैरों के एक दम पल भर लिए निस्तेज हो जाने की बात का स्मरण करो; कुछ समय के बाद या दूसरे दिन प्रातः काल होने वाले सिर के धीमे-धीमे अल्प-कालिक दर्द की बात सोचो, तब तुम्हें स्वयं ही मालूम हो जायगा कि काम-वासना तृप्ति के इस थोड़े आनन्द का कितना अधिक मूल्य देना पड़ता है। चिकित्सा-शास्त्र विशारदों का कहना है कि एक बूंद वीर्य या रज कई बूंद खून से भी अधिक मूल्यवान है। एक दिन का किया हुआ भोजन ३३ वें दिन उस उच्च श्रेणी में पहुँचता है। मध्यान्ह काल का प्रभावशाली सूर्य तो धीरे-धीरे विलीन होता है, परन्तु वीर्य या रज बड़ी मुश्किल या देरी से तैय्यार होता है किन्तु हम कितनी जल्दी-जल्दी उसीका उपयोग करने लगते हैं ?

शरीर का सौन्दर्य किस जादू के बल सुशोभित रहता है ? वह कौन सी शक्ति है जो तुम्हारी देह को हृष्ट-पुष्ट और कान्तिवान बनाये रखती है ? वह क्या है जिसकी बदौलत तुम युवती कहलाती हो और जिसके न रहने से तुम बुढ़िया कहलाने लगती हो ? वह जादू, वह शक्ति इतनी कठिनता से बना हुआ यह रज है। रज और वीर्य के कारण ही तुम उत्तम, निरोग सन्तान की माता हो सकती हो, और उसकी कमी हो जाने पर तुम्हारे शरीर पर झुर्रियां पड़ मुँह पर पीलापन छा जावेगा, तुम्हारी आंखे निस्तेज हो जायंगी; तुम्हारे हाथ पैर छोटी–छोटी चीजें उठाने में असमर्थता जताने लगेंगे; जरा सी बीमारी तुम्हारे

जीवन को भार-स्वरूप बना देगी और तुम्हें संसार रोचक न मालूम होगा; तुम रात-दिन मृत्यु की अभिलाषिणी बन जाओगी।

अभी तुम्हारा यौवनकाल है, अतः सम्भव है, इस समय तुम बातों को व्यर्थ की वितण्डावाद समझो। किन्तु समझ रक्खो कि जिस समय यौवन-नदी की यह बाढ़ उतर जायगी, तब तुम्हें मेरे इन बातों की सत्यता ज्ञात होगी। अतः उस बाढ़ के उतरने तक मत ठहरो, तुम्हारे पुरा-पड़ोसियों के जीवन की ओर देखो, उनकी बातों को सुनो, वे अवश्य ही अपने दुखी जीवन का किस्सा सुनावेंगी। अतएव सचेत हो जाओ। कहीं असावधानी से विष का घूंट न पी लेना अन्यथा उसका प्रभाव तुम्हारे यौवन का शीघ्र ही अन्त कर देगा।

तुम कह सकती हो कि बुढ़ापा तो आवेगा ही। सब की अवस्था सब समय एकसी नहीं रहती। आज जो तुम्हारी अवस्था है वह कल न रहेगी। तुम जिस जवानी के घमण्ड में भूली हो, उसके बारे में महाकवि दाग़ का कहना है—

"रहती है कब बहारे जवानी तमाम उम्र।
मानिन्द बूये गुल इधर आई उधर गई॥"

संसार यौवन की क्रीड़ा-भूमि नहीं है। यह आनन्दमय कर्त्तव्य की लीला-भूमि है। कर्त्तव्य का पालन क्या सरल समस्या है? कर्त्तव्य-पालन का अभ्यास करने में कितना परिश्रम और मुसीबतें उठानी पड़ती हैं! यदि तुम्हारा शरीर कमजोर है, तो तुम्हारा दिमाग़ अवश्य ही कमजोर हो जायगा। और कमजोर दिमाग़ संसार में क्या कर सकता है? बकौल मौलाना हाली, हम तो यही कहेंगे—

"जीते हो तो कुछ कीजिए, ज़िन्दों की तरह
मुर्दों की तरह जिये तो क्या जिये ?"

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि कौन सी बात तुम्हें जीते जी ही मुर्दा बना देगी। सब से पहले तो यह विचार कर देखो कि इस जमाने में स्त्री जाति स्वयं ही समय से पहले यौवन को बुला लेती है। यह विचार तुम्हें आश्चर्य में अवश्य डालेगा; परन्तु मनोविज्ञान के जानने वाले ज़रूर स्वीकार करेंगे कि रात-दिन अश्लील गीतों के गाने से, उन पर विचार करने से, बुरी सोहबत में रहने से दिमाग़ पर बुरा असर पड़ता है और छोटी-छोटी लड़कियों में भी यौवन का रूप दृष्टि-गोचर होने लगता है।

कम उम्र के विवाह की प्रथा ने भी इस कार्य में बड़ी सहायता दी है। अब तो यह बीमारी हमारे देश में सर्वव्यापी हो गई है। विवाह के बाद भी पति-पत्नी अपनी इन्द्रिय-सम्बन्धी बातों और शारीरिक गठन-विषयक ज्ञान से शून्य रहते हैं। पशु-प्रवृत्ति में उन्हें आनन्द ही आनन्द आता है; उसके भविष्य में आनेवाले परिणाम का स्वप्न में भी ख़याल नहीं होता। परन्तु प्रकृति-देवी अपना चाबुक लिए खड़ी ही रहती है। जहाँ उसने देखा नहीं कि तुम उसके नियमों की अवहेलना कर रहे हो कि बस, उसी समय अपना चाबुक चला देती है।

१८ वर्ष से पहले माता बनना बड़ा ही ख़तरनाक है। यौवन का दुरुपयोग करना उससे भी अधिक भयंकर है। वीर्य और रज का कामेन्द्रिय की तृप्ति के लिए व्यर्थ ही बहाते रहना महा-

पाप और हानिकारक है, जिससे किसी प्रकार मुक्ति नहीं हो सकती। कम उम्र में दाम्पत्य-जीवन बिताने से शरीर के सारे अंग पुष्ट नहीं हो पाते। केवल देखने-मात्र को माँस रहता है। इसके बाद कई स्त्रियाँ अपनी सन्तानोत्पत्ति की शक्ति को भी खो बैठती है। ये सब कितने दुःख की बातें हैं।

विवाह के बाद पति-सहवास होता ही है; किसी का अधिक और किसी का कम। इस सहवास में पति की अपेक्षा पत्नी को बहुत कम "सार-भाग" त्यागना पड़ता है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी याद रखनी चाहिए कि तुममें पुरुष की अपेक्षा 'काम' की मात्रा अधिक रहा करती है। इतना ही नहीं, वह किसी विशेष इन्द्रिय में सीमाबद्ध नहीं रहती बल्कि सारे शरीर में उसका आतंक रहता है, और पुरुष के समान उसकी शान्ति इतने शीघ्र नहीं होती। इन सब बातों को केवल इसी लिए संकेत करने का प्रयत्न किया गया है कि जिसमें तुम स्वयं जान लो कि "विषैले घूँट" में तुम्हारा कितना भाग है और तुम किस प्रकार उसके पान को रोक सकती हो ?

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा हुआ था। मेरे कमरे की बगल में ही मेरी एक बहन का कमरा था। उसी समय दैवयोग से बहन की एक सखी आई। वे दोनों बैठ कर बातें करने लगीं। उन्हें मेरी उपस्थिति का ज्ञात नहीं था। वे निःसंकोच भाव से बातों में लीन हो गईं। बहनों, तुम्हारे लाभ के लिए उनकी बातों को अक्षरशः नीचे प्रकट करता हूँ। आशा है, मेरी बहन मेरे इस अनुचित कार्य को क्षमा करेंगी; क्योंकि इससे

अन्य सैकड़ों बहनों का उपकार हो सकता है। एक का नाम लीलावती और दूसरी का पार्वती था।

लीलावती—क्यों बहन, आजकल तुम इतनी मलिन और उदास क्यों दीखती हो ?

पार्वती—बहन, मालूम नहीं होता। मैं तो कोई कारण नहीं देखती। मेरे भोजन का प्रबन्ध भी अच्छा ही है। ईश्वर की कृपा से कपड़े-गहने आदि किसी भी बात की कमी नहीं है, और न कभी कोई चिन्ता ही सताती है।

लीलावती—तुम्हारी सास वगैरह:············?

पार्वती—नहीं बहन, मेरी सास मुझे अपनी पुत्री-सा समझती हैं। एक दिन मेरे सिर में दर्द हुआ तो वह रात भर मेरे सिरहाने बैठी रहीं, बिलकुल नहीं सोईं। मैंने हजार विनय की, परन्तु उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। ननद-भौजाई भी सब मुझे चाहती हैं। बहन, सचमुच में ईश्वर ने मुझे तो स्वर्ग ही में भेज दिया; परन्तु न मालूम क्यों, यह सब धीरे-धीरे फीका पड़ता जाता है !

लीलावती—बहन, मुझे केवल एक बात ही सूझती है। तुम्हारी इस मलिनता में तुम्हारी शय्या का इतिहास छिपा हुआ है। मानो चाहे न मानो, पति सहवास से शरीर क्षीण हो जाता है। इतना ही नहीं, इस इतनी छोटी उम्र में तीन बालकों की माता हो चुकी हो। इससे तुम्हारा शरीर और भी कान्ति-हीन होता जा रहा है। तुम्हारे बालक भी एक वर्ष के भी न हो पाये। इस सब दुर्गुण की जड़ का तुमने आज तक पता न लगाया। उस दिन तुम्हारी माँ कह रही थी कि पार्वती के पेट में दर्द बना

रहता है। बहन, मैं उस समय क्या कहती ? परन्तु आज बिना कहे चैन नहीं पड़ती। तुम्हारे पेट के दर्द का, तुम्हारे सिर के दर्द का, तुम्हारी कमजोरी और तुम्हारी अप्रसन्नता का कारण मुझे तो अति सहवास ही मालूम होता है।

पार्वती—बहन, मैंने तो ऐसा कभी नहीं सोचा। रात्रि में एक साथ सोने पर, अंग का स्पर्श होते ही, हृदय की अजीब हालत हो जाती है, फिर तो कुछ सूझता ही नहीं है; भूतकाल की बातें भी भूल जाती हैं, भविष्य तो भूल कर भी याद नहीं आता!

लीलावती—बहन, यही तो बड़ा दुर्गुण है। एक दिन उन्होंने मुझे इन बातों के बारे में बतलाया था। वह कहते थे कि स्त्री जाति भी बड़ी ही दोषी है। वह अपनी मधुर मुस्क्यान और मधुर काम-चेष्टा से थके हुए मनुष्य की कामाग्नि भड़का देती है। परिणाम भयंकर होता है। पुरुष स्वयं ही कोई बड़ा दृढ़ नहीं होता, इससे वह और साहस पा जाता है। कभी-कभी यह गलती पुरुषों से भी हुआ करती है। वे अपनी पत्नी को केवल इन्द्रिय-तृप्ति और बच्चे जनने की मशीन समझते हैं। उन्हें इस बात का भी स्मरण नहीं रहता कि, बेचारी दिन भर घर-गृहस्थी के कार्य करती रही है, अभी भोजन करके आ रही है, अतएव अपनी अक़्ल से काम न लेकर, वासना से ही काम लेते हैं। इसलिए तो स्त्री और पुरुष दोनों को ही कष्ट उठाना पड़ता है।

पार्वती—क्या कहूँ बहन, ये सब बातें बूढ़े-स्याने हम लोगों को समझाने की कोशिश क्यों नहीं करते ? जब गड्ढे में गिर पड़ते हैं, तब प्रकाश की ओर सहायता के लिए ताकने लगती हैं। भला मैं इसमें क्या कर सकती हूँ ?

लीलावती—वाह क्यों नहीं कर सकतीं ? मैंने कहीं पढ़ा था कि "स्त्री अपने पति देवता को संयम से रक्खे। क्रोध दिखा कर या जबर्दस्ती उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके नहीं, परन्तु मधुरता, कोमलता के साथ, स्नेह से हँस कर, प्रेम के आवेग में उन्हें अनाचार से रोकें। स्त्रियों को केवल अपने स्वास्थ्य की ओर ही नहीं बल्कि अपने मातृत्व की ओर भी ध्यान देना चाहिए। उनको स्मरण रखना चाहिए कि वे पुरुष की तो स्त्री हैं, पर जगत् की माता हैं। जगत् में जीव की सृष्टि करने के ही उद्देश्य से विधाता ने उनका निर्माण किया है। उन्हें, उन जीवों का अपने अटूट स्वास्थ्य-द्वारा लालन-पालन करना होगा। उन पर बड़ा भारी दायित्व है। × × × केवल इन अनाचार से ही उन्हें न रोकें बल्कि इच्छा-अनिच्छा से देह दान भी न किया करें। उनके पति उन्हें प्यार करते हैं; वे भी अपने स्वामी को कम प्यार नहीं करतीं। दोनों सदा ही एक दूसरे की मंगल-कामना किया करते हैं। स्वास्थ्य-तन-मन किसी विषय में भी कोई किसी की हानि नहीं चाहता। अतः जिस काम से दोनों का अनिष्ट होने की सम्भावना है उस काम से स्वामी को रोक रखना ही उनका कर्त्तव्य है। प्रार्थना, विनय, स्नेह, प्रेम इतने उपाय उनके पास हैं।"

इसी समय पार्वती की माँ ने उसे पुकारा और वार्त्तालाप बन्द हो गया। अस्तु।

बहनो, लीलावती का कथन सर्वथा सत्य है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी देखी जाती है। कई स्त्रियां काम-तृप्ति को ही प्रेम का रूप या चिन्ह समझती हैं और यदि पति स्वयं अपने स्वास्थ्य की हानि के कारण या अन्य किसी मानसिक

कठिनाई के कारण इस प्रकार उनकी तृप्ति करना नहीं चाहते तो वे समझती हैं कि पति-देव अब और किसी के वश में हो गये और मुझे अब उतना नहीं चाहते। यह विचार बड़ा ही भयंकर है। इस विचार से शरीर में एक साथ दो ज्वालायें भड़क उठती हैं। एक तो कामाग्नि तीव्र हो जाती है, दूसरे मानसिक उत्पात शुरू हो जाता है। इनके कारण अनेक स्त्रियों को हिस्टीरिया, मूर्च्छा, उन्माद, अवसन्नता आदि रोग हो जाते हैं और सब से अधिक आश्चर्य तो यह है कि स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार कर भी वे यह नहीं जानतीं कि मैंने ही अपना पैर काट लिया। पतिदेव बेचारे तो पत्नी के मन की बातें जानते ही नहीं कि इसके मन के इस परिवर्तन का कारण क्या है? और न पत्नी ही लज्जा के कारण अपने मन का हाल प्रकट करती है। इतना ही नहीं, स्वामी और पत्नी में इसके कारण कलह तक हो जाती है, जिसका महा-भयंकर परिणाम होता है।

बहनो, सुखी जीवन व्यतीत करने की इच्छा है तो पति-पत्नी का प्रतिदिन एक बिछौने पर शयन करना उचित नहीं है। अलग-अलग बिस्तर पर शयन करने से न प्रेम ही कम होता है और न धर्म का ही कुछ बिगड़ता है। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए तथा उपयोगी संयम से जीवन व्यतीत करने के लिए अलग-अलग बिस्तर होना ही चाहिए। मन के वेग को अपने अधिकार में रखना और कामाग्नि को भड़काने वाली सब शक्तियों को दूर कर देना चाहिए। याद रखो कि नित्य का प्रेमालाप तुम्हारे यौवन को नष्ट कर देगा और शान्ति तुम से सैकड़ों कोस दूर भागेगी। केवल संतान प्राप्ति की इच्छा-पूर्ति के लिए ही सहवास करो।

जितनी सन्तान का तुम और तुम्हारे पतिदेव उचित शिक्षा और पालन कर सकते हों, उससे अधिक सन्तान उत्पन्न न करनी चाहिए। फिर सन्तोष और ब्रह्मचर्य से जीवन व्यतीत करना चाहिए। सन्तान-निरोध या गर्भ नियमित करने की पाश्चात्य जगत की जो कृत्रिम विधियां हैं, उनका उपयोग करना, अर्थात् उनके द्वारा गर्भ को रोक इन्द्रियों की तृप्ति करना, मनुष्यता नहीं पशुता है। यदि तुम हृदय पर अधिकार नहीं रखतीं, तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। काम-वासना मानव-सदाचार और ईश्वरेच्छा की शत्रु है। क्या पाश्चात्य जगत् के दृश्य तुम्हारी आँखें नहीं खोलते ?

महात्मा टाल्स्टाय लिखते हैं कि "सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करना बहुत बुरा है, क्योंकि इससे मनुष्य बच्चों के पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि के चिन्ता-भार से मुक्त हो जाता है। अपनी ग़लती के दण्ड से वह कायरता-पूर्वक जी चुराता है। यह सरासर अनुचित और बुरा है।"

आगे चलकर यह महात्मा लिखते हैं कि "जो संयम अविवाहित अवस्था में मानव-गौरव की अनिवार्य शर्त है, वह विवाहित जीवन में पहिले से भी अधिक आवश्यक है। मनुष्य को चाहिए कि वह विषयोपभोग को एक आनन्द देनेवाली वस्तु समझना छोड़ दे। भला विषयोपभोग के कारण किस पुरुषार्थ में सहायता मिली है ? विषयी कला, शास्त्र, देश अथवा मानव-जाति, किसी की भी सेवा करने योग्य नहीं रह जाता। वह विषय-वासना-मय प्रेम, उसके कार्य में कभी सहायता नहीं पहुँचाता, बल्कि

उलटे चित्र उपस्थित करता है। काव्य, उपन्यास भले ही उनकी तारीफों के पुल बाँधें और इसके विपरीत सिद्ध करने की कोशिश करें।"

देवियो, इससे अधिक लिखने को हमारे पास स्थान नहीं है। तुम्हें चाहिए कि तुम इस विषैले घूँट की विशेषतायें समझलो। अधिक सन्तान उत्पन्न कर अपने स्वास्थ्य को नष्ट न करो। अधिक सन्तान पालन करना बड़ा ही कठिन है। साधारण गृहस्थ एक या दो सन्तान से अधिक का, इस युग और हमारी गिरी हुई अवस्था में, पालन नहीं कर सकता। शिक्षा देने में हजारों रुपये खर्च हो जाते हैं। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। देखो जान-बूझकर अपने सिर आपत्ति का पहाड़ न लेलेना। आजकल भारतवर्ष में केवल इसी एक 'घूंट' के कारण हाहाकार मचा हुआ है। राष्ट्र दिनों-दिन कमजोर होता चला जा रहा है। तुम्हारे ही हाथों में रक्षा की डोर है। चाहे जैसा उपयोग करो। यौवन को भी धीरे-धीरे विदा होने दो। आखिर अन्त में तुम्हें कहना ही पड़ेगा :—

"तृषित हृदय की ये रक्तांजलि,
विषम वेदना के अंचल।
कहां गया यह मतवालापन—
वह यौवन का उथल पुथल?
कहां गईं उन्मत्त उमंगें,
स्वप्न तुल्य छोटे से पल?
आशा की सुख-स्वर्ग, व्यथा की,
उच्छृंखल सुखमय हलचल?

....

कहां और किस ओर! ठहरकर,
अंतरतर से तुम उठकर,
एक बार फिर मस्त बनादो,
ऐ अतीत के कम्पित स्वर।"*

संसार की प्रगति के साथ

सर्वत्र एक अपूर्व युग का हो रहा संचार है।
देखो जहां से बढ़ रहा विज्ञान का विस्तार है॥
—मैथिलीशरण गुप्त।

बहनो! समस्त जगत् ज्ञान के मार्ग में अग्रसर हो जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर रहा है; छोटी-छोटी शक्तियां भी अपनी सामग्रियों को एकत्र कर वैज्ञानिक युग से लाभ उठा उन्नति की ओर बढ़ रही हैं। भिन्न-भिन्न राष्ट्र अपने प्राचीन आदर्शों को त्याग उनके स्थान में नवीन और समयानुकूल रीतियों को व्यवहारित कर प्रतिद्वन्द्विता में जीतने के अभिलाषी बन रहे हैं। ऐसे महान् उथल-पुथल के समय में, हमलोगों को चुपचाप बैठे रहना उचित नहीं। भला आँख मूंद कर प्राचीन बातों की दुन्दुभी बजाते रहना बुद्धिमत्ता है?

समय के परिवर्त्तन के साथ मनुष्य के रीति रिवाजों में परिवर्तन हो जाता है। ज्यों-ज्यों ज्ञान का विस्तार होता जाता है, त्यों-त्यों अनेक अज्ञात बातें प्रकाश में आती जाती हैं। फिर भी आँख बन्द किये पुरानी बातों को मानते चले जाना, केवल इसीलिए कि उनपर " पुरानी " की छाप लगी हुई है, ज्ञान का गला घोटना है तथा सैकड़ों महान् आत्माओं के कठोर परिश्रम द्वारा उपार्जित किये ज्ञान के लोप करने का प्रयत्न करना है। अतएव तुम्हें चाहिए कि तुम न केवल ज्ञान के प्रकाश में अपनी प्राचीन

झूठी बातों को ही त्याग दो; बल्कि अन्य बातों के विषय में भी स्वयं खोज करना सीखो।

एक साधारण वृक्ष के समान ही ज्ञान का विस्तार और उन्नति होती है। छोटे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है। उसी तरह एक छोटी सी बात की खोज से ही बड़ी-बड़ी बातों का दर्वाजा खुल जाता है। सभी जानते हैं कि छोटे से दूर्बीन का आविष्कार हो जाने पर सैकड़ों प्रकार के रोगों के अणुओं की खोज हुई। परिणाम-स्वरूप भयंकर बीमारियों की उत्पत्ति और नाश की विधियाँ ज्ञात हुईं। इसी यंत्र के द्वारा गेलीलियो ने पहले-पहल नये ग्रह का निरीक्षण किया और आगे चलकर नवीन विशाल सौर-जगत् तथा अगणित छोटे-बड़े तारे दृष्टि-गोचर होने लगे। इससे विशाल-स्वर्ग और नवीन ज्योतिष-शास्त्र का जन्म हुआ। इसी तरह के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस तरह ज्ञान की वृद्धि और खोज दिनों-दिन होती जा रही है। प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना के पीछे, विज्ञान पड़ा हुआ है। जबतक सामयिक ज्ञान से सत्य का रूप नहीं ज्ञात हो जाता, तब तक खोज जारी रहती है। हमारा-तुम्हारा जन्म इसी उलट-फेर के जमाने में हुआ है। फिर संसार की विज्ञानशालाओं में जब सैकड़ों प्राचीन विचारों को मिथ्या सिद्ध करके दिखा दिया गया तब हमें भी न चाहिए कि उनके वर्तमान रूपको स्वीकार करलें ? संसार के मार्ग से हजारों वर्ष पीछे पड़े रहना अच्छा नहीं है। बल्कि, इससे हमारे दिमाग़ की कमजोरी और मूर्ख हठीलापन ही ज्ञात होता है।

बहनो, यह तो तुमने रात-दिन ही सुना होगा, सुना ही नहीं

तुम विश्वास भी करती हो—कि पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर रक्खी हुई है। शेषनाग के करवट लेने से भूकंप होता है। स्वर्ग हमारे सिर के ऊपर सातवें आकाश में है। ग्रहण के समय राहु नामक राक्षस चन्द्रदेव को निगल जाता है। प्रातःकाल होते ही सूर्यदेव अपने रथ पर उदयाचल-पर्वत से निकलते हैं और उनपर राक्षसगण आक्रमण करते हैं व युद्ध होता है। विजयी सूर्यदेव समुद्र में जाकर विलीन हो जाते हैं इत्यादि सैकड़ों प्रकार की बातें हैं। आजकल स्कूल में छोटे-छोटे लड़कों को भी पढ़ाया जाता है कि पृथ्वी चपटी नहीं; किन्तु गोल है, क्योंकि एक स्थान से चलकर, एक ही दिशा में यात्रा करने वाला पथिक, फिर भी उसी स्थान पर आजाता है। इस प्रकार की यात्रा अनेकों व्यक्ति कर चुके; परन्तु उन्हें शेषनाग का सिर कहीं नहीं मिला, और न यह बात सम्भव हो सकती थी—चाहे पृथ्वी चपटी ही क्यों न होती। जब शेषनाग ही नहीं तब भूकंप क्यों होते हैं? वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के अन्तर्गत भागों की जलती हुई और गरम धातुओं, भाफ आदि की उथल-पुथल को भूकंप का कारण बतलाया है। इस विषय की भी खूब जाँच हो चुकी है। राहु और केतु की कथा भी केवल कपोल-कल्पित है। चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण केवल एक ग्रह की छाया और दूसरे ग्रह के बीच में आजाने के कारण होते हैं। ये सब बातें वैज्ञानिकों ने अनेकों परीक्षाओं के द्वारा सिद्ध करके दिखा दीं। फिर भी तुम चन्द्र-ग्रहण को राक्षस की माया समझती हो। चन्द्र के उद्धार की प्रार्थना करती हो। ग्रहण काल में भोजन नहीं करतीं, सभी वस्तुएं अपवित्र समझी जाने लगती हैं। दान दिया जाता है। भला इन सब बातों को देख किस

विद्वान् के हृदय में कष्ट न होता होगा। स्वयं सत्य भी तुम्हारे इस अंध-विश्वास के आचरण को देखकर लज्जित होता होगा। तुम्हीं सोचो, भला क्या तुम्हारा यह आचरण योग्य है? अतएव, तुम्हें चाहिए, इन परम्परा के अन्ध-विश्वासों को दूर कर दो और वैज्ञानिक स्पष्टीकरण को मानना और उनकी सत्यता को जानना शुरू करो।

बहनो, हमारे अंध-विश्वासों के जन्म की कहानी भी बड़ी ही रोचक है। एक समय की बात है कि एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक तोता और एक बिल्ली पाल रक्खी थी। इनको वह बहुत प्यार करता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के एक पुत्री भी थी। जब पुत्री की अवस्था १२ वर्ष की हुई, उसने उसका विवाह करने का निश्चय किया। सुयोग्य वर प्राप्त हो जाने पर लग्न आदि की तिथियों का निश्चय हो गया। विवाह की तिथि भी तय हो गई। बरात द्वार पर आ गई। सब काम धूम-धाम से होने लगा। मंडप में जब कन्या-दान हो रहा था, अचानक एक घटना हो गई। उसकी प्यारी बिल्ली और तोते में झगड़ा होने लगा। नौबत यहाँ तक आई कि तोते ने बड़ा कोलाहल मचाया, बिल्ली भी बड़ी तेजी से गुर्राई। इससे लोगों का ध्यान उस ओर खिंच गया, और विवाह-विधि में एक प्रकार का विघ्न-सा उपस्थित हो गया। तब ब्राह्मण वहाँ से शीघ्र उठा; उसने तोते के पिंजड़े को एक टोकनी के नीचे बन्द कर दिया और बिल्ली को पकड़ दूसरी टोकनी के नीचे मण्डप की सीमा के भीतर रख दिया। कन्या इस बात को गौर से देख रही थी। इसके पश्चात् विवाह निर्विघ्न समाप्त

हो गया। जब वही कन्या माता हुई और उसकी पुत्री के विवाह का समय आया, तब उसने भी मंडप के नीचे एक टोकनी के नीचे तोता और दूसरी के नीचे बिल्ली ढाँक कर रख दी; क्योंकि उसकी समझ में बिना ऐसा किये विवाह में विघ्न हो जाने की संभावना थी—यही तो उसके पूर्वजों और देवी-देवताओं की आज्ञा थी! बस, इसी प्रकार से ज्ञान और विवेक-शून्यता के कारण सैकड़ों प्रकार की हिन्दू-धर्म की दकियानूसी रूढ़ियाँ चलीं और आजकल इतनी बढ़ गईं कि अब इस बीमारी की दवा किये बिना हिन्दू-जाति रसातल में जाये बिना न रहेगी।

बहनो, अब हम आप के एक दूसरे विश्वास पर आघात करना चाहते हैं। यद्यपि यह आघात अवश्य है, परन्तु ईश्वर ने तुम्हें भी कुछ-न-कुछ बुद्धि अवश्य दी ही है। उसे काम में लाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

हिन्दुओं में पूजा का ऐसा विस्तृत साम्राज्य फैला हुआ है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। हमारी अकर्मण्यता की जड़ में यह अंध-विश्वासी पूजा-पाठ भी है। सैकड़ों-हजारों देवी-देवताओं का जन्म हिन्दुओं में हुआ। उनके [illegible] पुजारी [illegible] हिन्दू

बहनो ! जब हम संसार के प्रारम्भिक काल के इतिहास को देखते हैं, तथा उस समय के मनुष्यों के विचारों की थाह लेते हैं, तो उसी दम हमें इन पुजारियों की घंटियों की आवाज़ की चालबाज़ी ज्ञात होने लगती है। उस समय मनुष्य का ज्ञान सीमाबद्ध था। उसने वस्तु-स्वभाव और कारण-कारक की बातों को समझना नहीं सीखा था। उसकी दृष्टि ही उसके जीवन-प्रवाह की वाहक थी। एक दिन उसका साथी क्रोधित हो उठा। क्रोध में उसने बहुत से दुष्ट कर्म कर डाले; दूसरों का नाश कर डाला, कई को कष्ट दिया। क्रोध को शान्त करने की विधि सोचने की बात मनुष्य के दिमाग़ में उठी। होते-होते उसे ज्ञात हो गया कि क्रोधी व्यक्ति चापलूसी, ख़ुशामद, घूस आदि बातों से प्रसन्न किया जा सकता है। इसी तरह उसने देखा कि एक अग्नि-सा जलता हुआ गोला, सुबह एक दिशा से निकल कर दूसरी दिशा में लोप हो जाता है। दूसरे दिन उसी विधि से फिर निकलता है। उसने देखा, वायु कभी बड़े प्रचण्ड वेग से चलती है। अपनी महान् शक्ति से सैंकड़ों बड़े-बड़े वृक्षों को भूमि पर लिटा देती है, कभी मन्द-मन्द चाल से चलती है, कभी आँधी-पानी और कभी ओला आदि का भी प्रहार होता है। इन सबके पीछे उसे एक शक्ति की कल्पना हुई। बस, उसी को, उसने देवता नाम से विभूषित कर दिया। देवता को प्रसन्न करने के लिए घूस-ख़ोरी शुरू की गई—अर्थात् पूजा का आविर्भाव हुआ।

बहनो, मनुष्य-समाज में प्रत्येक प्रकार के मनुष्य रहा करते हैं। कई तो ऐसे दब्बू होते हैं कि कोई आँख दिखा दे, तो नाली

हो गया। जब वही कन्या माता हुई और उसकी पुत्री के विवाह का समय आया, तब उसने भी मंडप के नीचे एक टोकनी के नीचे तोता और दूसरी के नीचे बिल्ली ढाँक कर रख दी; क्योंकि उसकी समझ में बिना ऐसा किये विवाह में विघ्न हो जाने की संभावना थी—यही तो उसके पूर्वजों और देवी-देवताओं की आज्ञा थी! बस, इसी प्रकार से ज्ञान और विवेक-शून्यता के कारण सैकड़ों प्रकार की हिन्दू-धर्म की दकियानूसी रूढ़ियाँ चलीं और आजकल इतनी बढ़ गईं कि अब इस बीमारी की दवा किये बिना हिन्दू-जाति रसातल में जाये बिना न रहेगी।

बहनो, अब हम आप के एक दूसरे विश्वास पर आघात करना चाहते हैं। यद्यपि यह आघात अवश्य है, परन्तु ईश्वर ने तुम्हें भी कुछ-न-कुछ बुद्धि अवश्य दी ही है। उसे काम में लाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

हिन्दुओं में पूजा का ऐसा विस्तृत साम्राज्य फैला हुआ है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। हमारी अकर्मण्यता की जड़ में यह अंध-विश्वासी पूजा-पाठ भी है। सैकड़ों-हज़ारों देवी-देवताओं का जन्म हिन्दुओं में हुआ। उनके अगणित पुजारी हुए, तथा हिन्दू जाति उनकी गुलाम बन गई। इस मजहबी गुलामी को दूर किये बिना हिन्दू-जाति कभी उन्नति पथ-गामिनी नहीं हो सकती।

तुम समझती होगी कि पूजा तो हमारे पूर्वजों की देनगी है, परन्तु लेखक, इन विचारों की गुलामी को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। यदि कोई बात विचार और विवेक के द्वारा हानि-कारक और अनुपयोगी सिद्ध हो, तो उसे मटिया-मेट कर देने में ज़रा भी आगा पीछा न करना चाहिए।

बहनो! जब हम संसार के प्रारम्भिक काल के इतिहास को देखते हैं, तथा उस समय के मनुष्यों के विचारों की थाह लेते हैं, तो उसी दम हमें इन पुजारियों की घंटियों की आवाज की चालबाजी ज्ञात होने लगती है। उस समय मनुष्य का ज्ञान सीमाबद्ध था। उसने वस्तु-स्वभाव और कारण-कारक की बातों को समझना नहीं सीखा था। उसकी दृष्टि ही उसके जीवन-प्रवाह की बाहक थी। एक दिन उसका साथी क्रोधित हो उठा। क्रोध में उसने बहुत से दुष्ट कर्म कर डाले; दूसरों का नाश कर डाला, कई को कष्ट दिया। क्रोध को शान्त करने की विधि सोचने की बात मनुष्य के दिमाग में उठी। होते-होते उसे ज्ञात हो गया कि क्रोधी व्यक्ति चापलूसी, खुशामद, घूस आदि बातों से प्रसन्न किया जा सकता है। इसी तरह उसने देखा कि एक अग्नि-सा जलता हुआ गोला, सुबह एक दिशा से निकल कर दूसरी दिशा में लोप हो जाता है। दूसरे दिन उसी विधि से फिर निकलता है। उसने देखा, वायु कभी बड़े प्रचण्ड वेग से चलती है। अपनी महान् शक्ति से सैकड़ों बड़े-बड़े वृक्षों को भूमि पर लिटा देती है, कभी मन्द-मन्द चाल से चलती है, कभी आँधी-पानी और कभी ओला आदि का भी प्रहार होता है। इन सबके पीछे उसे एक शक्ति की कल्पना हुई। बस, उसी को, उसने देवता नाम से विभूषित कर दिया। देवता को प्रसन्न करने के लिए घूस-खोरी शुरू की गई—अर्थात् पूजा का आविर्भाव हुआ।

बहनो, मनुष्य-समाज में प्रत्येक प्रकार के मनुष्य रहा करते हैं। कई तो ऐसे दब्बू होते हैं कि कोई आँख दिखा दे, तो डाली

में घुस जावें; कई ऐसे उद्दण्ड प्रकृति के होते हैं कि दूसरों को बिना तंग किये चैन ही नहीं पड़ता। कई दूसरों पर अपना अधिकार जमाने के शौक़ीन भी होते हैं। इन्हीं चालाकों ने देखा कि बड़ा अच्छा मौक़ा है। बस, क्या था, वे देवताओं के ठेकेदार बन बैठे। लोगों में उन्होंने प्रचार करना शुरू कर दिया कि मुझे स्वप्न में देवता ने दर्शन दिये थे कि अमुक-अमुक स्थान पर मंदिर बनवाना चाहिए और अमुक-अमुक विधि से पूजा की जानी चाहिए। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो दुःख पाओगे। यदि कभी दुःख हो तो वह इसी देवता का कोप है, उसकी शांति की विधियाँ भी इस-इस तरह की हैं। भोले-भाले लोग इनके बहकावे में आ गये। एक की देखा-देखी दूसरे भी इसी मार्ग पर चलने लगे, और इस तरह स्वार्थी पुजारियों की चाल-बाजी काम कर गई। उन्हें खूब आमदनी होने लगी दूसरों का भला हो या न हो। इसी प्रकार वल्लभाचार्य दल वालों ने श्रीकृष्ण महाराज के नाम को चीर-हरण-लीला, गोपी-लीला आदि लीलायें कर इतनी बुरी तरह से कलंकित किया कि लज्जा के मारे हिन्दुओं को अपना सिर सभ्य संसार के आगे झुकाना पड़ता है। बाल की खाल खींचने वाले विद्वानगण इन कथाओं को समझाते हैं कि नहीं भाई इसका रूप ऐसा था, यह प्रकृति की लीला का क़िस्सा है। मान भी लिया कि ऐसा ही है, परन्तु सैकड़ों स्त्रियाँ और मनुष्य क्या इसका इतना गहन विचार करते हैं? वे तो जो कुछ आँख से देखते हैं, वही सच मानते हैं। इसी प्रकार से हमारे समाज में व्यभिचार और दुराचार फैल रहा है। इन लीलाओं के मिथ्यापन को लाला लाजपतराय ने अपनी श्री

कृष्णमहाराज नामक पुस्तक में बड़ी ही युक्ति-संगत दलीलें उपस्थित कर सिद्ध कर दिखाया है।

बहनो, तुम्हारी कमजोरी से ये साधक, पुजारी, साधू और धूर्त फक़ीर कितना लाभ उठाते हैं ? विचार करके देखो। जो बहनें पुत्रवती नहीं हो पातीं, पुत्र की कामना जिनके हृदय में तीव्रता से रहा करती हैं, वे क्या करती हैं? प्रायः इन्हीं चालाकों के फन्दे में फँस जाती हैं। कोई कहता है कि यदि तुम अमुक-अमुक देवी-देवता की मानता करोगी तो तुम्हें पुत्र होगा। बेचारी वैसा ही करती है। कोई कहता है कि अमुक पीर की क़ब्र पूजने से तुम्हें पुत्र होगा। कोई कहता है कि यदि तुम आधी-रात में अकेली अमुक-अमुक साधु के पास जाकर भोजन खिलाओगी या अमुक मन्दिर की परिक्रमा करोगी, तो पुत्रवती होओगी। बेचारी वही करती हैं। जब वह अपने पति की आज्ञा लेकर अथवा बिना उससे कहे ऐसे स्थानों में पहुँच जाती है, तब प्रायः साधु और फकीर या उनके चेले उसके साथ व्यभिचार करते हैं। परिणाम-स्वरूप यदि वह गर्भवती हो गई। तो ठीक है, साधु की और देवता की कृपा है, यदि नहीं हुई तो "भगवान् को देना ही न होगा" कह कर वह अपने हृदय की ज्वाला को शान्त कर लेती है। लज्जा और सतीत्व-हरण की कहानी वह संसार को बतला नहीं सकती। यह कपोल-कल्पना नहीं है, आज हमारे पूज्य तीर्थों में पंडे लोग दिन-दहाड़े व्यभिचार कर अच्छे-अच्छे घर की स्त्रियों को मन्दिरों की परिक्रमा आदि स्थानों में भ्रष्ट कर देते हैं। अपना रोना बेचारी कैसे और किससे कहे ? भला, बहनो, सोचो तो सही कि यदि तुम किसी खेत में बीज बोओगी

और जमीन अच्छी होगी तथा वर्षा भी उचित होगी, तो वह बीज वृक्ष-रूप से अवश्य ही समय पाकर तुम्हारे सामने उपस्थित होगा। इसी प्रकार मनुष्य के वीर्य और स्त्री के रज के सम्मिलन से मनुष्य के शरीर का जन्म होता है, फिर, हमारे देवता और फकीर केवल धूल देकर या देवता के पैरों के धोवन को पिलाकर किस तरह से तुम्हें गर्भवती कर सकते हैं? इससे बढ़ कर स्त्रियों को धोखा देने की और क्या बात हो सकती है?

तुम कह सकती हो कि देवता अपनी कृपा से ऐसा कर सकते हैं। यह दलील बिलकुल पोच है। यदि देवताओं का अस्तित्व है भी, तो क्या वे इतने स्वेच्छाचारी हैं? यदि वे स्वेच्छाचारी हैं, तो आज तुम्हें पुत्र दे देंगे, कल किसी दूसरे की ज्यादा घूँस पाकर छीन लेंगे। भला इस प्रकार से भी कभी संसार का शासन चल सकता है? यदि तुम कहो कि वे बड़े ही शक्तिमान् हैं, तब तो मुझे हँसी आये बिना नहीं रह सकती। वाह री शक्ति! सारी शक्ति केवल दूसरों को ठगने के लिए ही देवताओं के पास है। जब देवताओं के मन्दिरों पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया था तब देवता कहाँ भाग गये थे? जब देवताओं के मन्दिर गिराये गये थे और उनकी मूर्तियों के टुकड़े-टुकड़े किये गये थे, तब देवताओं ने अपना सिर क्यों फुड़वा लिया था? तब हमारे साधकों ने, जो आज मंत्र-जंत्र के बल दूसरों को मार डालने तक का दावा करते हैं, इन आक्रमण-कारियों से अपने मंदिरों को क्यों नहीं बचा लिया? मैं कई वर्ष पहिले महावीर स्वामी का बड़ा भक्त था। रोज हनुमान-चालीसा का पाठ किया करता था। जब कभी परीक्षा का समय आता, हनुमान जी से

पास करा देने की विनती किया करता और घूस में एक नारियल और सवा पाव चिरौंजी देने की प्रतिज्ञा करता था। महावीर स्वामी बड़े ही प्रसन्न रहते मालूम पड़ते, क्योंकि मैं हमेशा पास हो जाया करता था। एक समय सार्वजनिक सभा में एक विषय नियत हुआ। उस विषय पर विद्यार्थियों के भाषण की प्रतिद्वन्द्विता का निश्चय हुआ। साथ ही यह भी घोषित किया गया कि सर्वोत्तम वक्ता को २५) रुपया पुरस्कार मिलेगा, द्वितीय को १५) और तीसरे को १०) दिया जायगा। अपनी अवस्था और योग्यता के लिहाज से मैं उस प्रतिद्वन्द्विता में शरीक होने के योग्य था। साथ ही मुझे अपने इष्टदेव महावीर स्वामी पर भी बड़ा विश्वास था। बस, महावीर के चरणों में लोटकर मैंने प्रार्थना की कि महाराज, मुझे इस कार्य में सफलता दिला दीजिए, मैं अपने इनाम के सब रुपयों का प्रसाद चढ़ा दूँगा। मुझे केवल सफलता की ही आवश्यकता है। फिर कुछ रुपये खर्च कर उस विषय की पुस्तकें खरीदीं तथा १५ दिन में भाषण तैयार कर लिया। परन्तु, लेखक महावीर की कृपा का पात्र न हो पाया—उसे तीसरा इनाम भी न मिला! महावीर इतने रुष्ट क्यों हो गये? उसी दिन से महावीर की पोल खुल गई। खूब जी भरकर मैंने उन्हें गाली दी, अपना अविश्वास प्रकट किया। कुटुम्बी लोगों ने डराया, धमकाया, कि देखो पागल हो जाओगे या बीमार पड़ जाओगे, परन्तु कुछ न हुआ। बहनो, अब तो तुम समझ ही गई होगी कि बिना कारण के कार्य नहीं होता। यदि तुमने समस्त शक्तियों को जुटा लिया है, तो तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। देवताओं की बात ढकोसला-मात्र है।

इसी प्रकार राजा दशरथ की रानियों का हव्य खाकर गर्भवती

ही जाना, सत्यनारायण महाराज की कृपा से साधु बनिया का सन्तानवान होना, कथा न करने से दामाद का आपत्ति में पड़ जाना, द्रव्य का लता-पत्रादि हो जाना, फिर सत्यनारायण भगवान की कृपा से असली रूप में आजाना, ये सब बातें कार्य-कारण के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, और इनकी जड़ में भाग्य का सत्त्व-ज्ञान भरा हुआ है। इन्हीं के कारण हाथ पर हाथ धरे भारतीय बैठे रहते हैं और कहते हैं कि " जब उसे देना होगा तो छप्पर फाड़ कर देगा ", " भाग्य में लिखा होगा सो होगा, फिर क्यों परिश्रम करें " आदि ऐसी अनेकों कहावतें प्रचलित हैं। बहनो, तुम्हें चाहिए कि अपनी विवेक-बुद्धि से काम लो और इस विचार-स्वातंत्र्य के युग में इस गुलामी को दूर करने का प्रयत्न करो।

कहाँ तक लिखें! प्यारे बच्चों के बीमार हो जाने पर झाड़-फूँकी, मंत्र-जंत्र से काम लिया जाता है। शीतला माता, ताप-तिल्ली आदि रोगों में भी झाड़ने-फूँकनेवाले बुलाये जाते हैं। यदि किसी कारण के उपस्थित हो जाने पर रोग अच्छा हो गया, तो समझा जाता है कि देवता की बड़ी ही प्रसन्नता है और यदि लाभ न हो तो कहते हैं, पूजा में कुछ भूल रह गई होगी। इसी अंध-विश्वास के कारण लाखों बालक अकाल मृत्यु के गाल में जा पड़ते हैं। धूर्त साधक लोग तो अपना दाम सीधा कर लेते हैं, बेचारी माता ठगी जाती है। यदि साधकों की झाड़ फूँकी से रोग अच्छा नहीं होता, तो साधक लोग कहने लगते हैं—"तुम्हारे स्वामी ने हमारे देवता पर विश्वास नहीं किया, नहीं तो बचा अवश्य अच्छा हो जाता।" बस यह अपने पतिदेव को भला-बुरा कहने लगती हैं और यदि वह बेचारे दवा कराना चाहते हैं तो एक बात भी नहीं

सुनती। इस प्रकार बच्चे से भी हाथ धोना पड़ता है और गाँठ से दाम भी खोना पड़ता है, और पुरस्कार में केवल गृह-कलह ही मिलता है। इस अन्ध-विश्वास के अपढ़ लोग ही गुलाम नहीं हैं वरन् बहुत से पढ़े-लिखे लोग भी अपनी स्त्रियों के कारण गुलाम बन जाते हैं।

लेखक को कॉलेज के एक प्रोफ़ेसर का क़िस्सा स्मरण आ रहा है। प्रोफ़ेसर साहब ने एक नया घोड़ा ताँगे के लिए ५००) रु० में ख़रीदा, कुछ दिन वह अच्छी तरह से चलता रहा। एक दिन वह कॉलेज के फाटक के पास अड़ गया; फिर बड़ी मुश्किल से थोड़ी दूर गया और दुबारा अड़ गया। इस पर उसकी अड़ने की आदत-सी पड़ गई। श्रीमतीजी ने सईसिन से पूछा, क्या बात है? उसने कहा—"मालिकन, 'भूलन' माई को परसाद क़बूला था, सो नहीं चढ़ाया; आपने पैसे नहीं दिये।" बस क्या था, उन्होंने कहा, "वाह, तुमने पैसे क्यों नहीं लिए? अच्छा १।) बाबूजी से ले लेना और प्रसाद चढ़ा देना।" ऐसा ही हुआ प्रसाद चढ़ाया गया दो नारियल। और बाकी सईसिन ने घर के काम में ख़र्च किया, तथा घोड़ों को ठीक रास्ते पर लाने के लिए अन्य उपाय काम में लाये गये।

बहनो, यदि इच्छा हो तो तुम भी नये देवी-देवता पैदा कर सकती हो। मुझे कुछ वर्ष पहले, बाल्यकाल में, ऐसी ही सनक सवार हुई थी। हमारे निवास-स्थान से नर्मदा-नदी ५ मील की दूरी पर है। वहाँ प्रत्येक त्यौहार को अच्छा मेला लगता है। पापों को बहाने के लिए दूर-दूर से यात्री लोग आते हैं। हम कुछ विद्यार्थी भी उस ओर गये। मार्ग में हम लोगों ने विचारा कि

कोई ऐसा काम करें, जिससे यह यात्रा बहुत दिनों तक याद रहे। किसी ने कहा, वृक्षों के तने में चाकू से नाम और तारीख खोद दें।" एक ने कहा—"नहीं भाई, किसी देवता का स्थान तैयार करें, जिससे दूसरे लोग भी उसे पूजें। यह बात अंत में सब को पसंद आ गई। बस, सड़क के किनारे से पत्थर बीन कर एक चबूतरा बबूल के दरख्त के नीचे बनाया गया। एक लाल चिन्दी की झण्डी बना कर लगा दी। देवी का नाम रक्खा गया, "पत्थरहाई देवी।" कुछ साथी सड़क पर खड़े हो गये। यात्रियों से कहते जाते थे, "देखो यह पत्थरहाई देवी है, एक-एक पत्थर फेंकते जाओ, देवी बड़ी प्रसन्न होंगी और तुम्हें पुण्य मिलेगा।" कई वृद्ध गाँव के रहने वाले बातों में आ गये और थोड़ी देर में यहाँ बहुत से पत्थरों का ढेर लग गया। धीरे-धीरे बात जम गई। अब तो हमेशा आते-जाते अन्ध-विश्वासी लोग वहाँ पर पत्थर फेंकते हैं और किसी अधिक दयावान ने कुछ पैसे खर्च करके एक बड़े बाँस में लाल झंडा लगा कर वहाँ गाड़ भी दिया है। हमारी देवी अब तो चिरस्थाई हो गई है।

बहनो, तुमने बिच्छू, सांप आदि के मन्त्रों के बारे में तो सुना ही होगा। भूत-पिशाच, चुड़ैल आदि के लग जाने और उनके भगाये जाने की बातें भी अवश्य ही सुनी होंगी। इन सब विषयों पर कई पृष्ठ रंगे जा सकते हैं। यहाँ पर हमने संक्षिप्त में तुम्हारे सामने केवल एक बात के रखने का प्रयत्न किया है। वह है—विचार-स्वतंत्रता की कमी, प्रत्येक बात को जानना—उसमें सत्य का अंश कितना है, इसकी खोज करना—तुम्हारा उद्देश्य होना चाहिए। मोहनी ऐसा कहती है, कमलिनी को ऐसा हुआ

था, सोहनी के सिर पर भूत सवार हो गया था, योगनी का मथा कलमे के रुपये का पानी पीकर अच्छा हो गया। नलिनी के पैर से बिच्छू का जहर एक मंत्र से दूर हो गया। आदि हास्यो-त्पादक बातें हैं। जब तुम इनकी सच्चे-हृदय से पूरी-तौर से खोज करोगी, तो मेरे शब्दों की सचाई ज्ञात हो सकेगी। अपनी उन्नति के लिए परम-आवश्यक है कि तुम अपने ज्ञान का विस्तार करो।" केवल लकीर की फ़क़ीर न बनी रहो, और न वैज्ञानिक युग में विज्ञान-दीपक के रहते हुए अन्धकार में रहो। प्राचीनता के पागल तो हर एक बात की खाल निकालते फिरते हैं। सब के कुछ न कुछ कारण बतलाते फिरते हैं। परन्तु साधारण बुद्धि और वैज्ञानिक परीक्षा क्या बतलाती है, इसे जानना और उसके सम्मुख सिर झुकाना प्रत्येक बुद्धिमान बहन का कर्तव्य होना चाहिए।

बहनो, एक विद्वान् लेखक लिखता है कि संसार एक महान् जीवन-संताप है और इसमें विजय प्राप्त करने के लिए मनुष्य को परिस्थितियों (Environment) के अनुकूल बनना ही चाहिए। प्राकृतिक नियम बड़े कड़े हैं। प्रकृति दीन-हीन या दुर्बल की पर्वाह नहीं करती। बहनो, तुम्हारा काम दीन और दुर्बल बनने का नहीं, वरन् प्रकृति का सामना करने का— उस पर विजय प्राप्त करने का है। उठो! आलस्य और कायरता से काम न चलेगा। प्रकृति निर्दय है, देवता बहरे हैं, संसार में नियम-विरुद्ध कोई कार्य नहीं होता। ईश्वर भी नियम को नहीं पलट सकता, उसका भी कोई चारा नहीं। उठो, मैदान में आ डटो, वीर बनो। तब प्रकृति भी तुम्हारा सामना नहीं

कर सकेगी। याद रक्खो, 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' वीरता दिखलाओ, सत्कर्म-रत हो जाओ, सत्यव्रत ग्रहण करो, सदाचार को अवलम्बन करो, केवल यही एक धर्म तुम्हें शोभा देता है। अन्य सब मत बहुत संकुचित, एक दम छोटे, अत्यन्त क्षुद्र हैं। सत्य को और स्वतंत्रता को छोड़ कर तुम इन में कब तक लिप्त रहोगी? याद रक्खो कि सभी मत और मजहब तुम्हारे लिए बनाये गये हैं; तुम उनके लिए नहीं बनाई गई। भय और स्वार्थपरता तुम्हें शोभा नहीं देती। प्रह्लाद और ईसा के समान कष्ट भोगने के लिए तैयार हो जाओ। क्या इस भय से कि देवता रूठ जायँगे, ईश्वर तुम से कुपित होगा, तुम सत्य को त्याग दोगी? उठो, यह भय तुम्हें शोभा नहीं देता, और कवि के साथ कहो कि—

> "सिजदः से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए।
> दोज़ख ही सही, सर का झुकाना नहीं अच्छा।"

तुलाधार ने जाजलि को क्या ही उत्तम शिक्षा दी थी—

> जाजले तीर्थमात्मैव मास्मदेशातिथिर्भव"
> एतानी दृशकान्धर्माना चरनिह जाजलि।
> कारणे धर्ममन्विच्छन्स लोकानाप्नुते शुभान् ॥
>
> —महाभारत, शा० प०

अर्थात्, हे जाजलि! तेरा आत्मा एक अति पवित्र मंदिर है। अतएव इधर-उधर पृथ्वी पर तीर्थाटन मत करता फिर। अपने कर्त्तव्य का पालन कर। अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म की उपासना करनेवाला मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग प्राप्त करता है।"

भयंकर व्याधि-दल

"आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणां संयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥"

—एक कवि

अर्थात् "इन्द्रियों के वश में रहने से ही विपत्ति आती है और उनको जीतने से, दमन करने से, सुख मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ये दोनों मार्ग खुले हैं; जिस मार्ग से जाना चाहो, जा सकते हो।"

संसार के आनन्द से भरे प्याले को ओठों से लगाना, परन्तु उन्मत्त न होना; उसकी विशालताओं को दृढ़ता से देखना, परन्तु उससे चकाचौंध न होना, साधारण सरल जीवन व्यतीत करना, उसकी उज्ज्वलता का अनुभव करना, परन्तु भयंकरता से दूर रहना—यह सब कठिन है; परन्तु इसी को मनुष्य की आत्मा में प्रभा-पूर्ण ईश्वर का निवास कहते हैं।"

बहनो, मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए, निर्मल हृदय की आवश्यकता रहा करती है। सैकड़ों व्याधियों का जन्म हृदय से होता है। जीवन में एक-एक क़दम आगे बढ़ना बड़ा ही कठिन है। जिस प्रकार मनुष्य पहाड़ पर चढ़ने के पहले उसके मार्ग को रोकने वाली शक्तियों को—काँटों को देख लेता है और फिर उनसे बच कर ऊपर चढ़ता है; उसी प्रकार जीवन

का आनन्द प्राप्त करने के लिए, तुम्हें चाहिए कि तुम जीवन को बिगाड़ देने वाली व्यधियों को जान लो। जान ही लेने से कोई लाभ नहीं है। केवल पढ़ लेना सच्चा ज्ञान नहीं कहला सकता। सच्चे ज्ञान और कार्य में घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। ज्ञान को प्राप्त कर उसको उपयोग में न लाना, ज्ञान का अपमान करना है।

तुम्हारे मार्ग को रोकने के लिए, सैकड़ों तरह की व्याधियों, जीवन-क्षेत्र में आ कूदेंगी। कब कौन-सी बीमारी तुम्हारे पास आवेगी, इसका वर्णन करना कठिन है।

गृह-कलह हमारी गृहस्थी को दुःख-मय बनानेवाली सबसे कराल व्याधि है। भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक घर में आज इसका निवास है। स्त्रियां ही प्रायः इसकी जड़ हुआ करती हैं। अपने बुरे स्वभाव के कारण वे बात-बात में लड़ पड़ती हैं और अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए वे इतनी उतावली करती हैं, कि उन्हें भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। सब कुटुम्ब छिन्न-भिन्न हो जाता है। एक दूसरे को जी से चाहनेवाले दो भाई जीवन-भर को जुदे हो जाते हैं। संसार में जन्म दे और रात-दिन अनेकों कष्टों को सहकर पालनेवाले पिता-माता से भी स्त्री वंचित करा देती है। परन्तु, बहनो, यदि तुम चाहो तो कलह को उत्पन्न करने वाले कारणों को ढूँढ कर साहस-पूर्वक एक के बाद एक को दूर करने से, तुम इसके जाल से छुटकारा पा सकती हो।

प्रत्येक चीज़ को नियत स्थान पर रखना तो मानों हमारी गृहिणियों को आता ही नहीं है। यदि आज दियासलाई इस आले में रक्खी हुई है, तो कल वह सन्दूक पर पड़ी है; परसों मिट्टी के तेल के पीपे पर रक्खी है, तो किसी दिन ढूँढने पर

उसका पता ही नहीं लग रहा है। यही हालत गृहस्थी की अन्य समस्त आवश्यक-अनावश्यक वस्तुओं की रहा करती है। इससे जब कभी जल्दी में किसी चीज की आवश्यकता होती है, तो वह नहीं मिल पाती; और यदि कोई चुरा ले जावे, या बालक ही उठा कर फेंक दें, तो उन्हें उसके गुम जाने का पता शीघ्र नहीं लगता। अतएव, घर में प्रत्येक चीज के रखने का एक स्थान नियत कर लेना चाहिए और हर समय उस चीज को उसी स्थान पर रखना चाहिए।

इसी प्रकार समय-सम्बन्धी ला-पर्वाही भी बड़ी हानिकारक है तुम्हें चाहिए कि तुम अपने समय के मूल्य को जानना सीखो। काम के लिए समय नियुक्त करने से तुम्हारे पास बहुत-सा समय बच जायगा। इस बचे हुए समय का सदुपयोग करने से, किसी कला या उद्योग में लगाने से, तुम स्वयं अपनी उन्नति कर सकती हो और साथ ही अपने गृह के आर्थिक संकट में भी सहायक हो सकती हो। नष्ट किया समय किसी तरह फिर प्राप्त नहीं हो सकता। एक विद्वान् लेखक लिखता है कि "जिन क्षणों को हम खो देते हैं, उन्हें वापिस करने की शक्ति विश्व में किसी के पास नहीं है। सोचो, तुम कितना समय केवल शृंगार में खर्च कर देती हो? तुम्हारा दोपहर और संध्या का समय सोने और गप्प लगाने में ही नष्ट हो जाता है। तुम कुएँ पर पानी लेने जाती हो, तो वहीं खड़ी होकर बातचीत में मग्न हो जाती हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये सब बातें सार-हीन और झगड़ा-फसाद उत्पन्न करने वाली रहा करती हैं। यदि इन्हीं क्षणों का तुम उपयोग करना सीखो, तो संसार की सभ्यता

को बढ़ाने में और अपने कुटुम्ब का उत्थान करने में बड़ी सहायक बन सकती हो।

घर-गृहस्थी में सुख-दुःख हुआ ही करते हैं। आज दुःख है, किसी की अज्ञानता और दोषों के कारण तुम्हें कष्ट हो रहा है, तो बारबार उसीका स्मरण कर रोने से कोई लाभ नहीं है। दुःख के समय में प्रायः देखा जाता है कि स्त्रियां अपना रोना प्रत्येक से कहती फिरती हैं। यहां तक कि पति के दोषों को भी दूसरों से बतलाये बिना उनका भोजन हज़म नहीं होता। सास-ससुर तथा अन्य सम्बन्धियों के बुरे व्यवहार की बातें वे अपने पास बैठनेवाली स्त्रियों से तथा पड़ोसिनों से कहा करती हैं। यह ठीक नहीं। संसार में दुःख में सहायता करनेवाले विरले ही रहा करते हैं। कहा भी है :—

"होता नहीं है कोई बुरे वक्त में शरीक।
पत्ते भी भागते हैं खिज़ा में शजर से दूर॥
पुतलियां तक भी वो फिर जाती हैं देखो दम निज़ा।
वक्त पड़ता है तो सब आंख चुरा जाते हैं॥"

संसार में कई सहृदय भी रहा करते हैं। उनसे अपनी दुःखद कहानी कहने से, हृदय को शान्ति ज़रूर मिलती है, क्योंकि उनकी समवेदना सच्ची और उनका उद्देश्य दूसरों की भलाई करना रहा करता है। परन्तु ऐसे बहुत-कम होते हैं। और हर एक से अपनी बातें कहते फिरना हृदय की क्षुद्रता ही नहीं प्रत्युत गढ्ढे में गिरने का एक रास्ता है।

इसी प्रकार भविष्य में आने वाले दुःखों की चिन्ता कर अपने वर्त्तमान को नष्ट करना भी बड़ी ही मूर्खता है। व्यर्थ की मानसिक व्याधि' बुला लेना कहाँ की बुद्धिमानी है ? जो चिन्ता आज तुम्हें सता रही है, वह शायद आवे ही नहीं।

इसी प्रकार हम लोगों में राम-भरोसे बैठे रहने की बड़ी बुरी बीमारी हो गई है। हम भाग्य के भरोसे बैठे कहा करते हैं—

"तुलसी बिरवा बाग के, सींचत ही कुम्हलाय।
रामभरोसे जे रहैं, पर्वत पर हरियायँ॥"

पर भला बिना पानी के वृक्ष हरा-भरा रह सकता है ? क्या हमने कभी सोचा है कि पानी के अतिरिक्त स्वच्छ वायु, धूप, खाद और उपयुक्त तत्व-युक्त भूमि की वृक्ष के लिए आवश्यकता रहा करती है ? इन चीजों के न होने से बाग का पौधा सींचने से कुम्हला जाता है। पर्वत पर प्रकृति ने पौधे के जीवन की सब वस्तुएं इकट्ठी रक्खी हैं और यही उसके हरे-भरे रहने का कारण है।

यदि कोई आपत्ति आ गई है, तो राम-भरोसे की पुकार करना अकर्मण्यता है। बिना कारणों के कार्य नहीं होता। अतएव राम-भरोसे को ताक़ में रख अपने आस-पास की समस्त घटनाओं की जाँच कर जीवन व्यतीत करना हर एक का काम है।

स्त्रियों के आम तौर पर आपत्ति में फँस जाने की जड़ में उनमें रहनेवाला असंतोष होता है। असंतोष कहीं-कहीं ठीक भी है। पर केवल असन्तोष प्रकट करना और हाथ पर हाथ धरे

रहना अच्छा नहीं है। वर्तमान-कालिक विपत्ति या कमी से अपने हृदय की शान्ति को विचलित न होने देना चाहिए। प्रसिद्ध कवि दांते (Dante) लिखते हैं—

> प्राप्त सुखों को नहीं जीव जो गिनती में कुछ लाता है,
> वह अपने आगम का खोकर सदा दुःख ही पाता है॥
> जिसने अपने जीवन-धन को व्यर्थ मान कर नष्ट किया,
> सुख से धोकर हाथ दुःख का गट्ठा उसने बाँध लिया॥

जीवन की असुविधाओं को देख, पति के वियोग में पड़, या उसकी असन्तुष्टता की पात्र बन, गहने-भूषण की कमी आदि बातों के आ पड़ने पर, असन्तुष्टता की आग न भड़कानी चाहिए। अन्यथा तुम अवश्य ही उसी में जल मरोगी। सोचलो कि, यदि "मेरा मरना निश्चित ही है तो फिर मुझे दुःख करते हुए क्यों मरना चाहिए? यदि मेरे पैरों में शृंखला ही पड़ने वाली है, तो फिर मुझे क्रन्दन क्यों करना चाहिए? यदि मुझे देश-निकाला ही भोगना बदा है, तो फिर उसे आनन्द से ही सहने में मुझे कौन रोक सकता है?"*

बकवाद करने की बीमारी ने हमारे स्त्री-समाज को बुरी तरह से घेर लिया है। सम्भाषण-कुशलता किसे कहते हैं, यह तो स्त्रियाँ मानों बिलकुल जानती ही नहीं। उनकी बात-चीत चूल्हे, चौके, रोटी आदि से ऊँची प्रायः नहीं होती। यदि दूसरा मार्ग ग्रहण किया, तो पराई निंदा करना शुरू कर देती हैं। अमुक की बहू ऐसी है, रामफली की सास ऐसी है, मोहनी की नन्द बड़ी

* इपिक्टेटस।

दुष्टा है, गौरा की जिठानी बदचलन है, आदि ही बातें होती हैं। इस प्रकार की स्त्रियाँ बड़ी ही भयंकर हैं। उनका विश्वास करना बड़ा कठिन रहता है। आज वे जब तुम्हारे सामने किसी की निन्दा कर रही हैं, तो कौन कह सकता है कि वे कल पीठ-पीछे तुम्हारी भी निन्दा किसी से न करेंगी ? इसके अतिरिक्त जब उनकी निन्दा की बात वह स्त्री सुनेगी, जिसे कि वे भला-बुरा कह रही हैं, तब वह यदि अशान्त प्रकृति की होगी तो भला कब खामोश रह सकती है ? इस तरह आपस में मन-मुटाव फैलाना, दंगा-फ़िसाद करना, इन स्त्रियों का काम रहता है। अपनी बात की सत्यता बतलाने के लिए वे बार-बार क़समें खाती हैं। अपनी बात के आगे किसी अन्य की सुनती ही नहीं हैं। उन्हें स्मरण ही नहीं रहता कि जिसे हम सुना रही हैं, वह सुनना ही नहीं चाहती। इस तरह की स्त्रियाँ समाज और गृह-सुख की महा शत्रु हुआ करती हैं। अतएव, बहनो, तुम्हें चाहिए कि तुम व्यर्थ की सारहीन बात-चीत में कभी भी अपना समय नष्ट न किया करो। प्रत्येक बात अप्रिय सत्य न हो। मुँह खोलने के पहले देखलो कि तुम्हें किससे बातचीत करना है, समय कैसा है। जिनसे तुम बातचीत करना चाहती हो, वे प्रसन्न हैं या दुःखी हैं। किस प्रकार की बात-चीत उन्हें अच्छी लगेगी। यह सब विचारने के बाद मधुर सरल-भाषा में अपनी बातचीत शुरू किया करो। यदि कोई स्त्री अधिक बक-बक करती है, या अनुचित बातें करती है, तो उसे मधुर शब्दों में समझा देना चाहिए। यदि कोई तुम्हें भला-बुरा कह रही है, तो उसका उत्तर उसी प्रकार देने से कोई लाभ न होगा। सब से उत्तम उपाय चुप रह जाना है। मनुस्मृति में लिखा है।—

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन।
नचेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्॥

अर्थात्, "अति वाद कोई करे तो उसे सह ले पर किसी का अपमान न करे। इस देह का आश्रय कर किसी के साथ शत्रुता न करे।"

भारतवर्ष के पतन का एक कारण आलस्य भी है। संसार के समस्त विद्वानों ने इस बुरी बात की हमेशा निन्दा की है। गृह-कलह का कारण आलस्य भी रहा करता है। जहां दो-चार स्त्रियाँ एकत्र हुईं कि बस, समझो, एक-न-एक दिन वे अवश्य लड़ पड़ेंगी और पति से पृथक् हो जाने की बिनती रो-रोकर करेंगी। क्योंकि दूसरी स्त्री बैठी रहे और वे काम करें, भला यह कैसे सह्य हो सकता है? शरीर काम करने के लिए बनाया गया है; काम करने से उसके भिन्न-भिन्न अंग पुष्ट होते हैं; स्वास्थ्य सुधरता है; फिर काम से जी क्यों चुराना चाहिए? देखो, समर्थ स्वामी रामदास लिखते हैं—

"आलस लूटि उदारता, तुरत कृपन करि देत।
आलस जतन बुधाई के, साहस को हर लेत॥
आलस है दारिद्र घर, दुख संकट का मूल।
करै भिखारी नित्य अरु, उर उपजावै शूल॥"

इसी आलस्य के कारण, हम लोग शुभ समय की खोज में रहा करते हैं। जब तक शुभ समय नहीं आता, तब तक काम ही नहीं करते। कहीं जाना होता है, तो पोथी-पत्रा के दिखाने की ज़रूरत होती है। किसी घर को [illegible] होता है,

तो शुभ समय की खोज होता है। ब्याह-शादी होते हैं, तो शुभ समय। जहाँ देखो वहाँ शुभ समय ही की पुकार है, परन्तु लेखक को शोक केवल इसीलिए है, कि इतने शुभ समय की खोज रहने पर भी अनेक कामों का परिणाम खराब ही निकलता है। सच पूछा जावे तो यह मिथ्या विवाद है। इसका असली कारण आलस्य-प्रेम और सार-हीन चिन्ता है। मौलाना हाली का कहना है—

"है जान के साथ काम इन्सां के लिए।
बनती नहीं ज़िन्दगी में बेकाम किए॥"

आलस्य की निंदा करते समय (Burton) महोदय लिखते हैं—"आलस्य कुलीन लोगों का चिन्ह है, शरीर और मन के लिए विष है, शैतानी का जनक है, अनुशासन की सौतेली माँ है, उपद्रव का उत्पन्न-कर्त्ता है, सात भयंकर पापों में एक है, शैतान के आराम करने की गद्दी है, और केवल मनो-मालिन्य का ही नहीं बल्कि कई दूसरी बीमारियों का कारण है।"

विलासिता की बीमारी भी स्त्री-समाज में दिनोंदिन बढ़ती जाती है। आज उन्हें सिर में डालने के लिए विलायती तेल और इत्र चाहिए। शरीर साफ़ करने के लिए फ्रान्स का साबुन चाहिए। हवा करने के लिए जापान का पंखा चाहिए। दाँत साफ़ करने के लिए लन्दन का पाउडर और अमेरिका का ब्रुस चाहिए। कहाँ तक लिखें, उनके शृंगार के लिए अनेकों वस्तुओं की ज़रूरत पड़ती है। स्वदेशी वस्तुयें उन्हें पसन्द ही नहीं हैं। देश के बने हुए इत्र और तेल उनकी दृष्टि में अच्छे नहीं होते। लकड़ी चबाना जंगली काम समझती हैं, परन्तु सुअर के बालों

से दाँत साफ करना सभ्यता का चिन्ह है। उबटन लगाने से वे घृणा करती हैं परन्तु चर्बी का साबुन शरीर में लगा लेने से कोई एत-राज नहीं। कितनी विचित्र बात है यह! कम-से-कम अपने यहाँ की लाभदायक वस्तुओं को त्याग खर्चीली विदेशी-वस्तुओं का ग्रहण करना तो बहुत ही बुरा है।

कपड़ों और गहनों की विलासिता भी बढ़ रही है। इसकी जड़ में अपने को सुन्दर बनाने की इच्छा छिपी रहती है। दूसरों की दृष्टि में तुम अधिक सुन्दरी दिखने लगोगी तो बतलाओ इससे तुम्हें क्या लाभ होगा? तुम्हारा शृंगार पति के लिए होना चाहिए, न कि बाह्य जगत् के मनुष्यों के लिए? कौन नहीं जानता कि जो स्त्रियाँ कुछ थोड़े-से जेवर और साधारण वस्त्र महीनों पहना करती हैं, वे ही मन्दिरों में, मेलों में, यहाँ-वहाँ जाने के समय में सैकड़ों के वस्त्र और जेवर पहने बिना घर से निक-लती ही नहीं हैं? कोई भी विद्वान् तुम्हारे आभूषणों से तुम्हारी सुन्दरता या स-हृदयता को नहीं समझ सकता। तुम्हें चाहिए कि तुम साधारण जीवन व्यतीत करते हुए महान् हृदय का परिचय दो। इससे अधिक लिखने के लिए हमारे पास स्थान नहीं है।

एक दूसरा दोष स्त्रियों में अपना दोष स्वीकार न करने का रहा करता है। वे एक बात को छिपाने के लिए दूसरा झूठ बोला करती हैं। इससे कभी-कभी निर्दोष व्यक्तियों के सिर अप-राध मढ़ दिया जाता है। स्त्रियों की हृदय-हीनता और भीरुता इससे स्पष्ट ज्ञात होती है। यदि तुम्हारा अपराध है, तो अपराध का दंड सहर्ष भोगने में ही सुख है। आत्मा को शान्ति मिलती है। साथ ही तुम्हें क्षमा मिल जाने की भी सम्भावना रहती है।

यदि तुम नम्र शब्दों में अपना अपराध स्वीकृत करते हुए, फिर न करने की प्रतिज्ञा कर क्षमा माँगोगी, तो एक बार कठोर-से-कठोर हृदय भी द्रवित हो जावेगा और तुम्हारी भूल को क्षमा कर देगा। किसी कवि का कथन है:—

"जब गुनहगार दिल में अपने जुर्म पर नादिम हुआ।
माफ़ कर देना उसे इन्साफ़ पर लाज़िम हुआ॥"

दूसरों की बढ़ती देख कर, उन्हें सुख की नींद सोते देख कर, उन्हें धन-धान्य-पूरित देख कर, कई दुःखी ही नहीं बल्कि सुखी स्त्रियों के हृदय में भी ईर्षा या द्वेष की आग जलने लगती है। इससे स्वयं वे अपना अनिष्ट करती हैं और दूसरों की बुराई करने की इच्छा के कारण प्रेम-मय बर्ताव से हाथ धो बैठती हैं। भला ईर्षा करने से तुम्हें क्या लाभ होगा? तुम व्यर्थ ही मानसिक वेदना को सहोगी। यदि तुम दूसरों की बढ़ती को देखकर प्रसन्न होगी, उनके साथ अपनी सच्ची प्रेममय भावना प्रकाशित करोगी, तो तुम्हारा हृदय विस्तीर्ण होगा। तुम्हें सुख प्राप्त होने लगेगा और संसार की भली शक्तियाँ तुम्हारी सहायता करने को एकत्र हो जावेंगी।

ईर्षा के समान तृष्णा भी बड़ी बुरी है। तृष्णा के कारण हम अपने पास की अधिक वस्तु में से भी किसी को दुःख में मदद नहीं कर सकते। पर्याप्त चीजें होने पर भी तृष्णा के कारण "और" "और" की पुकार मचाते हैं। भले-बुरे का ज्ञान नष्ट हो जाता है। किसी बात की तृष्णा हो, वह भयंकर ही रहा करती है। इसीलिए तो कबीरदास जी ने कहा है—

से दाँत साफ करना सभ्यता का चिन्ह है। उबटन लगाने से वे घृणा करती हैं परन्तु चर्बी का साबुन शरीर में लगा लेने से कोई एतराज नहीं। कितनी विचित्र बात है यह ! कम-से-कम अपने यहाँ की लाभदायक वस्तुओं को त्याग खर्चीली विदेशी-वस्तुओं का ग्रहण करना तो बहुत ही बुरा है।

कपड़ों और गहनों की विलासिता भी बढ़ रही है। इसकी जड़ में अपने को सुन्दर बनाने की इच्छा छिपी रहती है। दूसरों की दृष्टि में तुम अधिक सुन्दरी दिखने लगोगी तो बतलाओ इससे तुम्हें क्या लाभ होगा ? तुम्हारा शृंगार पति के लिए होना चाहिए, न कि बाह्य जगत् के मनुष्यों के लिए ? कौन नहीं जानता कि जो स्त्रियाँ कुछ थोड़े-से जेवर और साधारण वस्त्र महीनों पहना करती हैं, वे ही मन्दिरों में, मेलों में, यहाँ-वहाँ जाने के समय में सैकड़ों के वस्त्र और जेवर पहने बिना घर से निकलती ही नहीं हैं ? कोई भी विद्वान् तुम्हारे आभूषणों से तुम्हारी सुन्दरता या स-हृदयता को नहीं समझ सकता। तुम्हें चाहिए कि तुम साधारण जीवन व्यतीत करते हुए महान् हृदय का परिचय दो। इससे अधिक लिखने के लिए हमारे पास स्थान नहीं है।

एक दूसरा दोष स्त्रियों में अपना दोष स्वीकार न करने का रहा करता है। वे एक बात को छिपाने के लिए दूसरा झूठ बोला करती हैं। इससे कभी-कभी निर्दोष व्यक्तियों के सिर अपराध मढ़ दिया जाता है। स्त्रियों की हृदय-हीनता और भीरुता इससे स्पष्ट ज्ञात होती है। यदि तुम्हारा अपराध है, तो अपराध का दंड सहर्ष भोगने में ही सुख है। आत्मा को शान्ति मिलती है। साथ ही तुम्हें क्षमा मिल जाने की भी सम्भावना रहती है।

यदि तुम नम्र शब्दों में अपना अपराध स्वीकृत करते हुए, फिर न करने की प्रतिज्ञा कर क्षमा माँगोगी, तो एक बार कठोर-से-कठोर हृदय भी द्रवित हो जावेगा और तुम्हारी भूल को क्षमा कर देगा। किसी कवि का कथन है:—

"जब गुनहगार दिल में अपने जुर्म पर नादिम हुआ।
माफ़ कर देना उसे इन्साफ़ पर लाज़िम हुआ॥"

दूसरों की बढ़ती देख कर, उन्हें सुख की नींद सोते देख कर, उन्हें धन-धान्य-पूरित देख कर, कई दुःखी ही नहीं बल्कि सुखी स्त्रियों के हृदय में भी ईर्षा या द्वेष की आग जलने लगती है। इससे स्वयं वे अपना अनिष्ट करती हैं और दूसरों की बुराई करने की इच्छा के कारण प्रेम-मय बर्ताव से हाथ धो बैठती हैं। भला ईर्षा करने से तुम्हें क्या लाभ होगा? तुम व्यर्थ ही मानसिक वेदना को सहोगी। यदि तुम दूसरों की बढ़ती को देखकर प्रसन्न होगी, उनके साथ अपनी सची प्रेममय भावना प्रकाशित करोगी, तो तुम्हारा हृदय विस्तीर्ण होगा। तुम्हें सुख प्राप्त होने लगेगा और संसार की भली शक्तियाँ तुम्हारी सहायता करने को एकत्र हो जावेंगी।

ईर्षा के समान तृष्णा भी बड़ी बुरी है। तृष्णा के कारण हम अपने पास की अधिक वस्तु में से भी किसी को दुःख में मदद नहीं कर सकते। पर्याप्त चीजें होने पर भी तृष्णा के कारण "और" "और" की पुकार मचाते हैं। भले-बुरे का ज्ञान नष्ट हो जाता है। किसी बात की तृष्णा हो, वह भयंकर ही रहा करती है। इसीलिए तो कबीरदास जी ने कहा है—

फकिरा तृष्णा पापिनी, तासों प्रीति न जोरि।
पैड़-पड़ पाछे परे, लागै मोटी खोरि ॥

क्रोध दर्शाना तो आजकल की प्रायः सभी स्त्रियों का एक स्वभाव-सा हो रहा है। किसी ने कोई बात कही, बस उनके नेत्र लाल हुए। बालक ने दूध गिरा दिया, बस उन्हें क्रोध आ गया। बेटी ने दाल में जरा नमक ज्यादा डाल दिया, उन्होंने एक तमाचा लगाया। इस प्रकार क्रोध तो नाक पर बठा रहता है। बालकों को जरा-जरा से अपराध पर वे दंड देती हैं। अपराध के लिए दंड देना इतना भयंकर नहीं है, जितना कि क्रोधित हो जाने पर उनका ज्ञान नष्ट हो जाता है। लेखक ने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि कई बालकों को माताओं ने रुद्र रूप धारण कर छोटे-छोटे अपराधों पर इतना पीटा कि बच्चे बेहोश हो गये, उनके मुँह से खून निकलने लगा। स्वयं माताओं को भी क्रोध शान्त हो जाने पर अपनी करनी का बड़ा पश्चात्ताप होता है। परन्तु, क्या करें, वे अपनी वासना की गुलाम ही तो ठहरीं। बहनो, तुम्हें चाहिए कि तुम क्रोध को अपने से दूर रखने की कोशिश किया करो।

स्वामी के प्रति

"एक धर्म एक व्रत नेमा,
काय, वचन, मन, पति-पद प्रेमा।"
—गोस्वामी तुलसीदास।

"सतीत्व के समान रत्न और सती के समान दूसरी देवी नहीं है।"
—हिन्दू धर्म-शास्त्र।

बहनो, किसी एक के आदर्श प्रेम-बन्धन में बँध कर क्या कभी भी छूटने की इच्छा होती है ? प्रेमी के हाथ का जहर से भरा हुआ प्याला भी हँसते-हँसते पी लेने में मजा आता है। आत्मा के बलिदान के बदले में आत्मा का ही बलिदान किया जाता है। पुरुष, रमणी को जब विवाह-बन्धन में बाँध लेता है, तब रमणी अपना आत्म-समर्पण कर देती है। पुरुष भी अपने शरीर और आत्मा तक को सहर्ष अपनी प्रेमिका के लिए मट्टी में मिला देता है। विवाह धार्मिक-बन्धन है। विवाह से दो प्राणी एक होते हैं। अतएव, पतिव्रत की आवश्यकता आ पड़ती है।

पतिव्रत का वर्तमान समय में बड़ा ही संकुचित अर्थ निकाला जाता है। हमारी देवियाँ केवल पर-पुरुष संसर्ग से बचने में ही पतिव्रत समझती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पुरुष-संसर्ग से स्त्री के हृदय की विचार-धारा विचलित हो जाता है। वह फिर अपने स्वामी को पवित्र प्रेम से स्नेह नहीं कर सकती। जब स्नेह ही नहीं रहता, तब छल और कपट अपना प्रभाव आ जमाते हैं।

और प्रति-दिन एक पातक के बाद अन्य दूसरे पाप-कर्म होते चले जाते हैं। वर्तमान साधारण स्त्री, बात-बात में पति से लड़ने लगती है, खरी-खोटी सुनाती है, सेवा करना तो दूर रहा, वह पति को ताना दिये बिना नहीं रहती कि "तुमने तो मुझे टहिहारी बना रक्खा है।" तमाशा देखने या पास-पड़ोस में गाना गाने को जाने के लिए वह पति की आज्ञा उलंघन करने से नहीं डरती। गंदे गीत गाने और गाली बकने में उसे लज्जा छू तक नहीं जाती। वह क्या-क्या करती होगी? यह तुम मुझसे ज्यादा जानती होगी। परन्तु इतने पर भी वह केवल एक बात न करने के कारण अपने को 'सती' उपाधि से विभूषित करने में शर्माती नहीं है। भला इससे बढ़कर अज्ञानता और क्या हो सकती है? भगवान् मनु कहते हैं:—

"पतिं या नाभिचरति, मनोवाग्देह संयता।
सा भर्तृ लोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥"

अर्थात् "जो स्त्री मन, वचन और शरीर को संयत रख कभी भी पति के विरुद्ध आचरण नहीं करती, वह इस लोक में पतिव्रता के नाम से विख्यात होती है और देह त्याग, ने पर स्वामी के साथ स्वर्ग-सुख भोगती है।"

वास्तव में आदर्श-सती वही है, जो सदा अपने स्वामी को प्रसन्न रखती है—उसकी उचित आज्ञा को मानती है—अनुचित आज्ञा का प्रेम से सविनय विरोध कर उसे समझाने की चेष्टा करती है, और चेष्टा से सफल न होने पर, सहर्ष अपना बलिदान कर देती है। उसके महान् बलिदान में स्वामी की आत्मा चैतन्य

हो जाती है। जो सेवा-मार्ग का अवलम्बन कर घर-गृहस्थी को सुचारु रूप से रखती है, समस्त जीवों के साथ जिसका प्रेम-मय व्यवहार रहता है, वह स्वयं ही अपने पति-प्रेम के सागर में डूबी रहती है। जिसके मुँह से हमेशा मधुर सत्य-वचन निकलते हैं, जो सत्य पर बलिदान होना जानती है, और किसी भी जीव को कष्ट देना दुष्कर्म समझती है, ऐसा स्त्री, स्त्री नहीं है—वह साक्षात देवी है; उसको देख मनुष्य—मात्र का सिर आदर से झुक जाता है।

"सुशीला स्त्री पति की परम-स्नेही मित्र रहती है। उसकी सचाई ईश्वरीय नियम की तरह अटल है; उसकी पवित्रता दैवी प्रकाश की भाँति निर्मल है। पति उपस्थित हो या न हो, उसे अपनी प्यारी स्त्री पर पूरा भरोसा रहता है, कि उसकी प्यारी चीजों को—खासकर उसकी सबसे प्यारी चीज स्वयं अपने को वह रक्षित रक्खेगी। वह अपने विश्वासी मंत्री के भरोसे बेफ़िक्र और निर्भय होकर काम पर जाता है। वह अपने शृंगार में फ़जूल खर्ची नहीं करती। सभी कामों में किफ़ायत से काम लेती है। पति को जिस चीज की जरूरत होती है उसे ही लाकर उपस्थित कर देती है। सदा उसका भला चाहती है। उसका रत्ती भर नुक्सान नहीं होने देती। कभी भी उसे शोकार्त्त नहीं होने देती। अगर पति को शोक होता है, तो वह उसे दूर करती है और अपना विश्वास बढ़ाती है।"* ऐसी ही देवियां अपनी गृहस्थी में सफल होती हैं, उन्हें देखकर सब सुखी होते हैं और स्वयं वे भी आनन्द-मय-जीवन व्यतीत करती हैं।

* विशप हौरेन।

फेंका करते हैं। जो स्त्री अपने पति को चाहती है, धार्मिक-बन्धन और प्रेम की रस्सी से बँधी रहती है, वह कभी भी दूसरे पुरुष का स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकती, क्योंकि, ऐसा करने से वह अपने मनकी पवित्रता को खो बैठती है। इसके अतिरिक्त, उसके पति को यदि यह ज्ञात हो जावे तो उसके हृदय में कष्ट, क्रोध और घृणा का संचार होगा; वह दुःखी हो जाता है; उसके इस कारण दुखी होने से स्त्री का सतीत्व नष्ट हो जाता है। भगवान् मनु का कथन है:—

"पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा
पतिलोकमभीप्सन्ति नाचरेत् किञ्चिदप्रियम्।"

अर्थात् "स्वर्ग-लोक पाने की इच्छा करने वाली अपने जीते या मरे हुए पति का कुछ भी अप्रिय कार्य न करे।"

स्त्रियाँ प्रायः पुरुष-जाति की आचार-भ्रष्टता को दोष दिया करती हैं। उनकी दृष्टि में उनके सतीत्व-हरण का सारा अपमान पुरुषों के सिर रहा करता है। यह भारी भूल है। मान लिया कि पुरुष काम-वासना के वशीभूत हो किसी रमणी का सतीत्व नष्ट करना चाहता है; परन्तु क्या वह रमणी हृदय से उस पुरुष के इस काम को घृणित समझती है? क्या उसके नेत्रों के कटाक्ष—उसके प्रेम-पूर्ण शब्दों ने या उसके रूप और गुण ने उसके हृदय को विचलित नहीं कर दिया? अथवा क्या वह स्वयं ही अपने पति से असन्तुष्ट हो, या उससे अपनी इन्द्रिय-तृप्ति न देख, उस पुरुष से अपना गुप्त सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहती है? यदि उसका हृदय दृढ़ चट्टान के सदृश्य है; केवल पतिही उसके नेत्रों का तारा और आशाओं का केन्द्र है, तो मैं दृढ़ता-पूर्वक कहता हूँ कि ऐसी

स्त्री को संसार का कोई भी अत्याचारी पुरुष जीवित अवस्था में लूट नहीं सकता।

बहनो, महारानी सीता की कहानी तुमने पढ़ी होगी। दुराचारी रावण ने सीता को कष्ट देने में क्या कोई कसर रक्खी होगी ? अपनी वासना की तृप्ति के लिए क्या उसने कुछ कम प्रलोभन दिखाये होंगे ? परन्तु सीता-राम की युगल-जोड़ी थी, वह कैसे टूट सकती थी ? सीता रावण से सताई जाने पर भी दृढ़ता-पूर्वक कहती हैं:—

"कभी राहु से नहीं रोहिणी मिल सकती है।
विना कुमुद के नहीं कुमुदिनी खिल सकती है॥
सदा प्रणव के साथ ऋचा शोभा पाती है।
चपला घन से हान नहीं देखी जाती है॥
भूप नहीं, भूपेन्द्र तू, तो भी राक्षस-राज है।
क्रूर दूर हो कुछ नहीं, तुझसे मेरा काज है॥१॥
सत्यवान के साथ रही जैसे सावित्री।
द्विज-मुख को ज्यों गेह बनाती है गायत्री॥
सदा प्रभाकर साथ प्रभा जैसे रहती है।
यथा शम्भु के संग, प्रेम में मग्न सती है॥
वैसे ही सम्बन्ध है, मेरा भी रघुराज से।
मुझे नहीं कुछ काज है नीच निशाचर-राज से॥२॥
निर्गन्धा हो भूमि, धूम से हीन अनल हो।
स्पर्श रहित हो वही रूप से सहित अनिल हो॥

रावण ये हो जाय, सभी अघटित घटनायें।
पर मन डिगता नहीं सती का लोभ दिखाये॥
राज्य, रत्न, धन साथ में आते जाते हैं नहीं।
धर्म-हीन त्रैलोक्य में जन सुख पाते हैं नहीं॥३॥
चल यौवन ही नहीं किन्तु जीवन भी चल है।
जिसको है यह ज्ञान उसीका जन्म सफल है॥
इसीलिए लंकेश, पतिव्रत मैं पालूँगी।
तेरे मुख पर राख अयश की मैं डालूँगी॥
टालूँगी जीते नहीं निगमागम आदेश को।
देशवेशप्रतिकूल जो, धिक, कृति उस सुख लेशको॥४॥
धन्य धर्म के लिये निछावर जो होती हैं।
कीर्ति बीज का विपुल विश्व में वे बोती हैं॥
क्षणिक काम सुखके लिये धर्म न छोड़ूँगी कभी।
कुल मर्यादा से नहीं मैं मुख मोड़ूँगी कभी* ॥५॥"

इस सबका अन्त क्या हुआ? रावण को उसके कृत्य का फल मिल गया, परन्तु सती का गौरव अमर रहा। इसी तरह की कठिनाइयाँ, सैकड़ों सतियों पर आया करती हैं। राजपूत-रमणियों के सौन्दर्य पर मोहित हो, कामी मुसलमानों ने क्या कम अत्यापार किये थे? सेनाओं को लेकर राज्य को ध्वंस कर दिया था, उनके पतियों और पुत्रों को मार डाला था, उन्हें बेगम बनाने का प्रलोभन दिया था। भय, लोभ, जाल इन सबका उप-

* रामचरित-चिन्तामणि से।

योग किया गया; परन्तु, उन देवियों ने चिता तैयार कर अपने शरीर को जीते जी अग्नि में डाल दिया। उनका नश्वर शरीर राख हो गया; पंचतत्त्वों में मिल गया। यदि कुछ नष्ट नहीं हुआ है, तो वह केवल उनका निर्मल यश। इसी लिए तो कहते हैं:—

"खाक होकर आबरू जैसे 'फ़लक' जाती नहीं,
फूल की मिट्टी में भी मिलकर महक जाती नहीं।
जान जायेगी मगर जौहर न जायेगा कभी,
तोड़ भी डालो तो हीरे की चमक जाती नहीं।"

'सतीत्व' केवल शब्द नहीं है। इस शब्द में स्त्री-प्रकृति की दृढ़ इच्छा-शक्ति छिपी हुई है। यह दृढ़ इच्छा-शक्ति अपनी भावनाओं के द्वारा विश्व-भर में लहरें भेजती है। विश्व के अमृत-मय भण्डार से साँस के द्वारा उसके शरीर में उसकी इच्छा-शक्ति की मदद करने वाली संजीवनी ज्योति का प्रवेश होता है। इससे उसके चेहरे की आभा बदल जाती है, उससे एक प्रकार का प्रकाश निकलने लगता है, जो कामियों के हृदय को दहला देता है; उसके शरीर में अद्भुत शक्ति का संचार होने लगता है, जिसका वह अपनी रक्षा के लिए उपयोग करती है; उसकी बुद्धि के मायामय मार्ग में विचरण करने लगती है, जिसकी मदद से वह कामी को धोखा दिया करती है। यदि उसकी शक्ति, उसका बल, उसका छल, ये तीनों ही व्यर्थ जाते हैं, तब भी असहाय होकर वह अपना शरीर अर्पण नहीं कर देती। वह अपनी प्यारी सखी मृत्यु के द्वारा अपनी आत्मा को देह से जुदा कर देती है। आत्मा जाकर पति की आत्मा के पास पहुँचती है, केवल मिट्टी का निर्जीव शरीर भूमि पर पड़ा रह जाता है। सच है कि

"नागिन को खिलाना सरल है; केसरी के अंग पर पद-प्रहार करना सम्भव है, हिमालय के सर्वोच्च शिखर से कूद कर बच जाना असम्भव व्यापार नहीं है, पर सती के अग्निमय सौन्दर्य को विलास की सामग्री बनाने की चेष्टा करना, मानों, साक्षात् मृत्यु से, सजीव पाशुपत अस्त्र से, मूर्तिमान सुदर्शन चक्र से, विकराल चण्डी की सर्व-संहार-कारिणि खड्ग से परिहास करना है।"

इस संसार में सुख प्राप्त करने के लिए स्त्री को निर्जीव देवी-देवताओं को पूजने की आवश्यकता नहीं। धन-तन देकर किसी साधु-महात्मा को प्रसन्न करने की जरूरत नहीं। जिसकी साँस के साथ साँस चलती है, जो उसके दुःख में उसकी सेवा करता और सुख में उसकी प्रसन्नता को बढ़ाता रहता है, जो डर के समय अपने विशाल वक्ष-स्थल से उसे लगा कर धीरज बँधाता है, जो उसके प्रेम के चिन्ह को भी मरण के बाद संसार में छोड़ जाता है, जो उसकी उचित इच्छाओं की पूर्ति के लिए कोई बात उठा नहीं रखता—ऐसे हृदयवान, कार्यवान और कीर्त्तिवान् स्वामी को छोड़ स्त्री पूजा की थाली लिये क्यों मन्दिरों की दीवारों से टक्कर लगाती फिरती है?—समझ में नहीं आता। यदि देवी-पूजा ही तुम्हारा प्रेम है, तो मैं तुम्हें हटाना नहीं करना चाहता। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि पहले तुम अपनी सेवा से अपने घर के देवता को सुखी और प्रसन्न कर लो, फिर अन्य देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। हमारे धर्म-ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा है:—

"नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥"

अर्थात् "स्त्रियों को न अलग यज्ञ है, न व्रत है, और न उपवास। पति की जो सेवा करती है, उसी से वह स्वर्ग लोक में पूजित होती है।"

इसी तरह हमारे शास्त्र और भी लिखते हैं—

"देवपूजा व्रतं दानं तपश्चात् शनं जपः।
स्नानं च सर्व तीर्थेषु दीक्षा सर्व मखेषु च॥
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणा तिथि सेवनम्।
सर्वाणि पति सेवायाः कलाना हेन्तिषोड्षीम॥"

अर्थात् "देव-पूजन, व्रत, दान, जप-तप, उपवास, तीर्थ-यज्ञ करना, पृथ्वी भर की परिक्रमा करना तथा ब्राह्मण और अतिथि की सेवा करना ये सब कार्य पति-सेवा के रुपये में एक आने के तुल्य भी नहीं हैं।"

पतिव्रता स्त्री दुःख में धीरता से, सुख में शान्ति से, और शोक में सान्त्वना से पति की सेवा में लीन रहती है। वह पति-सेवा करने के लिए अपने समस्त सुखों को तिलांजलि दे देती है। उसका पति कष्ट भोगे और वह ऐश-आराम से रहे, स्वामी गली-गली मारा-मारा फिरे और वह माता-पिता या सास-ससुर के गृह में आनन्द से रहे, ऐसा कभी देखा नहीं जाता। वर्तमान काल की बनी हुई सतियों की अवस्था बड़ी ही भिन्न रहा करती है। वे पति के ऊपर विपत्ति आ जाने पर झट माता-पिता के घर भाग जाती हैं। कष्ट वे सह नहीं सकतीं। यदि उनका पति उन्हें सुख-पूर्वक धन-धान्य से पूर्ण रख सकता है, तब तक तो वे पूर्ण सती रहती हैं, परन्तु विपत्ति के बादल घिरते ही दूर जाकर तमाशा देखा करती हैं। उन्हें केवल

अपने खाने-पीने ओढ़ने-बिछौने की ही चिन्ता अधिक रहा करती है। आज कितनी स्त्रियाँ है, जो महा सती सीता के समान पति के अनेक समझाने पर भी कहें ?—

"जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते,
पिय बिन तियहिं तरनि तें ताते।
तन धन धाम धरनि पुर राजू,
पति विहीन सब शोक समाजू॥
जिय बिन देह, नदी बिन वारी,
तैसेहि नाथ पुरुष बिन नारी।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे,
शरद विमल विधु वदन निहारे॥
खग मृग परिजन नगर वन, वलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, पर्णशाल सुख मूल॥
वन दुःख नाथ कहे बहुतेरे,
भय विषाद परिताप घनेरे।
प्रभु वियोग लवलेश समाना,
सब मिल होहिं न कृपा निधाना॥
मोहिं मग चलत न होइहिं हारी,
छिन-छिन चरण सरोज निहारी।
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं,
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

पायँ पखारि बैठ तरु छाहीं,
करिहउँ बायु मुदित मन मोहीं।
श्रम-कण सहित श्यामं तनु देखे,
कहँ दुख समय प्राणपति पेखे।
सम महि तृण तरुपल्लव डासी,
पाय पलोटिहि सब निशि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही,
लागिहि ताति बयारि न मोही।
को प्रभुसंग मोहि चितवनिहारा,
सिंह बधुहि जिमि शशक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू,
तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू।
ऐसेउ वचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु विषय-वियोग दुख, सहिहैं पामर प्राण॥"

स्त्री के पतिव्रत के बाधक दो प्रधान शत्रु रहा करते हैं।
एक स्वयं की काम-वासना दूसरा पति का अकारण अत्याचार।
काम-वासना भयंकरता तब धारण करती है, जब कि पति
अयोग्य होता है। जब स्त्री देखती है कि उसका पति वृद्ध है,
रोगी है, और जो कुछ वह उसे दे सकता है, उससे उसकी तृप्ति
नहीं हो सकती; तब वह अन्य स्त्रियों को ऐश आराम में मग्न
देख पर-पुरुष संग करना चाहती है। यदि उसका पति कुरूप
और गुण-हीन है, तब उसका हृदय उसकी ओर से हट जाता है
और वह किसी की खोज में रहने लगती है। अथवा युवावस्था

में ही पति की मृत्यु हो जाने पर उसकी काम की नदी उसे पूर्ण ही रह जाती है, उसकी शान्ति नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त कुटुम्ब-सम्बन्धी अन्य प्रलोभन भी रहा करते हैं। इन्हें कारणों से वह भ्रष्टता का मार्ग गुप्त या प्रकट रूप से ग्रहण कर लेती है। ऐसी स्त्रियों से मेरा कहना केवल यही है कि काम-वासना तुम्हें कुछ समय तक भले ही अच्छी प्रतीत हो परन्तु उसका परिणाम जीवन-व्यापी होता है। संयोग के बाद मुख पर फीकापन और कालिमा छा जाती है, लाभ कुछ भी नहीं होता। याद रखना चाहिए कि वासना की अग्नि को जलने ही न देना चाहिए। यदि तुम कभी सोचो कि एक बार कर फिर कभी मैं ऐसा न करूँगी, तो यह तुम्हारी भ्रान्ति है। एक बार के बाद दुबारा तीव्र इच्छा होगी और होते-होते यही इच्छा आदत का रूप धारण कर लेगी मनुस्मृति में लिखा है—

"न जातु कामः न कामानामुप भोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।"

अर्थात्; "इच्छाओं को भोगने की इच्छा कभी शान्त नहीं होती, किन्तु घी डालने से जिस तरह आग और भी भड़क उठती है, उसी तरह इच्छा और भी बढ़ती जाती है।"

वासना की आँधी से बचने का एक ही सुगम मार्ग है, अपने मन को हमेशा किसी दूसरे काम में लगाये रहना। वासना-युक्त प्रेम का अभिनय देखने, या इस प्रकार अश्लील बातों के सुनने या ऐसी बातचीत में सम्मलित होने से वासना भड़क उठती है। जब तुम्हें काम-वासना सताये तब किसी अच्छे लेखक की पुस्तक को पढ़ने लगो, व्यायाम करने लगो, या ...

की सेवा में लग जाओ। समाज-सेवा करना, दीन अनाथों को भोजन कराना, रोगी और अपाहिजों की सेवा करना—ये सब काम उपयोगी हैं; जिनमें तुम अपनी विचलित शक्तियों को लगा कर, वासना की ज्वाला से मुक्ति पाकर, अपने सतीत्व को रक्षित कर अपना और अपने पति, दोनों का उपकार कर सकती हो।

अकारण पति के अत्याचारों से भी कई साध्वी स्त्रियाँ अनेक कष्ट पाती हैं। वे सब कुछ अर्पण कर देने पर भी पति-प्रेम नहीं प्राप्त कर पातीं। तब या तो आत्म-हत्या करने के लिए उतारू हो जाती हैं, या 'अन्य' मार्ग की शरण लेती हैं। ऐसी सुशीला देवियों की आहों को देख कर कलेजा काँप उठता है। सहिष्णुता की सीमा को कभी-कभी वे बेचारी लाँघ जाती हैं। मैंने स्वयं अपनी आँखों से पति की प्राण-पन से सेवा करके भी पति के अकारण अन्याय से न बचनेवाली रमणी को जहर खाकर मरते देखा है। स्त्री कहा करती थी, "मुझे गहने नहीं चाहिए, मैं काम-वासना की तृप्ति भी नहीं चाहती। मुझे पति के दूसरी स्त्री प्रेम से भी ईर्षा नहीं है। मैं रात-दिन पति-सेवा को तत्पर हूँ। इस सब के बदले में मैं केवल थोड़ा-सा भोजन और शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ। परन्तु मेरे स्वामी बिना किसी कारण के बात-बात में रुष्ट हो जाते हैं। यदि मैं धीरे बोलती हूँ, तो यह कह कर वे मुझे पीटते हैं कि तू मुँह में ही बात करती है। यदि मैं साधारण आवाज से बात करती हूँ, तो लाल-लाल आँखें निकाल कर कहते हैं कि धीरे नहीं बोलते बनता—कान फाड़े डालती है।" इत्यादि प्रकार की

उसने अनेकों बातें बतलाईं। मैं कोई मार्ग न दिखा सका केवल सान्त्वना और धीरता-पूर्वक कठिनाइयों को दूर करने का उसे आदेश दिया। परन्तु बेचारी अनेकों शारीरिक कष्ट और चोटें सहते हुए कुण्ठित हो गई थी। केवल जहर ने ही उसकी आत्मा को शान्ति दी। आज भी मेरी आँखों के सामने उसकी मृत्यु-शय्या दृष्टि-गोचर होती है।

बहनो, सतीत्व-रक्षा तुम्हारा धर्म है। इसी के कारण भारत आज अपना सिर ऊँचा किये हुए है। संसार के इतिहास में निष्काम कर्म पर बलिदान होनेवाली ऐसी स्त्रियों को केवल एक देश ने उत्पन्न किया है—और, वह है भारतवर्ष।

जीवन-सुविधा

बहनो! तुम्हारे जीवन का कठिन भाग व्यतीत हो चुका। बाल्यकाल की तुम्हें कभी-कभी याद आती होगी, जब तुम एक छोटी-सी बात को पूछने के लिए भी बड़ी उत्सुकता से माता-पिता की ओर दौड़ती थीं। सड़क पर हाथी को चलते देख तुम अपनी माँ से भी देखने का बार-बार अनुरोध करती थीं। वर्ण-माला के अक्षरों को बनाने में कठिनता देख, पट्टी एक ओर फेंक कर रोने लगती थीं, माता का प्रेम-मय व्यवहार भी तुम्हें याद आता होगा। कितने प्रेम से माता ने तुम्हें ससुराल जाते देख, अनेकों वस्तुयें तुम्हारे सन्दूक में भर दी थीं।

युवा जीवन भी कैसी भयंकर आंधी थी। अपने कोमल हृदय के कारण तुम क्या-क्या कर डालती थीं! काम बिगड़ जाने पर कितना पश्चात्ताप होता था! मातृ-जीवन की कष्टमय रात्रियों की भी कभी-कभी याद आती होगी। तुम कितनी शीघ्रता से प्रत्येक काम करती थीं! हर एक काम के करने का तुम्हें दृढ़ विश्वास रहता था। परन्तु अब तुम्हारी शीघ्रता विदा हो गई, किसी काम के करने में अब उतनी उत्सुकता नहीं मालूम होती। उस समय तुम ज़रा-ज़रा सी बात में अधीर हो उठती थीं। कार्यों को असफल होते देख तुम्हारे हृदय में चिन्ता उत्पन्न हो जाती थी। परन्तु अब तुम्हारे हृदय में धैर्य का आवास हो गया, किसी काम का बनना बिगड़ना अब तुम्हें विचलित नहीं करता। अनेकों बार असफलता का सामना करके

तुमने सीख लिया है कि सफलता से भी कहीं अच्छी असफलता रहा करती है, क्योंकि फिर प्राणी दुगुनी शक्ति खर्च करके काम शुरू करता है। तुम्हें मालूम हो गया कि किसी-न-किसी समय सफलता प्राप्त ही होगी। अधीर होने से कोई लाभ नहीं होता। किसी कार्य के फल की ओर अब तुम्हारी दृष्टि नहीं रहती, तुम यदि कुछ देखती हो तो केवल यही कि क्या मेरा काम नीति और सदाचार के अनुकूल है ? क्या मैं कर्त्तव्य के विमुख तो नहीं जा रही हूँ ? जीवन के व्यतीत वर्षों ने तुम्हें शान्ति का मधुर पाठ अब अच्छी तरह से पढ़ा दिया है।

तुम्हारे जीवन की अनेकों भावनायें पूर्ण हो गईं। देखो तुम्हारे चारों ओर ये सुन्दर हृष्ट-पुष्ट बालक खड़े हुए हैं। कैसा सुन्दर चेहरा है। अहा, वह बालिका कितनी लज्जाशील है ! तुम्हारा छोटा बच्चा, देखो, दरी पर लोट रहा है। क्या स्वर्ग-भवन तुम्हारे गृह से सुन्दर हो सकता है ? द्रव्य की तुम्हारे यहाँ कमी नहीं है। सम्पत्ति-विषयक नियमों को पालन कर तुमने "विचित्र कुंजी" से लाभ उठाया है। अब अपने ढलते हुए जीवन को बड़े ही आनन्द से व्यतीत कर सकती हो।

तुम्हारा स्वास्थ्य भी कितना अच्छा है ! तुम्हारे चेहरे पर अभी सिकुड़न नहीं आने पाई है। तुम्हारे दाँत भी कितने सुन्दर और मजबूत बने हुए हैं। सुई में भी तुम डोरा बड़ी ही जल्दी डाल सकती हो। तुम्हारे कान शब्द सुनने के पहले जैसे ही उत्सुक हैं। तुम्हारी समस्त इन्द्रियाँ अपना-अपना काम बड़े सहयोग के साथ करती हैं। करें भी क्यों नहीं "परमात्मा के मन्दिर की देख—रेख" उचित रीति से करने का फल तो ऐसा ही होना

चाहिए। जब तुम प्रकृति के अनुकूल चलीं, मन्दिर की किसी ईंट के निकलते ही तुमने उसकी अच्छी तरह मरम्मत कर ली थी, फिर भला तुम्हारा मन्दिर सर्वांग सुन्दर क्यों न बना रहेगा ?

तुम्हारे बाल चाँदी के रंग को प्राप्त करने लगे, परन्तु फिर भी वे अपने क्षेत्र में वीरों की तरह डटे हुए हैं; क्योंकि, तुमने उनकी सफाई पर पूर्ण ध्यान दिया है। देना उचित भी था। अब इन बालों की सफेदी के साथ-साथ जवानी की चपलता नहीं रही। सब लोग तुम्हें "अनुभवी" कहने लगे। देखो, उस दिन रामू की माँ तुम्हारे पास दौड़ी आई थी, क्योंकि उसका प्यारा बेटा रामू बीमार हो गया था। बुद्धू भी तो कल ही तुम्हारी सहायता का भिखारी होकर आया था। क्या करे, बेचारे की पत्नी गर्भ-पीड़ा की वेदना के मारे चिल्ला रही थी। आज सवेरे मोहन की बहन चिल्ला कर रो रही थी, तुम्हारे सांत्वनायुक्त वचनों ने उसके शोक-युक्त हृदय के तूफान को तुरन्त दूर कर दिया। तुम्हारे पास-पड़ोसी वाले आज तुम्हें बड़े ही आदर से देखते हैं, थोड़ी कठिनाई आ पड़ने पर तुम्हारे मुँह की ओर देखते हैं। तुम भी बड़ी चतुरता से अपने ४० वर्ष के अनुभव से उनके दुःखों को दूर करती हो।

गाँव के लोग तुम से बड़ी-बड़ी आशायें करते हैं दीन-अनाथ बालक "माँ, माँ" कह कर तुम्हारे पास दौड़े आते हैं। तुम प्रेम से उनको भोजन देती हो। भला तुम्हारी उदारता और सहृदयता के कारण कौन तुम्हें न चाहेगा ?

हाँ, कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं, जो तुमसे चिढ़ते हैं। उनकी चालें तुम्हारे कारण चल नहीं पातीं। तुम युवतियों और बालकों

को इन दुराचारियों के जाल में फंसने नहीं देतीं । शीघ्र ही इनको समझा देती हो और नगर के प्रबन्ध कर्ताओं से रिपोर्ट कर दुराचारियों को दण्ड दिलाती हो । यही कारण है कि उनका भयंकर व्यापार चल नहीं पाता और इसीलिए वे तुम से असंतुष्ट रहा करते हैं ।

अब तुम उनकी इस असंतुष्टता से नहीं डरतीं । स्वतंत्रतापूर्वक यहां-वहां विचरण करती हो । वे कामी हैं, स्वार्थ-पूर्ण हैं । अब तुम्हारे सफेद बालों के आशिक तो हैं ही नहीं, फिर तुम्हारा ये क्या कर सकते हैं ? अब तो तुम्हारे अन्दर बलिदान की मात्रा भी अधिक जागृत हो गई । तुम्हें मरने का डर नहीं रहा । दूसरों का उपकार करते हुए संसार त्यागने की तुम्हारी इच्छा देख पापी हमेशा कांपते रहते हैं ।

संसार का अनुभव भी तुमने खूब प्राप्त कर लिया । सब प्रकार की भली-बुरी बातों से युद्ध करने के कारण तुम में एक विशेषता आ गई । कोई अब तुम्हें धोखा नहीं दे सकता । दुष्ट और दुराचारियों की चालबाजियां तुम्हारे सामने ही विफल होती है ।

अंगों को अलंकारों से सजा कर, अपने शरीर को सुन्दर वस्त्रों से ढकने की अब तुम्हारी इच्छा नहीं रही यह जवानी की उमंग थी, जिसके कारण तुम अपने सौंदर्य को और भी अधिक बढ़ा अपने पति को मोहना चाहती थीं । यह सब थोड़ा आवश्यक भी था, यद्यपि तुम्हारी यह "आन्तरिक भावना" की पूर्ति का एक साधन ही था । उसी के कारण तो आज तुम्हारे चरणों के पास सुन्दर संताने खड़ी हैं । अब तुम्हें रेशमी साड़ी

अच्छी नहीं लगती। ऐसी गाढ़ा से तुम्हे बड़ा आनन्द आता है। रेशम तुमने अपने बालकों के लिए छोड़ रक्खा है। जेवर भी अब तुम्हारे किसी आन्तरिक उद्देश्य का साधक नहीं है। ये ही कारण है कि तुमने एक-के-बाद एक को उतार कर सन्दूक में बन्द करके रख दिया है। सत्य बात तो यह है कि तुम अपनी साधारण अलंकार-हीन अवस्था में बड़ी ही सुन्दर देवी-सदृश दीखती हो।

कोई अल्प बुद्धि वाला भले ही सोचे कि तुमने समाज के अपमान-सूचक शब्दों से अलंकारों को त्याग दिया है; परन्तु मैं इस मत से सहमत नहीं। भला तुम ऐसा कैसे कर सकती हो? तुम्हारे अनुभव ने तो तुम्हें अच्छी तरह सिखा दिया है कि दूसरों की राय पर चल कर जीवन व्यतीत करना कठिन है। सब को प्रसन्न करना बड़ा कठिन रहता है। यही कारण है कि तुम किसी की चापलूसी नहीं करतीं। बिलकुल स्पष्ट व्यवहार रखती हो। फिर भला तुम समाज से क्यों डरने लगी? कर्त्तव्य-परायण प्राणी भी कभी समाज का मुंह ताकते हैं? समाज तो स्वयं ही उनके चरण-चिन्हों का आसरा करता है।

धीरे-धीरे तुमने अनेकों अन्ध विश्वासों और डुकरिया-पुराण की बातों को, अनोखे रीति-रिवाजों को तोड़ डाला। उन सब का फल अच्छा ही हुआ। तुम अनेकों कष्टों से बची रहीं। हां, समाज असन्तुष्ट हो गया था; परन्तु तुम्हरी बढ़ती और योग्यता को देख उसे तुम्हारी श्रेष्ठता स्वीकार करनी ही पड़ी। पति-सेवा का पाठ तुम अपने उदाहरण के द्वारा अपनी छोटी बहनों और कन्याओं को पढ़ा रही हो।

तुम्हारे स्वामी अब भी तुम्हें बहुत चाहते हैं। चाहें क्यों नहीं ? उनके सब काल में, भले और बुरे दिनों में, प्रेम-मय मित्र की तरह उनकी सेवा की। किसी समय पति को निराश नहीं होने दिया। मनुष्य तो अपने एक नमक-हलाल कुत्ते को मरण काल तक उसी दृष्टि से प्यार करता है, फिर तुम तो उस की अर्द्धाङ्गिनी, जीवन-संगिनी हो, तुम्हें क्यों न करेगा ? देखो उसके नाम को अमर करने के लिए तुमने कैसी-कैसी सुन्दर हृष्ट-पुष्ट सन्तानों को उत्पन्न किया है। जीवित स्मारक से बढ़ कर और क्या हो सकता है ये अच्छे स्मारक सैकड़ों मुर्दे-जीवनों में जान डालेंगे, यह सब तुम्हारे द्वारा दी हुई उत्तम शिक्षा का ही परिणाम कहलायगा। यही कारण है कि तुम्हारा प्यारा स्वामी सुबह होते ही कहा करता है—" प्रिये आओ, मेरे पास बैठ जाओ; क्योंकि प्रात: कालीन प्रकाश से ईश्वरीय ज्योति निकल रही है। प्रार्थना करने का समय है; पर तुम्हारे बिना मुझ से प्रार्थना नहीं होती। आओ, दोनों, मिल कर प्रार्थना करें। तुम ईश्वर से मेरा हाल कहना और मैं तुम्हारा कहूँगा।"*

देखो, अपने विशाल अनुभव का अच्छा ही उपयोग करना। बेचारे युवक-युवतियों की कठिनाइयों को अपने वृद्ध हृदय से न देखना, उनकी भूलों का न्याय करते समय अपनी जवानी की भी याद रखना। उसी जवानी के उमंगों से भरे हुए इन प्यारों को भी सावधानी से देखना। अपने व्यवहार से इन्हें संदिग्ध हृदय न होने देना, नहीं तो वे अपनी बातों को तुम्हारे सामने न

---

* पूलिन कमिंघम

रक्खेंगे; कपट का व्यवहार करने लगेंगे। इस तरह दुराचार बढ़ेगा और तुम भी स्वर्ग-सुख के बड़े भारी अंश को खो बैठोगी। सचमुच तुम्हारी आँखों में ईश्वर ने दीपक जला रक्खे हैं, ताकि भूले-भटके पुरुषों को उन चिरागों की रोशनी में स्वर्ग की राह दीख जावे।" † तुम्हारा हृदय अमृत सरोवर से कम नहीं है।

तुम अब भी चाहो तो कई दिनों तक अपनी शक्तियों का चैतन्य रख सकती हो। कठिन परिश्रम को त्याग दो, अपनी सन्तानों को पुत्र और पुत्रवधू को घर गृहस्थी का, काम सौंप दो। दोपहर को थोड़ा आराम किया करो। स्वास्थ्य के नियमों के पालन में भूल मत करो। मनुष्य जीवन नियमों के अनुकूल है। तुम्हारे जीवन ने तो तुम्हें यह बात अच्छी तरह बता दी। तुम जानो, तुम्हारा भला बुरा, तुम्हारे हाथ में है।

घर के बाहर

सीमा रहित अनन्त गगन सा
विस्तृत उसका प्रेम हुआ।
औरों का कल्याण कार्य ही
उसका अपना क्षेम हुआ॥

शकुन्तला से।

हम जाग उठी, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी
हां, विश्व-गगन में भारत को फिर एक बार चमका देंगी।

—'त्याग-भूमि से'

देखकर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं,
एक छोटे कीट से भी तोड़ता नाता नहीं॥
लोक-सेवा से सफल होकर सदा बढ़ता है वह,
धूल बन कर पांव की जन-सीस पर चढ़ता है वह॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय।

मनुष्य यश पाने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है, परन्तु दूसरों की भलाई के लिए दुख सहने के लिए उत्पन्न हुआ है। वह उन महान् वृक्षों के समान है जो हमारे गावों के चारों ओर मनुष्य की सेवा के लिए अपना रस बहाया करते हैं।

—इमरसन।

सुख की अभिलाषिनी बहनो, क्या तुम्हें पूर्ण सुख प्राप्त हो गया ? तुम कहोगी हां मुझे अब कुछ न चाहिए केवल शान्ति से मृत्यु की बाट जोह रही हूं। मेरे पास धन-धान्य है। मेरे चारों और सुन्दर सन्तानें हैं। प्राण प्यारे पतिदेव हैं! बस स्त्री के लिए कुछ नहीं चाहिए। वास्तव में सांसारिक दृष्टि से तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति हो चुकी, परन्तु अब भी बहुत कुछ बाकी रह गया है। ईश्वर के महान आदेश का बड़ा भारी भाग अभी अपूर्ण हीं पड़ा है। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में लिखा है कि वृद्ध अवस्था के आगमन के समय पति-पत्नी को संसार छोड़ सन्यास धारण कर लेना चाहिये। इन शब्दों का चाहे जो अर्थ निकाला जावे। मेरे स्वतंत्र विचार एक नवीन मार्ग का अवलम्बन करते हैं।

हरि-भजन भले ही अच्छा हो। एकान्त में बैठ माला सट-काने क ही वर्तमान जगत हरि-भजन कहता है। जंगल में जा राम-नाम जपने का ही नाम तप कहलाता है। क्या उत्तरतो अवस्था में तुम्हें तप करने की आवश्यकता हैं ? हां अवश्य ही तुमने अपने जीवन के अधिक वर्ष स्वार्थ-साधन में ही व्यतीत कर दिये। अब कम से कम अन्तिम दिवस ही 'तप' करन में व्यतीत करदो।

देखो; तुम्हें गृह-कार्य से चिन्ता-मुक्ति मिल चुकी। तुम्हारी पुत्र-वधू तुम्हारे भोजन और आराम का प्रबन्ध करती है। तुम्हारा प्यारा पुत्र घर-गृहस्थी का समस्त भार सम्हाले हुए है। तुम्हारी प्रणाली के कारण सब काम बड़ी ही उत्तम रीति से होते चले जाते हैं। फिर भी कभी-कभी हृदय में इच्छा उठती होगी कि अब मैं क्या करूं ? क्या राम-नाम जपूं ?

इस राम-नाम के जपने से क्या लाभ होगा ? एक ओर देखो तुम्हारी बहने दुःखों से कराह रही हैं; व्यभिचार और बुरे मार्ग पर बढ़ रही हैं वहां देखो सैकड़ों विधवायें अपनी आहों की ज्वाला से संसार को जला रही हैं। क्या तुम्हारे अगणित अनाथ बालक बिना वस्त्र, बिना भोजन और बिना शिक्षा के मारे-मारे नहीं फिर रहे हैं ? क्या बीमारियों और अकाल के कारण मरते हुए कंगालों पर तुम्हारी दृष्टि नहीं जाती ? ईश्वर क्या तुम्हारे राम-नाम से प्रसन्न होगा ? त्यागो, आराम को कुछ काम करके दिखाओ। परमेश्वर 'रटने' से नहीं मिलता। उसको पाने का सच्चा मार्ग कर्म-मय रहा करता है बाइबिल में लिखा है कि जो अपने बन्धु से जिसे वह अपने सम्मुख देखता है प्रेम नहीं करता, वह परमात्मा से जो अदृष्ट है, प्रेम नहीं कर सकता।"

हमारे देश में मिथ्या अभिमान बड़ी ही बुरी तरह से फैला हुआ है। नक़ली धर्म ने ऐसा रंग पलटा है कि उसके विरुद्ध आवाज उठाते ही लोग गला घोंटने को दौड़ते हैं। सेठ दयाराम रोज गरीबों को गाली देते हैं, एक रुपये पर चार आना व्याज लेते हैं फिर व्याज पर व्याज लगाते हैं। यदि रुपया वक्त पर नहीं मिला तो मकान कुर्क करा लेते हैं। गरीब ने यदि आकर विनय की तो हजार गालियां सुनाते हैं परन्तु ये बड़े धर्मात्मा कहलाते हैं क्योंकि रोज ये पैदल मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं और पुरोहित के मुंह से राम-गुण गायन सुनते हैं और माला फेरते हैं। बड़ा ही विचित्र ज़माना है। बहनों, तुम संसार को देख रही हो बुद्धि रखती हो फिर भला सच्चे मार्ग को त्याग क्यों सम्भव स्वर्ग की इच्छा करती हो। संसार के दुःखी प्राणियों की सेवा ही

स्वर्ग की सब से प्रथम सीढ़ी है। "चल उठ यहां क्यों आंख मूंदे गौ-मुखी में हाथ डाले माला फेर रहा है यदि ईश्वर के दर्शन करना है तो जहां किसान जेठ की दोपहरी में हल जोत कर चोटी का पसीना पैरों तक बहा रहा है।"*

क्या आपने निर्मल झरने से निकलने वाली सुन्दर नदी के जीवन पर विचार किया है। बेचारी कितना ताप, सहती है। ठंड भी गजब की उसे झेलना पड़ती है। परन्तु तिस पर भी सदा एक ही भाव को हृदय में रखे वह अपनी जीवन-यात्रा व्यतीत करती है। संसार सेवा करना उसका धर्म है। उसके बदले में वह कुछ नहीं चाहती। किसी के अपमान का बदला अपमान से नहीं देती। भले और बुरे सभी उसके पास आते हैं वह सभी के हृदय को शान्त करती रहती है।

क्या आपने कभी किसी देशभक्त के जीवन पर विचार किया है? उसके पास क्या नहीं था? पुत्र थे, पति था, धन था, सब कुछ था परन्तु उसका देश पीड़ित और परतन्त्र था उसे अपनी भूल मालूम होगई, शीघ्र ही वह मैदान में आखड़ी हुई। आज वह अपने पीड़ित भाइयों की सेवा करती है। कल किसी गिरे को उठाती है, फिर कभी सैकड़ों नर-नारी वृन्द को स्वतन्त्रता के मन्त्र से जागृत कर देश-रक्षा के लिये आगे बढ़ाती है। उसे परतंत्रता कांटे सी खलती है। वह संसार-सेवा की वेदी पर मरना जानती है देश उसे भूल नहीं सकता, उसका नाम स्वर्ण के अक्षरों से संसार के इतिहास में लिखा जाता

---

* रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

है। संसार उसके नाम का स्मरण कर अपने को भाग्यवान समझता है और उसका मार्ग अनुसरण करता है।

अपने हृदय को वीर बनाओ गृहस्थ-जीवन को विदा कर दो। मनुष्य समाज को उन्नत और सुखी बनाने के लिए, कर्त्तव्य के पवित्र मार्ग पर हृदय में पूर्ण विश्वास और प्रेम रखते हुए, आगे आओ! अपना यह संदेश दुनिया को सुनाओ ?

"श्रम संजातशक्ति से सहसा मानस विमल बनाने दो।
प्रेम-वारि से प्रेम-विवश हो, विश्व-प्रेम दिखलाने दो॥
यत्र-तत्र सर्वत्र मही पर, हो स्वच्छन्द विचरने दो।
विश्व-प्रेम की ध्वजा विजयनी नभ-मण्डल में उड़ने दो॥

तुम कहोगी कि यह बड़ी लम्बी छलांग है यह हमारी शक्ति के बाहर है। यद्यपि मैं तुम्हारे इस वाक्य से कभी सहमत नहीं हो सकता। परन्तु फिर भी अब बाधाओं को देखते हुए सोचता हूँ कि तुम मुक्त हृदय से देश-प्रेम और विश्व-प्रेम के प्रचार के लिये आगे नहीं बढ़ सकतीं, तब भी तुम्हारे आस पास सैकड़ों उसी लक्ष्य को पूर्ण करने वाली बातें उपस्थित हैं। उन्हीं में जी-जान से जुट जाओ। सोचने का समय अब नहीं है, कहां तक सोचोगी। जो कार्य अच्छा है, जिसे संसार के महा पुरुष उपयोगी बतला चुके उस पर इस प्रकार सन्देह करने से क्या लाभ ? इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुम अपनी स्वतंत्र बुद्धि का गला घोंट दूसरों की बातों को मानने लगो। नहीं मेरे चाहिये कि कार्य करके देखो, फिर उसके भले और बुरे परिणाम की जांच करो। इस कार्य के जांच की सब से अच्छी

कसौटी यही है। भगवान बुद्ध और ईसा ने भी यही किया था। तुम्हारा मार्ग कष्ट-मय अवश्य होगा परन्तुः—

कर्म योगी प्रेमियों को कर्म ही की चाह है।
कष्ट हो लाखों, मगर इसकी न कुछ परवाह है॥

अच्छा देखो, क्या तुम्हारे कुटुम्ब के घेरे में या पुरा-पड़ोस में अपढ़ स्त्रियाँ नहीं हैं? अवश्य हैं, होंगी। तुम्हें चाहिये कि तुम उन्हें बड़े प्रेम से अपने घर बुलाया करो, उनकी उमर के अनुसार उन से व्यवहार किया करो। रामायण, कोई अच्छी पुस्तक या दैनिक पत्र रोज उन्हें पढ़ कर सुनाया करो। उन्हें अन्य रूढ़ियों के बारे में समझाया करो, शरीर विज्ञान, गर्भ-विज्ञान, बाल-विज्ञान आदि विषयों पर बातचीत करते समय उपयोगी बातें बतला दिया करो। वे स्त्रियां तुम्हें चाहने लगेंगी। फिर तुम उन्हें पढ़ने की उपयोगिता समझाना। पुस्तक अपने खर्च से खरीद कर उन्हें पढ़ाया करो, इस तरह से स्त्री-शिक्षा के प्रचार में तुम समाज की बड़ी सहायता कर सकती हो। संसार का अच्छा ज्ञान होने के कारण पाठशाला की अपेक्षा तुम्हें अधिक सफलता प्राप्त होगी।

इसी तरह गाँव के अनाथ छोटे-छोटे बालक बालिकाओं को पुस्तक, मिठाई, खिलौना आदि से उनके हृदय में पढ़ने लिखने की इच्छा जाग्रत कर घंटे-आध-घंटे रोज पढ़ाने से तुम उनके जीवन को सुधार सकोगी।

अपनी पढ़ी-लिखी बहनों को अपने गृह-पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़ने के लिए दिया करो और अपने कर्म और विचारों

द्वारा उनकी भी इस कार्य में सहायता माँगा करो। इस प्रकार काम करने से कुछ वर्षों के अन्दर तुम अपने पास चारों ओर शिक्षित समुदाय को इकट्ठा कर लोगी और वे भी धीरे-धीरे दूसरों को अच्छे रास्ते पर लावेंगी।

समाज को सुखी बनाने के लिए, शिक्षा की बड़ी भारी आवश्यकता है। आज संसार के सम्मुख ऊँचा सिर किये एशिया का एक छोटा सा राष्ट्र जापान हमें सिखला रहा है कि बिना शिक्षा देशोन्नति नहीं हो सकती। आज जापान की ९५ प्रतिशत जनता शिक्षित है। और यहाँ भारत-भूमि में इतनी ही प्रतिशत अशिक्षित है। यही कारण है कि राष्ट्रोद्धार के अनेक सिद्धांत असफल हो रहे हैं। हमें याद रखना चाहिये:—

जब तक अविद्या का अंधेरा, हम मिटावेंगी नहीं,
तब तक समुज्वल ज्ञान का आलोक पावेंगी नहीं।
तब तक भटकना व्यर्थ है सुख-सिद्धि के सन्धान में,
पाये बिना पथ पहुँच सकता कौन इष्ट स्थान में॥

अपनी पड़ोसिनों को तुम स्वच्छता का पाठ पढ़ा सकती हो, उनके घरों का स्वयं निरीक्षण कर उन्हें उचित सलाह दे सकती हो, बीमारी के समय में डाक्टर बुलवाकर बेचारियों की सहायता कर सकती हो। कई रोगिनियाँ अपना हाल वैद्यों और डाक्टरों से नहीं बतलावेंगी, ऐसों की विश्वासपात्र बन उनकी कठिनाइयों को जान उनको रास्ता दिखला सकती हो। उचित आहार-विहार सम्बन्धी बातों को समझा सकती हो। इन्द्रिय-ज्ञान पुत्र और पुत्रियों को सिखलाने के लिये तुम से बढ़ कर

गुरु और कौन मिलेगा परन्तु यह काम बड़ी ही सावधानी से करना होगा ।

अपने पुत्रों, सम्बन्धियों या सुयोग्य कार्य-कर्त्ताओं को तुम पत्रों द्वारा सलाह दे सकती हो। उनके अच्छे कार्यों की प्रशंसा कर सकती हो। तुम्हारे प्रशंसा तथा उत्साह पूर्ण पत्र को पा तुम्हारे मित्र या सम्बन्धी का पुत्र कितना फूला न समावेगा। छोटी-छोटी परिचित कन्यायें, तुम्हारे पत्रों को पा बड़ी प्रसन्न होंगी।

आजकल दूसरों की सहायता करने वाले और दान देनेवालों की कमी नहीं है परन्तु शोक है कि वे दान देते समय कुपात्र, सुपात्र का ध्यान नहीं रखते। मंदिरों में मूर्तियों के सामने पैसा चढ़ाना गंगाजी नर्मदाजी के जल में चांदी सोना फेंक देना, धूर्त पंडे-पुजारियों को दान देना, पुण्य-कार्य नहीं कहलाते। इस प्रकार के आचरण के कारण आज भारत का करोड़ों रुपया बरबाद हो रहा है और लगभग ६ लाख निठल्ले साधू मुफ्त का माल खा समाज में अत्याचार का प्रचार कर रहे हैं। गांजा, चरस की दम लगाते है और सतीत्व को नष्ट करते हैं।

दान देते समय देख लो कि क्या यह सुपात्र है ? क्या सचमुच में उसे द्रव्य की या अन्य किसी सहायता को आवश्यकता है ? इसका आचरण कैसा है ? क्या यह समाज के माथे का भार तो नहीं बनना चाहता ? विद्यार्थियों, विधवाओं, अनाथों, अन्धे और अपाहिजों को दान देना, भिखमंगों और साधुओं को दान देने की अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा है।

इस दान की प्रथा ने तीन रूप बदले हैं। समाज में सबसे पहले दूसरों की मदद करने की प्रकृति बहुत ही कम थी। सबको

अपनी ही सूझती थी। किसी की भलाई बुराई की ओर उनका ध्यान नहीं जाता था। उनका सिद्धान्त था कि "आप भले तो जग भला।" इसी बात को स्वार्थी जगत अब भी मानता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी यही झलक दिखाई है। आप लिखते हैं:—

सुर नर मुनि की ये ही रीति।
स्वारथ लाग करें सब प्रीती॥

बाद में दूसरों को दुखी देख और अपने पास उसकी सहायता की अधिक सामग्री देख दया का संचार हुआ और इस तरह दान देकर मदद करनेकी प्रथा चल पड़ी। दानियों ने दूसरों के दुख दूर करने के लिए अपने खजानों के दरवाजों को खोल दिया। बड़े-बड़े दानवीर अपनी सम्पत्ति दीनों को लुटाकर ग़रीब बन गये। दान में, धर्म और पुण्य समझा जाने लगा। यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई कि पात्र का ध्यान जाता रहा। केवल दान कर देना ही धर्म हो गया; दान पाने वाला दान का चाहे जो उपयोग करे। इस तरह से अत्याचार और अकर्मण्यता फैलने लगी और इसीसे बचने के लिये हमें दान देने के पहले पात्र का निर्णय कर लेना चाहिए।

वर्तमान समय में दान ने नवीन-रूप धारण किया। अब लोग दूसरों की सहाया इस ढंग से करने लगे कि जिससे दूसरे स्वयं अपनी सहायता करना सीख जायें। वे अपने दानियों का मुँह न ताकते रहें बल्कि थोड़ी मदद पा स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें। यही सहायता का सर्वोत्तम ढंग है। इसी विधि का पालन हमें करना चाहिए।

घर के बाहर और भी अन्य बड़े कार्य हैं जिन्हें तुम बड़ी ही योग्यता से कर सकती हो। मंदिरों में कई अवसरों पर स्त्रियां इकट्ठी होती हैं। उस समय पर अपने मधुर-भाषण से उनमें ज्ञान का संचार कर सकती हो। बुरे गीतों को गाने में रोक सकती हो। अनाथालयों में जाकर बच्चों को प्रेम से सद्-उपदेश दे सकती हो, विधवाश्रमों की संचालिका बन अनेकों विधवाओं का जीवन सुधार सकती हो।

इन कामों के अतिरिक्त प्रत्येक दिन के जीवन में अनेकों काम आजाते हैं परन्तु एक बात हमेशा याद रखना चाहिये कि तुम्हारे कार्यों की प्रणाली प्रेम-मय हो तभी सफलता मिल सकती है। बिना प्रेम-मय व्यवहार के दूसरों के जीवन ऊंचे नहीं बनाये जा सकते जो स्वयं ही स्वार्थ और कठोरता की कीचड़ में फँसी हुई हैं वह क्या दूसरों का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ा सकेगी ?

स्वर्ग की ओर

"स्वर्ग का राज्य तुम्हारे हृदय में है।"

"जो स्वर्ग नित्य शुद्ध और प्रेम से निरंतर पूर्ण है, 'जहाँ उत्तम ज्ञान का निवास है और जहाँ उसे संपूर्णतया समझने की शक्ति रखने वाली असीम बुद्धि हमें प्राप्त होती है, जहाँ हमारे प्रेम के संबंधी सर्वदा हमारा साथ देते हैं और हम उन्हें दुःख नहीं देते, जहाँ हमें जो महत्वपूर्ण कार्य करना है उसके सम्पादन के योग्य बुद्धि का बल हमें प्राप्त होता है जहाँ सब रहस्यों का प्रकाशन और सब मनोरथों की सिद्धि अपरम्पार होती है ऐसा स्वर्ग मेरे लिये ईश्वर ने बना रक्खा है।"

यहतो, "स्वर्ग की ओर" जाने की किसकी इच्छा नहीं होती। सारी पृथ्वी के प्राणी स्वर्ग के इच्छुक हैं। स्वर्ग में क्या है? भिन्न-भिन्न मज़हब वालों ने अपने-अपने स्वर्ग का चित्र नवीन ढंग से खींचा है। प्रत्येक मज़हब के स्वर्ग में उस मज़हब के नियमों को पालन करने वाले [illegible] जाते हैं [illegible] के शेष

आन्दोलन क्यों मचाया जाता है ? क्या पढ़े-लिखे लोग भी अपनी विचार-स्वतंत्रता को खो बैठे ? अपढ़ जनता भले ही मजहब को ही सब कुछ समझे, मजहब के लिए ही पड़ोसी का सिर फोड़ डाले, परन्तु इन पढ़े-लिखे, उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को क्या हो गया है ? उनका शरीर तो गुलाम अवश्य है, परन्तु क्या वे स्वतंत्र विचार करना भी भूल गये ?

स्वर्ग की इच्छुक बहनो ! तुम्हें दूर जाने की आवश्यकता नहीं है, बुद्धिवाद की शरण लो; मजहब सम्बन्धी प्रत्येक बात की जाँच-पड़ताल करो। क्या तुम्हारा मजहब संसार के समस्त प्राणियों से मातृ-भाव और सहानुभूति रखना सिखाता है ? क्या तुम्हारा मजहब दूसरों की स्वतंत्रता और रक्षा करना कर्त्तव्य समझता है ? क्या तुम्हारा म हब प्रेम-पूर्ण व्यवहार द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न आचार वाले मनुष्यों को सुखी करना सिखाता है ? क्या तुम्हारा मजहब सब जीवों को सामाजिक सुख की सीमा के अन्दर कर्म करने की स्वतंत्रता देता है ? क्या तुम्हारा मजहब सब प्राणियों को (चाहे वे अन्य मजहबों के मानने वाले हों) एक ईश्वर का पुत्र समझ सम न्याय का अधिकारी बनता है ? इत्यादि। यदि तुम्हारा मजहब इन सब बातों को करता है तो हम उसे मजहब नहीं कहते, उसे हम धर्म कहेंगे। धर्म और मजहब ये दो भिन्न-भिन्न अर्थ रखने वाले शब्द हैं। तथा केवल एक ही अभिप्राय का इनसे दिग्दर्शन कराना बड़ी भूल है।

संसार-ज्ञान प्राप्त करते ही स्वर्ग प्राप्त करने की अभिलाषा हमारे माता-पिता या अभि-भावक जाग्रत कर देते हैं। यदि वे

इस कार्य में श्रम भाग न भी लें तब भी हमारी पाठ्य पुस्तकों के किस्से कहानियाँ कम से कम हमारे हृदय में, "स्वर्ग क्या है ? किसे प्राप्त होता है ? वहाँ क्या है ?" आदि प्रश्न उत्पन्न कर देते हैं। भगवान् रामचन्द्र जी स्वर्ग लोक को पधारे, स्वर्ग में राजा इन्द्र निवास करते हैं, उनके आधीन ३३ करोड़ देवता हैं, वहाँ सब प्रकार का आनन्द है। इस प्रकार की बातें हमारी पाठ्य पुस्तकों में भरी पड़ी हैं। ये हमें स्वर्ग का इच्छुक बना देती हैं। हम मरने के बाद आनन्द प्राप्त करने के लिये, इस जीवन में प्रयत्न करना शुरू कर देते हैं और बुद्धि-स्वतन्त्रता का बलिदान कर मजहबी रास्ते को एक दम बिना सोचे पकड़ लेते हैं; क्योंकि हमारी पुस्तकें, हमारे गुरु हमारे माता-पिता, सभी तो यही रास्ता बतलाते हैं। सचमुच, इस रास्ते से चलने से किस-किस को स्वर्ग मिला है, यह तो आज तक किसी मनुष्य को ज्ञात नहीं हुआ।

अतएव मजहबी कीचड़ में फँस हम अपने नजदीक के स्वर्ग को लातों से ठुकरा देते हैं और स्वप्नमय स्वर्ग के पाने की इच्छा के लिये अपनी समस्त शक्तियों को नष्ट कर देते हैं। ऐसे कठिन समय में इस मजहबी दलदल से ऊपर उठ कर धर्म का महत्त्व करना बड़ा ही आवश्यक है। आओ, आज हम स्वर्ग की ओर ले जाने वाले 'धर्म' पर कुछ विचार करें। यद्यपि मजहब और धर्म की गुत्थियों को सुलझाना बड़ा ही कठिन काम है, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वतन्त्र विचार संसार की स्वीकृति, अस्वीकृति तथा विवेचना के लिए रखने का अधिकार है। इसी अधिकार का उपयोग यहाँ किया जाता है।

परिवर्तन-शील परिस्थितियों के चक्कर में पड़ कर, भला, किस वस्तु में उलट फेर नहीं हो जाते ? कभी-कभी तो इस प्रकार के उलट-फेरों के कारणों का पता लगाना कठिन हो जाता है। एक समय आता है जब समाज की दशा दुखदाई हो जाती है। मानव-दल भिन्न-भिन्न प्रकार के अत्याचार अपने बन्धुओं के हाथों से सहन करता है, तब इन अत्याचारों को दूर करने के लिए एक अद्वितीय ज्योति का संसार में आविर्भाव होता है। यह अद्वितीय व्यक्ति ईश्वर, महात्मा, पैगम्बर आदि नाम से बाद में पुकारा जाता है। उसके आदेश उस समय के मनुष्यों के विचारों की नींव पर बनाये जाते हैं। आगे चल कर यही एक नियमित सीमा-युक्त मजहब के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। बुद्ध भगवान का बतलाया हुआ मत बौद्ध मजहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ, ईसा का प्रदर्शित मार्ग ईसाई मजहब के नाम से हमारे सामने है और मुहम्मद का निर्णय किया हुआ मार्ग इस्लाम मजहब के नाम से विभूषित है।

हाँ, सन्देह यदि उपस्थित हो सकता है तो इस विषय में हो सकता है कि इन मजहबों में भिन्नता क्यों है ? प्रधान बात तो यह है कि यदि सब मजहबों की खोज की जावे, जैसा कि कई विद्वानों ने किया है, तो पता चलता है कि सब धर्मों के अन्दर कुछ बातें ऐसी हैं, जो एक दूसरे से मिलती हैं; तथा भिन्नता का होना उस समय के समाज, देश और काल के ऊपर निर्भर है।

कोई-कोई कहते हैं, कि, मजहब प्रकृति की शक्तियों के डर से उत्पन्न हुआ। कोई हमारे पूर्वजों की श्रद्धा और स्मृति के लिये ही उसे बनाया हुआ मानते हैं। इसी प्रकार के कई मत

हैं। मज़हबों में बतलाई हुई बातों का आदेश हमेशा मनुष्य के जीवन को सुखी बना कर अच्छे मार्ग पर लाता रहा है। इसीलिये उन्होंने स्वर्ग और नरक का निर्माण किया। सब का स्वर्ग ऊपर और नरक नीचे है। भला ऐसी बे सिर-पैर की बातें इस वैज्ञानिक युग में कौन मानने वाला है? वैज्ञानिक अपने आविष्कारों के द्वारा इनका खंडन कर रहे हैं तथा विश्वास की भारी और जमी हुई चट्टान के आविष्कारों की बारूद से टुकड़े-टुकड़े उड़ा रहे हैं। वे कहते हैं मनुष्यों, इस ओर देखो। मज़हब का कोई काम नहीं, हम उसका मृत-संस्कार कर रहे हैं। विज्ञान तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देगा।"।

मज़हब मनुष्य-समाज की भलाई के लिये बनाया गया था, परन्तु उसका प्रभाव दूसरों पर डालने के लिये उस समय की मानसिक उन्नति के अनुकूल ही उसमें दृढ़ता तथा आज्ञाओं का मिश्रण किया गया। धीरे-धीरे बाल्य-काल से ही इन आज्ञाओं का दिमाग़ पर असर पड़ जाने से फिर इनके मिथ्या या कोरी होने की किसी को शंका ही नहीं उठती। विश्वास के किले में दिमाग़ की दौड़ बन्द हो जाती है। यही बात मज़हब की बड़ी मज़बूत नींव बन जाती है। बस, जिस समय मज़हब विश्वास

ही फल देता है। वे किसी सत्य बात को ढूँढ निकालते हैं। यदि यह बात मजहब के विचारों के प्रतिकूल निकलती है तब तो मजहब के कर्णधार अपनी सत्ता पर चोट होते देख आग-बबूला हो जाते हैं। सत्ता को स्थाई रखना या उसे बढ़ाना प्रत्येक मनुष्य को अच्छा लगता है फिर यह सत्ता तो मनुष्य के स्वर्ग और नरक पहुँचाने के व्यापार की रहती है। फिर उन्हें बुरा क्यों न लगे? अतएव वे सच्चे प्रयत्नों द्वारा उपार्जित किये ज्ञान को दबाने का प्रयत्न करते हैं। अपने मजहब के आदेशों के नये-नये अर्थ निकाल, उनको अपने कार्यों का पक्षपाती बना कर, ज्ञान के प्रेमियों पर अत्याचार करते हैं। इस तरह से मजहब सीमा-बद्ध हो अत्याचार का कारण बन जाता है। समाज के दिमाग़ पर उसका आधिपत्य रहता ही है, बस धर्म के अन्ध-विश्वासियों का दल अपने लीडर को साथ ले, ज्ञान को मिट्टी में मिलाने का प्रयत्न करता है। इसी तरह शक्ति प्राप्त कर मजहब दूसरों के विचारों की स्वतन्त्रता को नष्ट कर देता है। अपना ही बतलाया मार्ग वह संसार भर के लिए श्रेष्ठ समझता है। दूसरी जाति और दूसरे मजहब की विचार-धारा किस उच्चता तक पहुँच गई है इस पर वह सोच नहीं सकता, क्योंकि उसकी रग-रग में अपने ही धर्म की बू समा जाती है। अतएव हम दृढ़ता-पूर्वक कहे बिना नहीं रह सकते कि मजहब सच्चे ज्ञान का भयंकर शत्रु है और इस शत्रुता के काल में वह मनुष्य जाति का काल हो जाता है। यही हालत इस समय मजहब की हमारे देश में हो रही है। इन बातों की सत्यता के सैकड़ों प्रमाण मजहबी इतिहास में भरे पड़े हैं।

कौन नहीं जानता कि ब्रूनो और गेलीलियो को 'सत्य-विषयक खोज' करने के कारण अनेकों कष्ट सहने पड़े थे ? कौन नहीं जानता कि इसी भारत में हिन्दुओं के रक्त की नदियां भिन्न मज़हबी होने के कारण बहाई गई ? कौन नहीं जानता कि बुद्ध और हिन्दू-मत के कारण समाज में बड़ी-बड़ी लड़ाईयां हुई ? कौन मेक्सिको के नरमेध-यज्ञ का स्मरण कर कांप न उठेगा, जहां एक देवता को प्रसन्न करने के लिए लगभग ५०,००० मनुष्य प्रतिवर्ष बलि कर दिये जाते थे ? मनुष्य ही क्यों यहां की प्रधान-देवी 'सेन्ट ओरयन्टल' के चरणों में सुन्दर बच्चों और स्त्रियों के कलेजे निकाल कर चढ़ाते थे फिर प्रसाद-भक्षण करते थे। क्या ईसाई लोग अब चिन्ह-स्वरूप इसी प्रकार का एक अन्य कृत्य नहीं करते ? रोटी का टुकड़ा और शराब को क्या वे ईसा का रक्त और खून नहीं मानते ? क्या मज़हब की वेदी पर हिन्दुस्थान में बच्चों और स्त्रियों का बलिदान नहीं होता ? दक्षिण हिन्दुस्थान की देवदासी-प्रथा क्या इस अत्याचार का चिन्ह नहीं है ? हाय ! इन्क्वीजीसन के समय में किये गये ईसाई मज़हब के अत्याचारों को तो लिखते ही नहीं बनता। एक दिन में, केवल उनके मत को न मानने वाले हज़ारों की संख्या में यंत्रों के द्वारा मारे जाते थे। हिन्दुओं द्वारा पीड़ित आज ६ करोड़ अछूत भाई किस लिये दुःख पा रहे हैं ? हिन्दू-मुसलमान गौ और बाजे का प्रश्न लेकर क्यों एक दूसरे का सिर फोड़ा करते हैं ? ये सब मज़हब की दर्दनाक घटनायें हैं। फिर भी क्या दिमाग़ और बुद्धि रखने वाली बहनो, तुम 'मज़हब' विषय पर सोचना उचित नहीं समझतीं ?

मजहब केवल ज्ञान और विचार-स्वतंत्रता का ही शत्रु नहीं है वह मनुष्यों में प्रभु-प्रेम का भेष धारण कर, गुप्त-रूप से विधर्मी मनुष्यों से घृणा करना, उनको सताना सिखलाता है। इस घृणा और अत्याचार के भय को दिखा कर वह उन मनुष्यों को अपने दल में मिला देने का ठेकेदार बनता है। यही कारण है कि हर एक मजहब ने अपना-अपना "मिशन" तैयार कर रक्खा है। क्या ये मिशन किसी व्यक्ति को समझा कर अपने धर्म में लाने का प्रयत्न करते हैं? नहीं, उनका गुप्त उद्देश्य स्वार्थ-मय रहा करता है। इस उद्देश्य की जड़ में राजनीति अथवा बदला लेने की प्रवृत्ति आदि रहती है।

मजहब-स्वार्थ की भयंकर जड़ है। वह मनुष्य का स्वर्ग जाने का रास्ता बतलाता है, परन्तु वह रास्ता अकर्मण्यता-पूर्ण रहता है। मजहब कहता है कि गंगा-स्नान करने से सब पाप दूर हो जाते हैं। एक विधवा का सतीत्व-नष्ट कर, उसे गर्भिणी बना, पापी भगवान का नाम ले मुक्ति पा जाता है। गणिका, अजामिल आदि अनेकों तर गये। यह मान भी लिया जावे तब तो मजहब का न्याय भी तारीफ के काबिल है। पापी तो तर गया परन्तु उस बेचारी अभागिनी-विधवा का क्या होगा? इसी तरह जिन सैकड़ों को पापी ने कष्ट पहुँचाया उनको उसके बदले में क्या मिलेगा? मजहब कान बन्द कर लेता है आँखें खोल कर उनकी ओर नहीं देखना चाहता। उन्हें दंड देता है। मजहब कहता है राम-नाम जपो, संस्कृत के मंत्रों का उच्चारण करो। मजहब कहता है, आठ-वक्त नमाज पढ़ो। गिरजे में जाकर भगवान की रोज प्रार्थना करो; तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। बस तुम मनुष्य-समाज से दूर रहो, उनसे

घृणा करो, दीन-दुखियों के उद्धार से मुँह मोड़ लो। और विधर्मियों को चिढ़ाने दो बस राम-नाम ही लेते रहो। दुनिया से क्या काम ? क्या तुमने नहीं पढ़ा कि स्वामी तुलसीदासजी राम को न जपने वाले को घृणा करने का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं:—

जाके प्रिय न राम वैदेही,
सो छांड़िय कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।

फिर आप राम को न जपने वाले को अभागा कहते हैं। क्योंकि:—

रसना सांपिन वदन बिल, जे न जपहिं हरि-नाम।
तुलसी प्रेम न राम सौं, ताहि विधाता बाम॥

मजहबी रोग इतना बढ़ गया कि कर्म का भी बहिष्कार कर डाला, क्योंकि:—

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू,
राम—नाम अवलम्बन एकू।

इत्यादि।

मजहब की दुष्टता का संक्षिप्त-वर्णन कर अब हम स्वर्ग के सच्चे-मार्ग धर्म पर दृष्टि डालते हैं।

बहनो, हमारा प्राचीन हिन्दू-धर्म कोई एक मजहब नहीं था, उसका मूल-सिद्धान्त सत्य की खोज था। सदाचार उसका प्रधान आचरण और धर्म-ग्रन्थ था। धर्म की इससे बढ़ कर परिभाषा और क्या हो सकती है। जो धर्म केवल एक व्यक्ति और ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ता है तथा सांसारिक लोगों से छुड़ा कर जंगल का मार्ग दिखलाता है वह धर्म नहीं कहला सकता। "विश्व-होन

और विधवाओं के दुख में उनकी मदद को आना और संसार में कलंकरहित रहना ही शुद्ध धर्म है।❀

"धर्म उस शक्ति को कहते हैं जो मनुष्य को सरल बात के स्थान में कठिन बात चुनने के लिए कहता है, जो नीच और स्वार्थ-युक्त बातों के स्थान में उच्च और महान् बातें करने का आदेश देता है, जो कंपित हृदयों में साहस, अंधकार-युक्त हृदयमें प्रसन्नता संचार करता है, जो दुख, दुर्भाग्य और निराशा में सांत्वना देता है, जो हर्ष-पूर्वक भारी बोझ उठाने की शक्ति देता है।" † ईश्वर के प्रति तथा मनुष्य के प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उसी का नाम धर्म है, धर्म हमें नैतिक और सामाजिक बन्धन-युक्त करता है। ‡ इसी प्रकार की अनेकों परिभाषायें विद्वानों ने धर्म की लिखी हैं। सब का मूल सदाचार और मनुष्य-मात्र की सहायता करना है।

"धर्म के सम्बन्ध में हिन्दू-सिद्धान्त था—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है परन्तु बुद्धि वाले लोग इसे बहुत नामों से पुकारते है।) हिन्दू किसी मत में नहीं वरन सत्य और ज्ञान में विश्वास करता था। ज्ञान प्राप्त करना ही हिन्दू-जीवन का उद्देश्य था, क्योंकि सारे दुःखों की जड़ अविद्या है। इसी कारण वेद का अर्थ ज्ञान है। इसी कारण हमारा धर्म सनातन-धर्म है क्योंकि सत्य और ज्ञान ही सनातन-धर्म है। मत या मजहब कभी सनातन नहीं हो सकता।" × क्या इस धर्म-मार्ग के अनुसरण

❀ सेन्ट जेम्स। † ए० बी० बेनसन। ‡ लोकमान्य तिलक।
× गोवर्द्धनलाल एम० ए० एल-एल० बी०।

करने के लिए हमें एकान्त स्थान में जाने की आवश्यकता है? हृदय एक-दम निःसंकोच निषेधात्मक उत्तर देता है। जहां तुम्हें किसी दुखी की आवाज सुनाई दे उसकी सहायता को दौड़ आओ। अपने कुटुम्बों से प्रेम-पूर्ण व्यवहार करो। धर्म की वेदी पर स्वार्थ का बलिदान कर दो। सबको अपना ही समझो। रीति-रिवाजों और मजहबों पर ख्याल न करते हुए सबको सम-भाव से देखो। अपने प्रति-दिन के जीवन में सदाचार से काम लो। किसी के साथ अनुचित-व्यवहार न करो। स्वर्ग तुम्हारे बन्धुओं की सेवा में है। समस्त कुटुम्ब को सुखी बनाने का प्रयत्न करो, फिर अपने क्षेत्र को विस्तीर्ण कर दो। अपना स्वर्ग महाराज "युधिष्ठिर के स्वर्ग" को बनाओ। जब महाराज स्वर्ग में पहुँचे तब अपने स्त्री और बच्चों की खोज करने लगे, बहुत पता लगाने के बाद चिल्ला उठे—'हे देवताओ! क्या यही तुम्हारा स्वर्ग है। मुझे इस स्वर्ग में कुछ भी आनन्द नहीं मिल सकता। मेरा स्वर्ग वहीं है जहां मेरी स्त्री और भाई निवास करते हैं। मुझे वहीं ले चलो। हमारी यहां कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उनसे बिना एक-क्षण भी नहीं टिक सकता।"

बहनो, इस सरल, दान-पूर्ण, सेवा-धर्म का पालन कर तुम्हें स्वर्ग की बाट नहीं जोहना पड़ेगी। यदि स्वर्ग वास्तव में है तो वहाँ आनन्द ही आनन्द नजर आता होगा, कोई व्याधि-बाधा हृदय को न सताती होगी। एक प्रकार की अनूठी आनन्द की लहरें हृदय में उठा करती होंगी। तभी सुख को सुख वहीं मान कर सकती हो। एक दुखी, पीड़ित की कल्पना करो। बेचारा प्यासा पड़ा हुआ है, उसके अंगों से मवाद बह रहा है। मक्खियाँ

भिन-भिना रही हैं, लोग उसे देख घृणा से अपना मुँह फेर लेते हैं। उसके पास जाओ, मक्खियों को अपने अंचल से भगा दो। एक गिलास ठंडा पानी पिला दो, वह अपने हर्षित नेत्र से तुम्हारी ओर देखेगा, तुम्हारा हृदय खिल उठेगा, तुम आनन्द में डूब जाओगी। क्या स्वर्ग में जाकर तुम ईश्वर के दर्शन करना चाहती हो ? वहाँ देखो उन धूल-धूसरितों को अपनी गोदी में उठा लो, माता के स्नेह से उनका पालन करो। क्या ईश्वर का चेहरा उन अनाथों के चेहरे से अधिक सुन्दर होगा ? क्या ये भी उसी की विभूतियाँ नहीं हैं ? घंटी घड़ियाल बजा कर व्यर्थ का नाद और परिश्रम क्यों करती हो ? क्या तुम्हारी मूर्तियाँ तुम्हें स्वर्ग पहुँचा देंगी ? उस ओर देखो, अकाल पीड़ित तड़प रहे हैं। अपने इन्हीं हाथों से भोजन तयार कर उन्हें खिलाओ। कठिन ग्रीष्म की धूप में जब प्राणी "पानी-पानी" की पुकार कर प्राण-त्याग रहे हों, तब कुएँ से पानी खींच कर उन तृषितों को पिलाओ। अपनी भाषा और जिह्वा को 'राम-राम जप' निस्सार प्रार्थना करने में न लगा, उस बेचारे पतित को सांत्वना दो। देखो, वह संसार में दुखों से घबड़ा उठा। उसे मार्ग नहीं सूझता। अपने प्रेममय वचनों-द्वारा उसकी पथ-प्रदर्शिका बनो। अच्छे-अच्छे पकवानों को तैयार कर भगवान् को खिलाने का बहाना करने में क्या रखा है ? जब तक संसार का एक भी प्राणी दुखी है और भूखा पड़ा है तब तक इस तरह का अन्याय उचित नहीं। जब मानव-पिता अपनी सन्तान को भूखों देख स्वतः भोजन नहीं कर सकता फिर भला जगत-पिता अपनी सन्तानों को भूखों मरते देख तुम्हारा मिष्ठान्न कैसे स्वीकृत करेगा ? दीपक जला कर, देव-

आरती का स्वांग रच, समय और द्रव्य क्यों खर्च करती हो। ज्ञान को प्राप्त करो, सत्य की खोज करो, फिर उसी ज्ञान-दीप को जला कर अज्ञानियों को पथ-प्रदर्शन करो। ईश्वर भी प्रसन्न होगा। हृदय संसार पर मुग्ध हो जायगा। स्वर्ग तुम्हारे गृह में आ-विराजेगा। ईश्वर का डर दूर हो जावेगा। मृत्यु का भय छूट जावेगा और तुम दृढ़ चित्त से कहोगी "अब मृत्यु मैं तेरा हृदय से स्वागत करती हूँ। इस जगत् में मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। ईश्वर के उपदेश को माना, व्यर्थ के मजहबी फंदे में न फँस, सर्व-व्यापी धर्म की अनुयायी रही। चलो मेरा कार्य यहाँ समाप्त हो गया अब स्वर्ग में चल, वहाँ भी देव-गणों की सेवा करूँगी।"

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर.

स्थापना सन् १९२५ ई०; मूलधन ४५०००)

उद्देश्य—सस्ते से सस्ते मूल्य में ऐसे धार्मिक, नैतिक, समाज सुधार सम्बन्धी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैय्यार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्रीस्वातंत्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला (सभापति) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र-निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालाएँ प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र-निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार, ग्राम-संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक होने के नियम

(१) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। (२) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। (३) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फ़ीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपिया। (४) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछले वर्षों में प्रकाशित सभी या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति ग्राहकों को लागत मूल्य पर मिल सकती है। (५) माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होता है। (६) जिस वर्ष से जो ग्राहक बनते हैं उस वर्ष की सभी पुस्तकें उन्हें लेनी होती हैं। यदि उस वर्ष की कुछ पुस्तकें उन्होंने पहले से ही ले रखी हों तो उनका नाम व मूल्य कार्य्यालय में लिख भेजना चाहिए। उस वर्ष की शेष पुस्तकों के लिए कितना रुपिया भेजना चाहिये, यह कार्य्यालय से सूचना मिल जायगी।

सस्ती-साहित्य-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (म० गांधी) पृष्ठ सं० २०२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≤) सर्वसाधारण से ≋)

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए० एल० टी०) पृष्ठ १२२ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)

(३) दिव्य जीवन—पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ।=) ग्राहकों से ।) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री रत्न—(पाँच भाग) इस में वैदिक काल से लगाकर आज तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पतिव्रता, विदुषी और भक्त कोई ५०० स्त्रियों की जीवनी होगी। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मू० १) ग्राहकों से ॥।) दूसरा भाग दूसरे वर्ष में छपा है। पृष्ठ २२० मू० ।≡)

(५) व्यावहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के उपयोगी व्यावहारिक शिक्षाएँ। पृष्ठ १२८, मूल्य ।)॥ ग्राहकों से ≋)॥

(६) आत्मोपदेश—पृष्ठ १०४, मू० ।) ग्राहकों से ≋)

(७) क्या करें? (टॉलस्टॉय) महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा". प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≤)

(८) कलवार की करतूत—(नाटक) (ले० हरिभाऊ) अर्थात् शराबखोरी के दुष्परिणाम, पृष्ठ ४० मू० -)॥। ग्राहकों से -)॥

(९) जीवन साहित्य—(भू० ले० बाबू राजेन्द्रप्रसादजी) काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग-पृष्ठ २१८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=)

प्रथम वर्ष में उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की निकली हैं

सस्ती-साहित्य-माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) तामिल वेद—[ले० महात्मा संत ऋषि तिरुवल्लुवर] धर्म और नीति पर अनुपम उपदेश—पृष्ठ २४८ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≤)॥

(२) स्त्री और पुरुष [ले० टाल्सटाय] स्त्री और पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आदर्श विचार—पृष्ठ १४४ मू० ≋) ग्राहकों से ।)

(३) हाथ की कताई बुनाई [अनु० श्री रामदास गौड़ एम० ए०) पृष्ठ २६७ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≤)॥ इस विषय पर आई हुई ६६ पुस्तकों में से इसको पसंद कर म० गांधीजी ने इसके लेखकों को १०००) दिया है।

(४) हमारे ज़माने की गुलामी (टाल्सटाय) पृष्ठ १०० मू० ।)

(५) चीन की आवाज़—पृष्ठ १२० मू० ।-) ग्राहकों से ≤)॥

(६) द० अफ्रिका का सत्याग्रह—(दूसरा भाग) ले० म० गांधी पृष्ठ २२८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(७) भारत के स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ लगभग ३२० मू० ॥-) ग्राहकों से ॥≤) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(८) जीवन साहित्य [दूसरा भाग] पृष्ठ २०० मू० ॥) ग्राहकों से ।≤) इसका पहला भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

दूसरे वर्ष में लगभग १६५० पृष्ठों की ये ८ पुस्तकें निकली हैं

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५२, मू० ।=) ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—पृष्ठ १२४ मू० ।-) ग्राहकों से ≤)॥

(३) कन्या-शिक्षा—पृष्ठ सं० ९४, मू० केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≤)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—पृष्ठ २६४, मू० ॥-) ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—पृष्ठ २०८ मू० ॥) ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पं० पद्मसिंहजी शर्मा पृष्ठ १७६, मू० ।≤) ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविन्दसिंह (ले० चण्डीचरणसेन) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों और उनके कारिन्दों की काली करतूतें और देश की विनाशोन्मुख स्वाधीनता को बचाने के लिए लड़ने वाली आत्माओं की वीर गाथाओं का उपन्यास के रूप में वर्णन—पृष्ठ २८० मू० ॥=) ग्राहकों से ।≤)॥

(८) स्वामीजी [श्रद्धानंदजी] का बलिदान और हमारा कर्तव्य [ले० पं० हरिभाऊ उपाध्याय] पृष्ठ १२८ मू० ।-) ग्राहकों से ।)

(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास [प्रथम भाग] यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का तथा जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है। प्रत्येक भारतवासी को यह ग्रन्थ रत्न पढ़ना चाहिये। पृष्ठ ३६६ मू० ॥|=) ग्राहकों से ॥-)

प्रथम वर्ष में १७६२ पृष्ठों की ये ९ पुस्तकें निकली हैं।

भारत भूषण मालवीयजी की सम्मति

'त्यागभूमि' भारत की हिन्दी पत्रिकाओं में एक विशेष प्रशंसनीय पत्रिका है। इसके लेख और सम्पादकीय टिप्पणियाँ विचार-पूर्ण और हृदय में नवजीवन का संचार करने वाली होती हैं। स्त्रियों को और नौजवानों को उपदेश और उत्साह देने की इसमें प्रचुर सामग्री रहती है। अभी पत्रिका **आठ दस हजार की वार्षिक घटी सहकर** सस्ती दी जा रही है। पर यदि इसके दस-बारह हजार ग्राहक हो जायँ तो यह अपना पूरा खर्च सँभाल लेगी।

मैं आशा करता हूँ कि देश भर के हिन्दी के प्रेमी इसके प्रचार में सहायक होंगे। हिन्दी में इतनी सुन्दर, सुसम्पादित सात्विक-ज्ञान-प्रधान पत्रिका देखकर मुझे प्रसन्नता होती है।

मैं चाहता हूँ कि यह चिरञ्जीवी हो।

मदनमोहन मालवीय

मित्रता

प्रतापमल नाहटा

लेखक और प्रकाशक—

श्री प्रतापमल नाहटा

मोमासर (बीकानेर)

सम्पादक—

श्री० पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे

→ संवत् १९८४ ←

प्रथम संस्करण } ❁ { मूल्य छः आना ।

पुस्तक मिलनेका स्थान—
ग्रन्थ-प्रकाशक,
७।१ प्यारीमोहन पाल लेन, कलकत्ता।

समर्पण

श्रीचैनरूपजी बैंगाणी

प्रिय मित्र,

अनुरागके नवनीरसे नित,
सींचते जिसको रहे।
दस वर्षसे उस प्रेम लतिका,
फूल उसमें खिल रहे॥
माली सुमन कुछ चुन उनसे,
गूँथ लाया हार है।
मित्र हो स्वीकार यह प्रिय
मित्रका उपहार है॥

—तुम्हारा अनन्य मित्र

प्रतापमल नाहटा .

समर्पण

श्रीचैनरूपजी बैंगाणी

प्रिय मित्र,

अनुरागके नवनीरसे नित,
सींचते जिसको रहे ।
दस वर्षसे जो प्रेम लतिका,
फूल उसमें खिल रहे ।।
माली सुमन कुछ चून उनसे,
गूँथ लाया हार है ।
मित्र हो स्वीकार यह प्रिय
मित्रका उपहार है ।।

—तुम्हारा अनन्य मित्र

प्रतापमल नाहटा .

श्रीचैनरूपजी बैंगाणी

प्रिय मित्र,

अनुरागके नवनीरसे नित,
सींचते जिसको रहे।
दस वर्षसे उस प्रेम लतिका,
फूल उसमें खिल रहे॥
माली सुमन कुछ चून उनसे,
गूँथ लाया हार है।
मित्र हो स्वीकार यह प्रिय
मित्रका उपहार है॥

—तुम्हारा अनन्य मित्र

प्रतापमल नाहटा.

प्रस्तावना

—:-:—

प्रस्तुत पुस्तक "मित्रता"के सम्बन्धमें है। यह विषय ऐसा है, कि प्रत्येक मनुष्यके नित्य-जीवनके साथ इसका सम्बन्ध है। परन्तु इस विषयकी जितनी उपेक्षा की जाती है उतनी और किसी भी विषयकी नहीं। हिन्दी-भाषामें इस विषयकी एक भी पुस्तक नहीं है। अन्य भाषाओंमें भी बहुत ही कम हैं। परन्तु इस विषयका महत्व इतना अधिक है, कि प्रत्येक मनुष्यको यह जाननेकी आवश्यकता है कि मित्रता क्या है और यह कैसे निभाही जा सकती है; क्योंकि प्रत्येक मनुष्यका कोई-न-कोई मित्र होता ही है और यदि इस विषयका सम्यक् ज्ञान मित्रसम्बन्ध जोड़नेवालोंको हो, तो मनुष्यसमाज बहुत सुखी हो जाय। मित्र-सम्बन्ध जोड़नेका महत्व हमारे यहाँ कितना अधिक था, यह इस सम्बन्धकी प्राचीन परिपाटीको देखनेसे मालूम हो जाता है। राम और सुग्रीवकी जो मित्रता हुई, वह अग्निको साक्षी रखकर हुई थी। अभीतक पाग बदलने और धर्म-भाई माननेकी प्रथा भी चली आती है। परन्तु समाजकी इस अवनत दशामें धर्म-भाई या मित्र माननेकी यह प्रथा निष्प्राणसी हो गयी है, और अनेक बार तो इसका दुरुपयोग ही होता है। इसका कारण यही है, कि इस

सम्बन्धका महत्व लोग भूल गये हैं। सामाजिक जीवनमें इस भूलसे अनेक अनिष्ट परिणाम होते हैं। सामाजिक जीवन ही निष्प्राण हो जाता है। सामाजिक उन्नतिमें मित्रप्रेम एक महान् साधन है और इसके अतिरिक्त स्वयं मित्रप्रेम अकेले भी एक महान् संपत्ति है, जिसका यथामति सुविस्तार हो, इसी इच्छासे यह पुस्तक लिखी गयी है। आशा है, बुद्धिमान् पाठक इसे हंसक्षीर-न्यायसे ग्रहण कर उपकृत करेंगे। हिन्दी भाषामें मेरा यह पहला ही प्रयत्न है और इसलिये इसे प्रकाशित करनेके पूर्व मैंने आर्यांग्ल अनुवादक पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्देको दिखा देना आवश्यक समझा, जिन्होंने यथावश्यक संशोधनादि कर मेरी जो सहायता की है, उसका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

विनीत—

धनासचन्द नाहटा.

मित्रता या मित्र-प्रेम

१

अकिंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैः दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥

साधारण तौरपर "मित्र" शब्दका जिस प्रकारसे प्रयोग किया जाता है उसमें इस शब्दका विशेष अर्थ कुछ भी नहीं रहता। राह चलते किसी नवीन मनुष्यसे भेंट हो जाती है, पहलेकी कोई जान पहचान उससे नहीं, किसी प्रकारका परिचय भी नहीं, तोभी हम उसे भाई या मित्र कहकर पुकारते हैं। परन्तु यहाँ उसे मित्र कहकर पुकारनेमें अपना सौजन्य या सद्भाव प्रकट करनेके सिवाय और कोई हेतु नहीं होता। ऐसे प्रसंगमें "मित्र" शब्दका क्या अर्थ है? कुछ भी नहीं। परन्तु कोई भी दो मनुष्य एक दूसरेको भाई या मित्र कहें यह कोई बुरी बात

नहीं है, क्योंकि इससे यह मालूम होता है कि इस प्रकार एक दूसरेको मित्र कहकर पुकारनेवाले अपनी इस चेष्टासे मानवजातिके एक शुभ परन्तु उच्च ध्येयका ही, जाने-बेजाने, स्मरण करा देते हैं। मनुष्योंका एक दूसरेको भाई या मित्र कहकर पुकारना निश्चय ही मनुष्यजातिकी स्वभावसिद्ध समता या परस्परबन्धुताका निदर्शक है। परन्तु दुःखकी बात यह है, कि यह स्वभावसिद्ध समता या परस्पर-बन्धुताका निदर्शन करनेवाला शब्द सदा अपना भाव अपने साथ लिये हुए नहीं रहता, क्योंकि भाई या मित्र कहकर पुकारनेवाले लोगोंमें ऐसे पुरुष प्रायः दुर्लभ ही होते हैं जो उस शब्दके वास्तविक अर्थको ध्यानमें रखकर उसका प्रयोग करते हों। भाई या मित्र कहकर किसीको पुकारना केवल एक अर्थहीन आचार सा हो गया है। कभी किसी कालमें यह आचार सार्थ होगा या नहीं, याने सब मनुष्य एक दूसरेके साथ बन्धुताका व्यवहार करेंगे या नहीं, इसका विचार करना प्रस्तुत पुस्तककी मर्यादाके बाहरका काम है। परन्तु जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक केवल यह एक अर्थहीन शिष्टाचार मात्र है।

कौंसिलों और पार्लमेंटोंमें परस्पर-विरोधी दल तथा दोनों दलोंके सदस्य एक दूसरेको मित्र ही कहा करते हैं। अनेक बार ऐसे परस्पर-विरोधी दल एक दूसरेके हितके विरुद्ध चेष्टायें किया करते हैं, परन्तु इन अवस्थाओंमें भी एक दूसरेको सम्बोधन करते हैं "मित्र" कहकर ही। यह यदि "मित्र" शब्दका दुरुपयोग नहीं तो एक दूसरे प्रकारका अर्थहीन शिष्टाचार मात्र है।

राष्ट्रोंके परस्पर राजनीतिक सम्बन्धकी भाषामें भी 'मित्र' शब्दका प्रयोग होता है। परन्तु इस प्रकारकी राजनीतिक मित्रता, राजनीतिमें चाहे जो स्थान रखती हो, वास्तविक मित्रताके सर्वथा विपरीत होती है। हितोपदेशमें एक श्लोक है—

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं। न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः॥
कारणेन हि जायन्ते। मित्राणि रिपवस्तथा॥

अर्थात् कोई किसीका मित्र नहीं, न कोई किसीका शत्रु है, मतलबसे ही कोई किसीका शत्रु या मित्र होता है। राजनीतिक मित्रताका यह मूल सूत्र है। राजनीतिमें कोई किसीका मित्र नहीं होता। जिससे जितने कालतक अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो, उतने कालतक वह मित्र है और जब उससे अपने स्वार्थकी हानि होती है तब वही तत्काल शत्रु हो जाता है। जर्मन महायुद्धके पहलेतक जर्मन और अङ्गरेज एक दूसरेको भाई और मित्र कहकर पुकारते थे। परन्तु जिस समय भाई या मित्र कहकर पुकारते थे, उसी समय एक दूसरेका नाश करनेकी भी भीतर-ही-भीतर तैयारी कर रहे थे। इसलिये अनेक बार राजनीतिकी भाषामें मित्रता युद्धकी तैयारीका नाम हुआ करती है। इस राजनीतिक मित्रताके उदाहरणका स्वरूप सार्वजनिक है। पर बहुतोंको वैयक्तिक जीवनके नित्य नैमित्तिक व्यवहारमें भी ऐसी मैत्रीका अनुभव हुआ होगा, जब मित्रता अकस्मात् शत्रुतामें परिणत हो गयी हो।

व्यापार-पेशा लोगोंमें अनेक बार ऐसी मित्रता होती है, जो व्यापारिक सहयोगकी बुनियादपर खड़ी होती है। इसमें

हेतु आर्थिक लाभ ही होता है और जबतक यह लाभ होता रहता है तबतक यह मित्रता भी जीवित रहती है, पर ज्योंही इस प्रकार लाभ होना बन्द हो जाता है, त्योंही इस सहयोगका भी अन्त हो जाता है। इसलिये इसे भी हम वास्तविक मित्रता नहीं कह सकते।

इन चार उदाहरणोंमें पहले दो उदाहरण केवल शिष्टाचारके हैं और दूसरे दो स्वार्थ-मूलक। पहले दो केवल शिष्टाचार होनेसे और दूसरे दो स्वार्थ-मूलक होनेसे वास्तविक मित्रतासे खाली ही होते हैं। कारण वास्तविक मित्रता न तो शिष्टाचार है न कोरे स्वार्थ ही। वास्तविक मित्रता क्या है, यह अब देखें।

मित्रता एक प्रकारका प्रेम है। भ्रातृप्रेम, पितृप्रेम, मातृप्रेम, देशप्रेम इत्यादि प्रेमके अनेक प्रकार हैं। उन्हींमें एक मित्र-प्रेम भी है। प्रेम निःस्वार्थ होता है। प्रेममें प्रत्युपकारकी इच्छा या आशा नहीं होती। जिन मनुष्योंमें इस प्रकारका परस्पर प्रेम होता है उन्हींको मित्र कहते हैं।

मित्रप्रेम भ्रातृप्रेमका सा होता है, यही इसकी व्याख्या भी हो सकती है। भाई और मित्र एक दूसरेके इतने सदृश हैं कि दोनोंके समान नाम "बन्धु" है। परन्तु भ्रातृप्रेममें जो सहोदर-सम्बन्ध होता है वह मित्रप्रेममें नहीं होता। यह भ्रातृप्रेमकी विशेषता है अन्यथा मित्र और भाईमें कोई भेद न रह जाता। और यही मित्रप्रेमकी भी विशेषता है; क्योंकि सहोदर सम्बन्ध न होते हुए भी मित्रप्रेम भ्रातृप्रेमसे कम नहीं होता। सहोदर-सम्बन्धकी [illegible] होनेवाला

प्रेम, समान-शीलत्वके अभावसे टूट भी सकता है; पर मित्रप्रेम कभी नहीं टूट सकता, क्योंकि मित्रप्रेम समानशील मनुष्योंमें ही होता है। समानशील मनुष्योंमें जो परस्पर प्रेम स्थापित होता है, उसीको मित्रप्रेम कहते हैं।

"समानशीले व्यसनेषु सख्यं" यही अनुभव परंपरासे चला आता है। व्यसन अर्थात् विपत्तिकालमें जो परस्पर सख्य या मैत्री होती या बनी रहती है वह ऐसे ही मनुष्योंमें होती है जिनका शीलस्वभाव एक दूसरेके समान होता है और विपत्ति-कालका आजमाया हुआ मित्र-प्रेम ही सच्चा मित्र-प्रेम है। भिन्न शील-स्वभाववाले व्यक्ति सुखमें एक दूसरेके साथ सुखसे मित्र कहलाते हुए रह सकते हैं, पर विपत्तिमें एक क्षण भी नहीं रह सकते। तात्पर्य, मित्रता समान-शीलवालोंमें ही होती है।

हेतु आर्थिक लाभ ही होता है और जबतक यह लाभ होता रहता है तबतक यह मित्रता भी जीवित रहती है, पर ज्योंही उस प्रकार लाभ होना बन्द हो जाता है, त्योंही इस सहयोगका भी अन्त हो जाता है। इसलिये इसे भी हम वास्तविक मित्रता नहीं कह सकते।

इन चार उदाहरणोंमें पहले दो उदाहरण केवल शिष्टाचार हैं और दूसरे दो स्वार्थ-मूलक। पहले दो केवल शिष्टाचार होनेसे और दूसरे दो स्वार्थ-मूलक होनेसे वास्तविक मित्रतासे खाली ही होते हैं। कारण वास्तविक मित्रता न तो शिष्टाचार है न कोई स्वार्थ ही। वास्तविक मित्रता क्या है, यह अब देखें।

मित्रता एक प्रकारका प्रेम है। भ्रातृप्रेम, पितृप्रेम, मातृप्रेम, देशप्रेम इत्यादि प्रेमके अनेक प्रकार हैं। उन्हींमें एक मित्र-प्रेम भी है। प्रेम निःस्वार्थ होता है। प्रेममें प्रत्युपकारकी इच्छा या आशा नहीं होती। जिन मनुष्योंमें इस प्रकारका परस्पर प्रेम होता है उन्हींको मित्र कहते हैं।

मित्रप्रेम भ्रातृप्रेमका सा होता है, यही इसकी व्याख्या की जा सकती है। भाई और मित्र एक दूसरेके इतने सदृश हैं कि दोनोंकी समान संज्ञा "बन्धु" है। परन्तु भ्रातृप्रेममें जो शरीर-सम्बन्ध होता है वह मित्रप्रेममें नहीं होता। यह भ्रातृप्रेमकी विशेषता है, अन्यथा मित्र और भाईमें कोई भेद न रह जाता। और यही मित्रप्रेमकी भी विशेषता है; क्योंकि शरीर-सम्बन्ध न होते हुए भी मित्रप्रेम भ्रातृप्रेमसे कम नहीं होता। शरीर-सम्बन्धसे उत्पन्न [illegible]

प्रेम, समान-शीलत्वके अभावसे टूट भी सकता है ; पर मित्रप्रेम कभी नहीं टूट सकता, क्योंकि मित्रप्रेम समानशील मनुष्योंमें ही होता है। समानशील मनुष्योंमें जो परस्पर प्रेम स्थापित होता है, उसीको मित्रप्रेम कहते हैं।

"समानशीले व्यसनेषु सख्यं" यही अनुभव परंपरासे चला आता है। व्यसन अर्थात् विपत्तिकालमें जो परस्पर सख्य या मैत्री होती या बनी रहती है वह ऐसे ही मनुष्योंमें होती है जिनका शीलस्वभाव एक दूसरेके समान होता है और विपत्ति-कालका आजमाया हुआ मित्र-प्रेम ही सच्चा मित्र-प्रेम है। भिन्न शील-स्वभाववाले व्यक्ति सुखमें एक दूसरेके साथ सुखसे मित्र कहलाते हुए रह सकते हैं, पर विपत्तिमें एक क्षण भी नहीं रह सकते। तात्पर्य, मित्रता समान शीलवालोंमें ही होती है।

मानवी विकास और मित्रता

२

किसी भी वस्तुकी महत्ता इसी बातपर निर्भर करती है कि वह मनुष्यके मनुष्यत्व विकासमें कहाँतक सहायक है। मनुष्यके मनुष्यत्व विकासके सिलसिले पर विचार करने से मालूम है कि मनुष्यका विश्वकुटुम्बी हो जाना और अधिकसे अधिक संख्यक प्राणियोंके हितार्थ जीवन व्यतीत करना ही उसका चरम विकास है। इसी चरम विकासके लिये मनुष्यकृत त्यागकी प्रशंसा है। मनुष्य जो कुछ त्याग करता है, वह चाहे जिसके लिये करे, प्रेमसे करता है। इसीलिये प्रेमकी प्रशंसा है। त्याग और प्रेम एक ही [illegible] है। जो जितना ही प्रेमी होगा, उतना ही वह त्याग[illegible] स्वार्थी मनुष्यको त्याग करना सिखाता है। मि[illegible]

एक दूसरेके शत्रु हो गये हों, पति-पत्नीको अपने परस्पर-प्रेमका कोई ध्यान न हो, समाजका एक परिवार दूसरे परिवारके साथ शत्रुताका व्यवहार करता हो, तो रोटी-बेटी-व्यवहारके होते हुए भी वह समाज नष्टप्राय हो जाता है, वह सुदृढ़ नहीं होता, समुन्नत नहीं होता। जिस समाजकी ऐसी दशा होती है उस समाजमें मित्र भी नहीं होते।

किसी समाजमें ऐसे पुरुषोंका न होना जो एक दूसरेके साथ मित्रताका व्यवहार करते हों याने जो मित्र हों उस समाजमें सत्य और स्नेहका अभाव सा समझना चाहिये। जिस समाजमें मित्र नहीं उत्पन्न हो सकते उस समाजमें घुन लगा रहता है। वही समाज मित्र उत्पन्न करता है जिसमें सत्य और स्नेह होता है, जिसमें पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धोंके धर्मोंका यथा उचित पालन होता है। जिस समाजमें मित्र होंगे उस समाजमें भ्रातृप्रेम होगा, पति-पत्नी प्रेम होगा, पुत्रवात्सल्य होगा, मातृभक्ति होगी। और जिस समाजमें ये बातें न होंगी उस समाजमें मित्र भी न होंगे। मित्रोंका होना उस समाजकी सुदृढ़ता और समुन्नतिका लक्षण है। जिस समाजमें परस्पर मित्रप्रेमका निर्वाह करनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या बहुत होगी वह सुदृढ़ समुन्नत समाज अन्य समाजोंका भी सहायक होगा। इसलिये सामाजिक और जातीय समुन्नतिमें मित्रोंकी मित्रता अप्रत्यक्ष परन्तु स्वाभाविक रीतिसे बहुत बड़ा काम किया करती है।

मित्रताका आधार

४

मित्रप्रेम, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मित्रताके अतिरिक्त अन्य किसी हेतुसे स्थापित नहीं हुआ करता। छोटे-छोटे बच्चे खेलते हुए उसमें अपना मित्र चुन लेते हैं। पाठशालामें पढ़नेवाले विद्यार्थी पढ़ते या खेलते हुए अपने मित्रका चुनाव कर लिया करते हैं। यह चुनाव सदा स्थायी नहीं होता, किसीका स्थायी होता है तो बहुतोंका नहीं होता। ये बालक अपने मित्रका जो चुनाव करते हैं उसमें कोई सूक्ष्म या स्थूल विचार भी नहीं होता। जिससे जिसका सहज स्नेह हो जाता है वही उसका मित्र होता है। परन्तु इस सहज स्नेहका एक नियम है जो आगे चलकर अपने विकसित रूपमें दिखाई देता है। यह नियम है, शील अर्थात् बर्ताव—चरित्र। बच्चोंमें मित्रका जो चुनाव होता है उसमें कोई किसीके शीलकी परीक्षा नहीं करता। परन्तु इसका क्या कारण है कि कोई बालक अनेक बालकोंमेंसे किसी एकको चुनकर ही उसे अपना मित्र मानता है? इसका कारण यही है कि उसका बर्ताव उसे औरोंकी अपेक्षा अधिक पसन्द होता है। समझदार मनुष्योंमें जो मित्रता होती है वह निश्चय ही समान

शीलत्वके कारणसे होती है। परस्पर-विरोधी चरित्रवालोंमें मित्रता नहीं हुआ करती, जिनका चरित्र एक दूसरेके सदृश होता है उन्हींमें मित्रता होती है। इस प्रकार मित्रता जैसे मित्रताके अतिरिक्त अन्य किसी हेतुसे नहीं होती वैसे ही चाहे जिसके साथ भी नहीं होती, केवल समान-शील व्यक्तियोंमें ही होती है। ऐसे उदाहरण हैं जहाँ भाई-भाईमें नहीं बनती; पर वही भाई अपने मित्रका सच्चा मित्र होता है। इस प्रकारके उदाहरणमें जहाँ भ्रातृ-प्रेम प्रकाशित नहीं होता और मित्रप्रेम जगमगा उठता है वहाँ उसका कारण केवल यही होता है कि समानशील व्यक्तियोंमें ही सख्य होता है, चाहे वे सहोदर भाई हों या न हों।

मित्रता आरम्भ होनेका कोई निश्चित काल नहीं है। पर बचपनमें जो मित्रता हो जाती है और आगे भी बनी रहती है वह निश्चय ही बहुत गाढ़ी होती है। बचपनमें हुई सभी मित्रताएं आगे नहीं बनी रहतीं इसका कारण यह नहीं है कि बचपनमें किया हुआ मित्रका चुनाव ठीक न हो। इसके विपरीत बचपनमें किया हुआ चुनाव छल-प्रपंच-रहित सहज प्रेमसे होनेके कारण अति उत्तम होता है। परन्तु एक साथ खेले हुए या पाठशालामें पढ़े हुए बालक आगे चलकर परिस्थितिवश भिन्न-भिन्न मार्गोंके पथिक हो जाते हैं जिससे रुचि, संस्कार, अभ्यास आदिमें अन्तर पड़ जाता है और इस तरह बचपनमें जो मित्र थे वे आगे चलकर एक दूसरेसे अपरिचिततक हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि "जिस मार्गसे कभी कोई आता जाता नहीं है, उसमें घास और

काँटे पदा होकर उस मार्गका नाम-निशानतक नहीं रहता। पर बचपनके मित्र पीछे जीवनमार्ग भिन्न होनेके कारण एक दूसरेसे अलग हुए मित्रोंमें भी ऐसे लोग होते हैं, जो बचपनकी मित्रताको नहीं भूलते। वास्तवमें सहृदय मनुष्यके लिये बचपनकी मित्रताको भूलना असम्भव है। बचपनकी मित्रताका प्रेम जितना गाढ़ा होता है उतना और कोई मित्रप्रेम गाढ़ा नहीं होता। जो लोग जीवनमार्गकी भिन्नतासे बचपनकी मित्रता भूल जाते हैं उन्हें हम सहृदय नहीं कह सकते। बचपनमें साथ खेले और पढ़े हुए संगी-साथियोंसे मिलकर जिसका हृदय आनन्दसे उत्फुल्ल नहीं हो उठता उसके नीरस एवं शुष्क हृदयमें शायद ही किसीके लिये सच्चा स्नेह होता हो।

मित्रताका आधार-समान-शीलत्व।

मित्रता समानशील व्यक्तियोंमें ही होती है और ऐसी मित्रता ही अन्ततक निभती है। जो मित्र समानशील नहीं हैं, उनकी मित्रता वंचकता-मात्र है, वह किसी दिन नष्ट हो जायगी या शत्रुतामें परिणत हो जायगी। महाराज द्रुपद और द्रोण कहनेको तो बालसखा थे। दोनों एक ही आश्रममें पढ़े और खेले-कूदे थे। बचपनकी मित्रता गाढ़ी होती है। पर द्रुपद और द्रोणकी मित्रता गाढ़ी नहीं थी, जीवनमार्ग भिन्न होते ही वह मित्रता जाती रही। आचार्य उस मित्रताको नहीं भूले थे, पर द्रुपद भूल गये; क्योंकि द्रुपद ऐश्वर्यशाली सिंहासनाधीश्वर हुए और द्रोण दरिद्रके दरिद्र

ही रह गये। द्रोणको यह नहीं मालूम था, कि राजा जो हमारा बालसखा था, हमें भूल जायगा। वे यह समझते थे कि बालसखाके लिये हमारे हृदयमें जो प्रेम है वही प्रेम राजा द्रुपदके हृदयमें भी होगा और इसलिये यह तपस्वी ब्राह्मण एक महान् तपकी सिद्धिके पश्चात् सबसे पहले बड़े प्रेम और आनन्दके साथ अपने बालसखा राजा द्रुपदसे मिलने दौड़ गया। पास पहुंचते ही द्रोणाचार्यने कहा,—"राजन्! मैं तुम्हारा मित्र हूँ।" आचार्य और कुछ नहीं कह सके, क्योंकि इस दरिद्र ब्राह्मणका यह कहना कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ, उस राजमदमत्त राजाको सहन नहीं हुआ। वह आग-बबूला हो उठा। लाल-पीली आँखें निकाल और भौंहें चढ़ाकर उसने कहा,—"अरे दरिद्र ब्राह्मण! तुम किसको अपना सखा कहते हो? क्या कभी किसी ऐश्वर्यशाली राजा और श्रीहीन दरिद्र ब्राह्मणसे भी मित्रता हुई है?" संसारमें अनेक मित्र ऐसे ही होते हैं जो यथार्थमें मित्र नहीं होते और मित्र-धर्मका पालन नहीं, प्रत्युत स्वार्थ साधन किया करते हैं और जबतक जिससे स्वार्थ सिद्ध होता है, तबतक उसे मित्र बनाये रहते हैं, पीछे दूधमें से मक्खीकी तरह निकाल कर फेंक देते हैं।

इस प्रकारकी मित्रताका जो वर्णन द्रुपदराजने आचार्य द्रोणको फटकारते हुए किया है, उसका नमूना साधारणतः सर्वत्र देखनेमें आता है और बहुतोंके विचार मित्रताके सम्बन्धमें वैसे ही हो जाते हैं। द्रुपदराज कहते हैं—"ऐश्वर्यशाली नरपतियोंके साथ तुम्हारे जैसे श्रीहीन मनुष्यकी मित्रता हो, यह नितान्त

असम्भव है। बचपनमें ज़रूर तुम्हारे साथ मित्रता थी परन्तु इस समय वैसी मित्रताका होना किसी प्रकार उचित नहीं है। किसीके साथ किसीकी सदा मित्रता नहीं होती। या तो काल उसे नष्ट करता है या क्रोधसे उसका नाश हो जाता है। इसलिये तुम पहलेकी उस मित्रताको अब दूर फेंक दो। हे विप्र! पहले तुम्हारे साथ जो मित्रता थी, वह एक अर्थके निमित्त थी। पण्डितके साथ मूर्खकी और वीरके साथ कायरकी मित्रता जैसे कभी नहीं होती, वैसे ही धनवानके साथ दरिद्रकी मित्रताका होना भी असम्भव है, इसलिये पहलेकी मित्रता बनी रखनेके लिये तुम क्यों यहाँ आये हो? हे ब्राह्मण! धन और ज्ञानमें जो तुम्हारे ही जैसे हों, उन्हींसे समधीपन और बन्धुभाव स्थापित करो। छोटे-बड़ेमें मैत्री नहीं हुआ करती।*

मित्रप्रेमसे आये हुए द्रोण राजाका यह भाषण सुनकर वहाँसे चले गये और सदाके लिये द्रुपद-राजके वैरी हो गये। द्रुपद और द्रोण बचपनके सखा थे और पीछे एक दूसरेके वैरी हो गये। इसका कारण क्या है? कारण यही हुआ, कि दोनों समान-शील नहीं थे, दोनोंका चरित्र एक दूसरेके साथ विपरीत था। मित्रता-

---

* राजा द्रुपदकी मैत्रीके प्रकारका सूत्र मूल श्लोकमें इस प्रकार दिया हुआ है :—

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्।
तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्ट विपुष्टयो॥

(महाभारत आदि-पर्व अध्याय १३१)

का जो स्नेह द्रोणमें था, वह द्रुपदमें नहीं था। द्रुपदकी बचपनकी वह मित्रता स्वार्थके लिये थी, यह स्वयं उन्होंने ही स्वीकार किया है। पर द्रुपदका यह कहना, कि धनी और दरिद्रमें मित्रता नहीं हो सकती, मिथ्या है। यह सच है, कि वीर और कायरकी मित्रता कभी नहीं होती; क्योंकि वीरता या कायरता शील-स्वभावमें शामिल है और समान शीलवालोंमें ही मित्रता हो सकती है। परन्तु धनका होना या न होना शील-स्वभावकी कोई बात नहीं है। दरिद्र पुरुष भी त्यागी हो सकता है और धनी पुरुष कृपण हो सकता है। उदारता और कृपणता शील है, उदार और कृपण एक दूसरेके मित्र नहीं हो सकते। पर धनी और दरिद्र हो सकते हैं। अवश्य ही धनी और दरिद्रकी मित्रताके उदाहरण संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं। पर ये दुर्लभ उदाहरण ही मैत्रीके आदर्श हैं।

१—श्रीकृष्ण और सुदामा।

धनी तो द्रुपद और निर्धन द्रोणमें जिस समय मित्रता नहीं रह गयी, उस समय परम ऐश्वर्यशाली महाभाग श्रीकृष्ण और महादरिद्र विप्र सुदामा एक दूसरेके परम सखा थे। श्रीकृष्ण और सुदामा भी द्रुपद और द्रोणकी तरह बाल-सखा थे, एक साथ खेले-कूदे और एक साथ पढ़े थे। पर न सुदामा कभी श्रीकृष्णको भूले न श्रीकृष्ण कभी सुदामाको। संसारमें सभी समान नहीं होते। कोई धनी और कोई निर्धन, कोई छोटा और कोई बड़ा यह भेद रहता ही है। अनेक बार ऐसा भी होता है, कि बचपनमें एक साथ खेले हुए दो मित्रोंके भावी जीवनमें महा अन्तर पड़ जाता है। उनके वैभवके अन्तरसे यदि उनकी मित्रतामें अन्तर पड़ गया, तो उस वैभवकी क्या शोभा? बचपनमें जिन लोगोंके साथ रहे, ईश्वरकी कृपासे महापद प्राप्त होनेपर हम उन्हें भूल जायें, तो उस महापदकी महत्ता ही क्या? धन्य वे ही हैं, जो वैभव और अधिकारके शिखरपर चढ़ कर भी अपने पूर्वपरिचितके साथ पूर्ववत् ही स्नेह बनाये रहते हैं। श्रीकृष्ण और सुदामाकी आदर्श मैत्रीका वह प्रसंग

अपने शब्दोंमें न लिखकर हम पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे-लिखित श्रीकृष्ण-चरितसे ही यहाँ विस्तारके साथ उद्धृत करते हैं।

श्रीकृष्ण वैभवके शिखरपर पहुँच गये और सुदामाकी यह हालत थी, कि खानेको अन्न और पहननेको वस्त्र भी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते थे। सुदामा वेदवेत्ता, जितेन्द्रिय और यदृच्छालाभ-सन्तुष्ट थे। फटे-पुराने कपड़े पहने जो कुछ मिल जाय, उसीपर निर्वाह कर अपने दिन बिताते थे।

सुदामाकी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। परन्तु अन्न-वस्त्राभावको देखकर उसे बड़ा दुःख होता था। पर सुदामा ऐसे दिव्य ब्राह्मण थे, कि वे किसीके सामने हाथ पसारना जानते ही न थे।

एक दिन उनकी पतिव्रता स्त्रीने उनसे कहा,—"महाराज श्रीकृष्ण तो आपके पुराने मित्र हैं। वे ब्राह्मणोंको माननेवाले और दुखियोंके दुःख दूर करनेवाले हैं, उनके पास एक बार क्यों नहीं जाते? मैं कहती हूँ कि आप एक बार उनके पास जाइये, इससे हमारी दरिद्रता दूर होगी। भोज, अन्धक, यादव सबके वे अधिपति हैं और आपके बड़े मित्र हैं। इसमें दोष ही क्या है।" इस तरह अनेक बार स्त्रीकी प्रार्थना सुनकर सुदामाजीने मनमें विचार किया, चलो, एक बार अपने मित्रसे मिल आयें,—और कुछ नहीं, तो उनके दर्शन तो हो जायेंगे।

यही सोचकर सुदामाने द्वारका जानेकी तैयारी की। तैयारी क्या करनी थी? माल-असबाब तो कुछ था ही नहीं, जो बाँधने-बूँधनेकी ज़रूरत होती। मनमें ठाना, कि चलो, बस तैयारी हो

गयी। वही फटी धोती पहने, फटा अगोछा कन्धेपर डाले और फटी पगड़ी सिरपर दिये आप चलनेको तयार हो गये। उन्होंने स्त्रीसे कहा कि 'कुछ भेंट चढ़ानेके लिये हो, तो दे दो।' स्त्रीने चार मुट्ठी चिवड़ा उनके अँगोछेमें बाँध दिया और सुदामाजी द्वारकाधीश श्रीकृष्णजी महाराजसे मिलने चले।

यथासमय सुदामाजी श्रीकृष्णजीके प्रासादके द्वारपर पहुँचे। उस दिव्य और भव्य अट्टालिकाकी शोभा देखते हुए भी सुदामाने वेधड़क भीतर प्रवेश किया। उन्हें किसीने रोका नहीं। तीन चौक लाँघकर वे ऊपर चढ़े और सीधे वहाँ पहुँचे, जहाँ श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें एक पर्यङ्कपर बैठे थे और रुक्मिणी उन्हें पंखा झल रही थीं। सुदामाको देखते ही श्रीकृष्ण पलँगपरसे उठे और दौड़कर उन्होंने उस दरिद्र ब्राह्मणको अत्यन्त प्रेमके साथ अपनी छातीसे लगाते हुए आदरपूर्वक अपने साथ पलँगपर बिठा लिया।

अपने पुराने सहपाठी, लंगोटिये यार सुदामाको देख श्री-कृष्णको बालकपनके दिन याद आ गये, जो फिर कभी आनेवाले न थे। वह गुरुके घरमें रहना, साथ-साथ पढ़ना, खेलना, घूमना, फिरना, गायें चराना, गुरुकी आज्ञासे फूल, कुश और समिधा तोड़ ले आना आदि सभी बातें एक बार आँखोंके सामने घूम गयीं। वह दिन भी कैसे थे, गुरुके घरमें राजा और रङ्क दोनोंके लड़कों-की कैसी सामानता थी! भेद-भावका कैसा अभाव था! यह सोचते-सोचते श्रीकृष्णका ध्यान सुदामाके फटे वस्त्रोंकी ओर

गया और यह देख उनके नेत्र डबडबा गये, कि कहाँ मेरा यह वैभव और कहाँ मेरे मित्र सुदामाकी यह दीनता।

कुछ देरतक इसी प्रकार भावमें डूबे रहकर श्रीकृष्णने रुक्मिणीको सुदामाके पैर धोनेके लिये जल लानेको भेज दिया और आप सुदामासे कहने लगे,—"मित्र! आज कितने दिनोंके बाद मैंने तुम्हें देखा। क्या मेरीही तरह तुम भी घर-गृहस्थीके झंझटोंमें ऐसे फँसे रहे, कि तुम्हें अपने मित्रकी याद ही न आयी? क्या भाभीके प्रेमने तुम्हारे मनसे मेरा वह प्रेम हटा दिया, जो गुरुके गृ में साथ रहते समय था?"

सुदामा इस प्रश्नका क्या उत्तर देते? उनकी आँखोंकी गङ्गा-जमुना ही इसका जवाब दे रही थी। श्रीकृष्ण समझ गये, कि मेरे इस उलाहनसे मित्रको पुरानी बातें याद हो आयी हैं और वे उन्हींको सोच-सोचकर दुखी हो रहे हैं। इतनेमें रुक्मिणी पाद-प्रक्षालनके लिये जल ले आयीं और कृष्ण अपने मित्रके पैर धोने बैठे। उस समय मित्रकी दशा देखकर करुणावतार श्रीकृष्णकी आँखोंसे आँसू ही टपक-टपक कर सुदामाके पैर धोने लगे। इसी प्रेममय दृश्यका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं :—

"ऐसे बिहाल बिवायनसों भये कण्टक-जाल लगे पुनि जोये।
हाय, महादुख पायो सखा! तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामाकी दीन दशा, करुणा करिके करुणानिधि रोये॥
पानी परातको हाथ छुयो नहीं, नैननके जलसों पग धोये॥

बड़े प्रेमसे मित्रके पैर धोकर, श्रीकृष्णने उनका चरणोदक

कृष्ण और सुदामा।

अपनी आँखोंमें लगाया। तदनन्तर उन्होंने सुदामाकी विधिवत् पूजा की। सुदामाके प्रति अपने स्वामीका यह सम्मान-प्रदर्शन देख, श्रीकृष्णकी पतिव्रता तथा पतिकेजीकी जाननेवाली सहधर्मिणियाँ उनपर चँवर डुलाने लगीं। आश्चर्य होनेपर भी उन्होंने यह न पूछा, कि ये कौन हैं और इनका इतना आदर क्यों हो रहा है? वे तो केवल यही सोचकर सुदामाकी सेवामें लग गयीं, कि जो हमारे प्राणनाथके पूज्य हैं, वे हमारे पूज्यतम हैं। आदर-अभ्यर्थना, कुशल-प्रश्न और शिष्टाचारकी बातें समाप्त होनेपर श्रीकृष्ण और सुदामा बचपनकी बातें करने लगे—घण्टों बड़े प्रेमसे वार्तालाप होता रहा।

अन्तमें श्रीकृष्णने पूछा,—"भाभीने कुछ भेंट तो मेरे लिये ज़रूर ही भेजी होगी। निकालो तो सही, देखूँ, क्या है? मैं प्रेमकी भेंटका बड़ा भूखा हूँ।"

सुदामा कुछ लज्जितसे हो रहे थे। पर उन्होंने श्रीकृष्णके आग्रहसे विवश होकर चिवड़ेकी वह पोटरी निकाली। श्रीकृष्णने पोटरी खोलकर चिवड़ा हाथमें लिया और कहा,—"ऐसा चिवड़ा तो मुझे कभी नसीब ही न हुआ।" यह कहकर वह उसे बड़े प्रेमसे खाने लगे। रुक्मिणीका भी अर्द्धाङ्गिनी-भाव देखिये, कि उन्होंने श्रीकृष्णसे चट-पट कहा,—"महाराज, अब, बस कीजिये। उसमें आधा हिस्सा मेरा भी है।"

पति-पत्नीकी उदारता और प्रेम देखकर सुदामाको स्वर्गीय सुखका अनुभव हुआ। इसी सुखके समुद्रमें हिलोरे मारते हुए

सुदामाने वह दिन और रात श्रीकृष्णके यहाँ बिता दी। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादिके पश्चात् श्रीकृष्णने फिर सुदामाका पूजन किया। उन्हें उत्तम भोजन कराया और सुदामाजी जब बिदा हुए, तब उन्हें पहुँचानेके लिये श्रीकृष्ण बहुत दूरतक साथ गये। मार्गमें श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रिय वचनोंसे सुदामाको सन्तुष्ट किया।

सुदामाने श्रीकृष्णसे अपना दुःख निवेदन नहीं किया और श्रीकृष्णने भी नहीं पूछा कि, तुम्हारी घर-गृहस्थीका क्या हाल है। बहुत दूरतक पहुँचाकर जब श्रीकृष्ण लौट गये और सुदामा आगे बढ़े, तब उनके मनमें तरह-तरहकी बातें आने लगीं। घरकी याद आयी,अन्न बिना सूखकर लकड़ी हुई स्त्रीके दीन वचन स्मरण हुए। सुदामा सोचने लगे कि आशा लगाकर बैठी हुई स्त्रीके सामने मैं निराशाकी कुठार लेकर जा रहा हूँ। पर यह सब देवलीला है ! श्रीकृष्ण धन्य हैं, इतना वैभव पाकर भी वह मुझे नहीं भूला ! उसकी स्त्री भी कितनी उदार है। दोनोंने कितनी भक्तिके साथ मेरी सेवा की ? हाँ, मुझे निर्धन देखकर उन्होंने कुछ धन नहीं दिया। पर इसमें श्रीकृष्णकी उदारताही देख पड़ती है। उन्होंने यह सोचा होगा कि, इस दरिद्र ब्राह्मणको धन देनेसे वह उन्मत्त होकर परमात्माको भूल जायेगा। धन्य हो, श्रीकृष्ण ! तुम धन्य हो। इस प्रकार सात्विक सुदामाके विरक्त अन्तःकरणमें नाना प्रकारकी विचार-तरंगें उठ रही थीं और वे रास्ता तै करते चले जाते थे।

जब सुदामा अपने ग्रामके समीप आये, तब सभी बातें विचित्र देख पड़ने लगीं। दूरसे अपने घरकी ओर उन्होंने देखा, तो वह

घर नहीं दिखाई दिया। वहाँ सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान प्रकाशसे युक्त दिव्य अट्टालिकायें दिखाई दीं। उसके आस-पास विचित्र उपवन, उद्यान और सरोवर दिखाई देने लगे। पक्षियोंके गुंजारके साथ चारों ओर मंगल-गीत और वाद्य सुनाई देने लगे। सुदामा मन-ही-मन कहने लगे,—"किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत्" यह कौन स्थान है, किसका स्थान है, वह ऐसा कैसे हो गया ? वे यही सोच रहे थे। इतनेमेंही दिव्य कांतिवाले स्त्री पुरुष मधुर गीत गाते और बाजे बजाते हुए उनकी अगवानीके लिये आये। लक्ष्मीके समान परम रूपवती स्त्री, पतिके आगमन-की सूचना पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो घरसे बाहर निकली। पतिके दर्शन कर प्रेम और उत्कण्ठासे उनकी आँखें डबडबा आयीं और आँखें मीचकर वह पतिके चरणोंपर गिर पड़ी। सुदामाने उसे प्रेमालिङ्गन दिया और अब उनकी समझमें आ गया, कि यह सब श्रीकृष्णकी माया है।

धन्य हो श्रीकृष्ण! तुम्हारा मित्र-प्रेम धन्य है! धन्य हो सुदामा! तुम्हारा मित्र-प्रेम धन्य है! ऐसी आदर्श-मैत्री वहाँ होगी, जहाँ इस आदर्शको सामने रखकर मित्र अपना मित्र-धर्म निबाहेंगे। वहाँ सदा स्वर्गीय सुखका अनुभव होता रहेगा।

द्रोण और द्रुपदमें जो मित्रता नहीं निभ सकी और जो शत्रुतामें परिणत हो गयी, वही मित्रता श्रीकृष्ण और सुदामामें कैसे आनन्दसे निभ जाती है और कैसे स्वर्गीय सुखका अनुभव कराती है। इसमें रहस्यकी बात यही है, कि द्रोण और द्रुपद

समानशील नहीं थे और श्रीकृष्ण-सुदामा समानशील थे। श्रीकृष्ण जैसे उदार थे, वैसे ही सुदामा भी उदार थे। सुदामाकी यह उदारताही नहीं तो और क्या है, कि एक तो श्रीकृष्णके पास याचना करने जाता नहीं, मिलने जाता है तो भी अपनी दीनता उसपर एक शब्दसे भी नहीं प्रकट करता और श्रीकृष्णसे विदा होकर जब देखता है, कि श्रीकृष्णने हमें कुछ भी विदाई नहीं दी, तो धन्य है सुदामाकी उदारता, जो वह यह सोचता है, कि श्रीकृष्णने हमें इसीलिये कुछ न दिया, कि हम कहीं विषयान्ध होकर अपनी सद्वृत्ति—सत्शील न खो बैठें। श्रीकृष्ण जैसे विशाल-हृदय पुरुषके लिये सुदामा जैसे विशाल-हृदय पुरुष मित्र सोहते हैं। एक धनी था और दूसरा निर्धन; पर दोनों समान-शील थे। इसीलिये सुदामाकी चिवड़ेकी पोटली और श्रीकृष्णकी सुदामा-नगरी दोनोंका मूल्य एकसा है। क्या धनी पाठक अपने निर्धन सखाओंसे ऐसी मैत्री निबाहेंगे जैसी श्रीकृष्णने निबाही?

२—दमन और पिथियस।

यूनानी दन्त-कथाओंमें एक कथा है, कि दमन और पिथियस नामके दो मित्र थे। इनकी मित्रता, सदाचार, विद्वत्ता आदि गुण प्रसिद्ध थे। एक बार डायोनिशस नामके स्वेच्छाचारी पर-दुःख-शीतल राजाकी ऐसी मर्जी हुई, कि दमनको किसी बातपर उसने फाँसीकी आज्ञा दे दी। इस राजाज्ञासे दमनको कौन बचा सकता था? दमनका फाँसी लटकना निश्चित था। फाँसीका दिन भी निश्चित हुआ। दमनके घरके लोग, स्त्री-

पुत्रादि उस सिराक्यूज नामक स्थानसे बहुत दूर थे—समुद्र मार्गसे कई दिनकी यात्राके बाद वहाँ पहुँचना होता था। भोले, सत्य-प्रिय दमनको स्वभावतः ही मरनेके पूर्व अपने बाल-बच्चोंको एक बार देख लेनेकी इच्छा हुई। उसने राजासे विनय की, कि 'मुझे एक बार घर हो आनेकी अनुमति दीजिये, सबसे मिलकर आऊँ, फिर खुशीसे सूलीपर चढ़ूँगा।' राजाने कहा, 'कि तुम यहाँसे निकलकर फिर यहाँ फाँसी लटकने आओगे, इसका मुझे विश्वास नहीं है। हाँ, यदि किसीको विश्वास हो और वह तुम्हारी जगह क़ैद होने और तुम्हारे न लौटनेपर फाँसी लटकनेको तैयार हो, तो तुम्हें मैं घर हो आनेकी अनुमति दे सकता हूँ।' जवाब सुनकर दमन निराश हुआ। पर दमनके मित्र पिथियसको जब राजाकी यह शर्त्त मालूम हुई, तब वह राजाके पास पहुँचा और उसने राजासे दमनके स्थानमें बैठनेकी इजाजत चाही। राजा मन-ही-मन पिथियसको मूर्ख समझ कर हँसा। पर उसने पिथियसको रखकर दमनको छोड़ना स्वीकार किया।

दमन अपने घर चला गया। कई दिन हो गये; पर दमनके लौटनेकी कोई ख़बर नहीं। आखिर, फाँसी जिस दिन दी जानेको थी, वह दिन भी उदय हुआ। पर दमनका पता नहीं। बादशाह डायोनिशस मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ; क्योंकि उसे दमनके न आनेसे पिथियसको ज़लील करनेका मौका मिला। वह क़ैद-खानेमें गया, जहाँ पिथियस क़ैद था। उसके पास जाकर बाद-शाहने उससे कहा,—"पिथियस! देखी, इस संसारकी मित्रता?

दमन तो तुम्हारा बड़ा भारी मित्र था। मित्रताका कैसा मजा चखाया! तुमने तो उसके लिये अपनी जान आफ़तमें डाल दी। ज़रा सोचो तो यह तुम्हारा मित्र इस समय क्या कर रहा होगा! अपनी स्त्रीको लिये बैठा होगा, गुलछर्रे उड़ा रहा होगा। तुमने क्या समझा था, कि वह तुम्हारी जान बचाने और अपनी जान देनेको यहाँ लौट आयेगा? दुनियामें तुम्हारे जैसे नादान तुम्हीं हो! कहो, अब क्या कहते हो?"

पर बादशाहकी इन कटूक्तियोंका उसपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। बादशाहने देखा, कि यह पहलेसे भी अधिक प्रसन्न है। बादशाहने सोचा, कैसा मूर्ख है!

पिथियस मन-ही-मन दमनके न आनेसे इसलिये प्रसन्न हो रहा था, कि दमनकी यदि रक्षा हुई, तो एक महान् उपकारी पुरुषके जीवनकी रक्षा होगी और उससे बहुतोंका उपकार होगा। ईश्वर करे,दमनका आना रुक जाये। पर पिथियसको यह पूर्ण विश्वास था, कि दमन बिना आये न रहेगा। हाँ, अबतक वह नहीं आया है, यह उसकी अपनी इच्छासे नहीं, बल्कि किसी प्राकृतिक विघ्नसे उसका आना रुका है। पिथियस यही मना रहा था, कि यह विघ्न उसे और थोड़ी देरतक रोके रहे। उसने बादशाहसे कहा,—"हवा इस समय उलटी बह रही है। इससे यह आशा होती है, कि मेरे मित्रका आना रुक जायेगा।"

फाँसीका वक्त आ गया! घण्टी बजी। जल्लाद पिथियसको वधस्तम्भके पास ले गये। यह दृश्य देखनेके लिये सहस्रों नर-

नारी वहाँ एकत्र हुए। बादशाह दायोनिशस भी अपने नेत्र सफल करने वहाँ आ बैठा। फाँसी लटकानेके पूर्व पिथियसको आज्ञा हुई, कि जो कुछ कहना हो, कहो। पिथियसने कहा,—"मेरा मित्र आ रहा है, आया ही समझिये; पर मेरी यह इच्छा है, कि उसके आनेके पूर्व मैं फाँसी लटक जाऊँ, जिसमें उसके महान जीवनकी रक्षा हो। उसके कुटुम्ब, मित्र, परिजन और देशका उससे उपकार हो, सबको आनन्द हो। अब तक दमन नहीं आ सका, इसका कारण यही है, कि हवाका रुख विपरीत रहा है। परन्तु कलसे हवाका रुख बदला है, अब वह बहुत जल्द यहाँ आ जायेगा। इसलिये जल्लादो! अपना काम जल्दी पूरा करो।"

उसी क्षण भीड़मेंसे एक आवाज़ आयी,—"ठहरो, ठहरो, दमनके लिये पिथियसको न मारो। यह लो, मैं आ गया!" सबने देखा, भीड़मेंसे रास्ता चीरता हुआ दमन हाँफते हुए घोड़ेपर सवार बड़ी तेज़ीके साथ फाँसीकी टिकटीके पास आ पहुँचा। घोड़ेपरसे कूद कर वह चट फाँसीकी टिकटीपर जा खड़ा हुआ। मित्रको आलिंगन देकर उसने कहा,—"प्राणोंसे भी अधिक प्यारे मित्र! मित्रके उपकारके लिये अपने प्राणोंको न्योछावर करनेवाले सच्चे मित्र! मेरे प्राणोंसे तुम्हारे प्राण बहुत अधिक मूल्यवान हैं। मैं सुखी हूँ, जो ऐसे प्राणोंकी रक्षा हुई। आनन्द है! परमानन्द है!!"

पिथियसने शोकाकुल होकर कहा,—"रे निर्दय काल! अपनी गतिको तूने नहीं रोका!"

इन दोनों मित्रोंका यह अलौकिक संवाद और यह अद्भुत दृश्य देख कर दायोनिशसकी आँखोंपरसे परदा हट गया। उसने किसी स्वर्गीय प्रेम और दैवी चरितका अनुभव किया। राजसिंहासनसे नीचे उतर कर उसने दोनोंके सामने अपना सीस झुकाया और कहा,—"आप दोनों धन्य हैं! आपकी यह अलौकिक मित्रता देखकर मुझे यह मालूम होता है, कि यह मेरे जैसे अधम पापात्माओंके लिये उद्धारका मार्ग दिखानेवाला प्रकाश है। हे अप्रतिम मित्रो! क्षमा करो, इस नीचको क्षमा करो और अपना दास बना कर मेरे अन्तःकरणको भी ऐसा बना दो, कि मैं भी इस दैवी चरितका अनुकरण करूँ।

३—चन्दनदास और राक्षस।

राक्षस,—(आवेगसे, आप-ही-आप) "अरे इसके मित्र विष्णुदासका प्रिय मित्र तो चंदनदास ही है, और यह कहता है, कि मित्र ही उसके विनाशका हेतु है! इससे तो यही प्रकट होता है, कि चंदनदासपर सङ्कट आ पड़ा है, जिससे विष्णुदास आगमें जल मरता है। (प्रकट) भाई! तुम्हारे प्रिय मित्रका उज्ज्वल चरित्र मैं विस्तारके साथ सुना चाहता हूँ।"

पुरुष,—"आर्य! क्षमा कीजिये, अब मैं मन्दभाग्य मरणमें अधिक विघ्न सहनेमें असमर्थ हूँ।"

राक्षस,—"कहो भाई! कहो, यदि सुनने योग्य बात है, तो अवश्य कहो! ऐसा क्यों करते हो?"

पुरुष,—"राम ! राम !! अच्छा कहता हूँ, सुनिये,—आर्य !"

राक्षस,—"हाँ, कहो, मैं तो तैयार बैठा हूँ—

पुरुष,—"इस नगरमें एक सेठ चंदनदास नामका जौहरी है।"

राक्षस,—(सोचमें पड़कर, आप-ही-आप) "दैवने हमारे दुःखका द्वार इस प्रकार खोला। हृदय! कठिन हो जा। तुझे एक मर्मभेदी बात सुननी है। (प्रकट) हाँ, वह मित्रवत्सल विख्यात सत्पुरुष है, उसका क्या ?"

पुरुष,—"वह विष्णुदासका प्राणप्रिय मित्र है। इसलिये विष्णुदासने मित्रके स्नेहसे आज चन्द्रगुप्तसे प्रार्थना की।"

राक्षस,—"क्या ?"

पुरुष,—"कि महाराज! मेरे घरमें कुटुम्बके निर्वाह-योग्य धन जो कुछ है, वह ले लो और मेरे मित्र चन्दनदासको छोड़ दो।"

राक्षस—(आप-ही-आप) "धन्य है विष्णुदास! कैसा अपूर्व मित्र-स्नेह दिखलाया है!

"जा धनके हित नारी तजैं पति पूत तजैं पितु सीलहि खोई।
भाई सों भाई लरैं रिपुसे पुनि मित्रता मित्र तजैं दुख जोई॥
ता धन कों बनिया ह्वै गिन्यौ न दियौ दुख मीत सों आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई॥"

(हरिश्चन्द्र)

(प्रकट) उसके ऐसा कहनेपर मौर्यने क्या उत्तर दिया ?"

पुरुष,—"आर्य! इस प्रकार जब सेठ विष्णुदासने प्रार्थना की, तब चन्द्रगुप्तने उत्तर दिया,—"हमने इसे धनके लिये नहीं क़ैद

किया है, बल्कि इसलिये किया है, कि इसने मन्त्री राक्षसका कुटुम्ब छिपा रखा है और बहुत कहनेपर भी नहीं देता। अब भी यह दे दे, तो छूट जाये, नहीं तो फाँसीपर चढ़ेगा।"

ऐसा कह चन्दनदासको फाँसी-घर ले जानेकी आज्ञा दी। तब यह सोच कर, कि चन्दनदासके बुरे समाचार कानमें पड़े उससे पहले ही चिता तैयार कर उसमें जल मरना अच्छा होगा। सेठ विष्णुदास नगर छोड़कर चले गये; और मैं भी इस पुराने बगीचेमें इसलिये आया हूँ, कि प्राणप्रिय मित्र विष्णुदासके बुरे समाचार कानमें पड़ें, उससे पहले ही फाँसी लगा कर अपने प्राण दे दूँ।"

राक्षस,—"हैं! चंदनदासको सूली दे दी गयी?"

पुरुष,—"हाँ, दे दी गयी होगी या दी जाने वाली होगी। अब भी उससे मंत्री राक्षसका कुटुम्ब देनेके लिये बार-बार कहते हैं, पर वह मित्र-वत्सल सेठ मानता नहीं, शायद इसी कारणसे उसका मरण अभी तक रुका हो तो हो सकता है।"

राक्षस—(हर्षके साथ, आप-ही-आप)

"मित्र परोच्छहुमें कियो, सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिवि सो लियो, तुम या काल कराल॥"

(हरिश्चन्द्र।)

(प्रकट) भाई, जाओ, जल्दी जाकर तुम विष्णुदासको जल मरनेसे रोको, मैं चन्दनदासको अभी छुड़ाता हूँ।

पुरुष,"—पर आर्य! किस उपायसे,चन्दनदासको छुड़ाइयेगा?"

राक्षस—(तलवार खींच कर) इससे ! इससे ! देखो इस साहसके साथीको—

समरसाध तन पुलकित नित साथी मम करको
रन महँ बारहिं बार परिच्छयो जिन बल परको।
बिगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत ;
मीत कष्ट सों दुखिहु मोहिं रन हित उमगावत। (हरि०)

पुरुष,—"तो क्या राक्षस शुभ नामधारी मन्त्री आप ही हैं ! आर्ये ! सेठ चन्दनदासका जीव बचानेसे समझमें तो ऐसा ही आता है ; पर विषम दशाके कारण निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता। कृपा करके मेरा सन्देह मिटाइये। (पैरोंपर गिरता है)

राक्षस,—"हाँ भाई, मैंही हूँ स्वामीका सत्यानाश देखनेवाला, मित्रका प्राण लेनेवाला, राक्षस नाम सार्थक करनेवाला अशुभ नामवाला राक्षस मैं ही हूँ।"

पुरुष,—(हर्षके साथ पैरोंपर गिरकर) "भला, मेरा बड़ा भाग्य जो भगवान्‌की कृपासे आज आर्यका दर्शन पाकर मैं परम कृतार्थ हुआ।"

राक्षस,—"उठो भाई ! वृथा समय नष्ट न करो। जाओ, विष्णुदाससे कहो, कि राक्षस चन्दनदासको मौतसे छुड़ाता है।" ('समरसाध' इत्यादि कहकर नंगी तलवार हाथमें लिये घूमता है)

पुरुष,—"क्षमा करो मन्त्रीजी ! पहले दुरात्मा चंद्रगुप्तने आप शकटदासके लिये सूलीकी आज्ञा की थी। उसको जल्लाद लोग वध स्थानमें ले आकर सूली देते थे कि इतनेमें ही न जाने कौन

आया और शकटदासको लेकर परदेश भाग गया। इसलिये इन्हीं दुष्टोंको मारो, क्योंकि इन्होंने असावधानी की। यों कहकर दुरात्मा चन्द्रगुप्तने आर्य शकटदासका क्रोध जल्लादोंपर उतारा और उन्हें सूली दिलवा दी। तबसे जल्लाद लोग अपने आगे-पीछे किसी हथियारवाले अपरिचित मनुष्यको देखकर अपने प्राण बचानेकी खातिर सूलीवालेको वहीं खतम कर देते हैं। इसलिये, मन्त्रीजी! अगर आप हथियार लेकर पधारेंगे, तो चन्दनदासका वध और भी जल्दी होगा। (गया)

राक्षस,—"नहिं शास्त्रको यह काल यासों मीत जीवन जाइहै।
जो नीति सोचै या समय सो व्यर्थ समय नसाइहै।
चुप रहन हूँ नहिं जोग जब मम हित विपति चन्दन पर्‌यो।
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय कर्‌यो।

(जाता है) (हरिचन्द्र।)

(सूलीके साथ वध्यके वेशमें स्त्री-पुत्र सहित, चाण्डाल वेणुवेत्रक के साथमें चन्दनदास प्रवेश करता है)

स्त्री,—(आँखोंमें आँसू भरकर) "जो हम लोग अपनी बात बिगड़नेके डरसे नित्य फूँक-फूँककर पैर धरते थे, उन्हींको आज चोरोंकी तरह मरना पड़ता है! भाग्यको नमस्कार है! ठीक है, निर्दयीके लिये तो सभी एकसे हैं। इसीलिये तो—

छोड़ि माँस भख मरन भय जियहिं बापु तृन-घास।
तिन गरीब-मृगको करहिं निरदय व्याधा नास॥ (हरि॰)

(चारों ओर देखकर) "अरे विष्णुदास! विष्णुदास! क्या

मुझ उत्तर भी नहीं देते ? ठीक है, ऐसे समयमें बिरला ही टहर सकता है।"

चंदन०,—(सजल नेत्र) "देखो-देखो, अपनेको अकर्मण्य समझ शोकसे सूखा-रूखा मुँह किए आँसू भरी आँखोंसे एकटक मेरी ही ओर देखते हमारे पीछे पीछे चले आते हुए हमारे मित्रको !"

वेणुवेत्रक,—"अजी चन्दनदास ! सूली देनेकी जगह आ गयी इसलिये अब तुम स्त्री और पुत्रको विदा करो।"

चन्दन०,—"प्रिये ! तुम लड़केको लेकर लौट जाओ, अब साथ चलना ठीक नहीं।"

स्त्री,—(आँसू भरकर) "प्राणनाथ ! परदेश नहीं, आप परलोक जा रहे हैं। इसलिये हमें क्यों विदा करते हैं ?"

चन्दन०,—"तो तुम चाहती क्या हो ?"

स्त्री,—"आपके चरणोंके साथ जाकर कृतार्थ होना।"

चदन०,—"तुम्हारा यह संकल्प ठीक नहीं। तुमको इस पुत्रकी रक्षा करनी चाहिये। यह बेचारा बालक संसारका अभी कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है।"

स्त्री,—"भगवान् अपने शुभ आशीर्वादसे इसकी रक्षा करगे। (पुत्रसे) बेटा, पिताके पैर छू। यह अन्तिम मिलन है।"

पुत्र,—(पैरोंपर गिरकर) "पिता, तुम्हारे बिना मैं क्या करूँ ?"

चदन०,—"बेटा ! जहाँ चाणक्य न हो, ऐसे देशमें रहियो।"

वेणु०,—"लो चदनदास अब तैयार हो जाओ ; यह सूली खड़ी है।"

स्त्री,—"हाय! मारे डालते हैं; कोई छुड़ाओ रे! कोई छुड़ाओ।"

चदन०,—"अरे इस तरह कातर होती है? राजा नन्द अब नहीं हैं, जो दुखियोंकी बात सुनते थे।"

चाण्डाल वज्रलोमक,—"अरे वेणुवेत्रक! पकड़ चन्दनदास को स्त्री और बालक आप ही रो-पीटकर चले जायेंगे।"

वेणु०,—"यह लो, पकड़ता हूँ, वज्रलोमक! पकड़ता हूं।"

चन्दन०,—"अरे भाई! थोड़ी देर तो और ठहर जा। मैं अंतिम बार पुत्रसे तो मिल लूँ। (पुत्रसे मिलकर मस्तक सूँघकर) बेटा! मित्रके पीछे मरना, भला, इसमें मरना तो निश्चय है ही।"

पुत्र,—"पिता! भला यह भी आपके कहनेकी बात है? यह तो अपना कुल धर्म ही है।" (पैरों पड़ता है)

(चांडाल लोग चंदनदासको पकड़ते हैं)

स्त्री,—(छाती पीटती और चिल्लाती हुई) "हाय! हाय रे! मार डाला। अरे! कोई छुड़ाओ—कोई छुड़ाओ।

(इसी समय परदा हटाकर एकदम राक्षस आता है।)

राक्षस,—"सुन्दरी! मत डर, मत डर, अरे ओ चांडालो! ठहरो, चन्दनदासको न मारो। सूली इस राक्षसके गलेमें दो।"

मित्रोंकी परख

६

मित्रताका कोई काल निश्चित नहीं है। बचपनके समान यौवनमें अथवा इसके बाद भी मित्रता स्थापित हो सकती है। अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें ऐसा हुआ है, कि बचपनके साथी छूट गये हैं, नये साथी हो गये हैं, नवीन मैत्री स्थापित हुई है। मैत्री चाहे जिस अवस्थामें हुई हो, मैत्री तो मैत्री ही है और उसकी महिमा सदा एकसी रहती है। बचपनमें होनेवाली मैत्री लिखने-पढ़ने और खेल-कूदके लिये होती है। चित्त अत्यन्त निर्मल होनेसे इस समय स्थापित होनेवाला स्नेह बहुत ही गाढ़ा होता है। इसके बादके विद्यार्थी-जीवनमें भी अध्ययनके लिये ही मैत्री होती है और यह स्नेह भी उत्तम होता है। इसके बादके जीवनमें नाना कारणोंसे नानाविध मनुष्योंके साथ मेल-जोल होता है। इस समयमें होनेवाली सच्ची मित्रता भी वैसी ही गाढ़ी होती है। परन्तु इस समयमें होनेवाले मित्रोंमें अनेक बार सन्मित्र और कुमित्र, असावधानीसे एक ही रूपमें दिखाई देते हैं। और यही समय इस योग्य भी होता है, कि

मनुष्य सन्मित्र और कुमित्रकी परख भी कर सके। बचपनके भी अनेक साथियोंकी परख इस वयसमें हो जाती है। इसलिये मित्रोंकी परख करनेके उपयुक्त समयमें यह परख करना अत्यन्त महत्वका विषय है।

"जीवनके आनन्द" के लेखकने अपने ग्रन्थमें सुकरातके ये वचन उद्धृत किये हैं :—

"सब लोग घोड़े, कुत्ते, संपत्ति, मान, सम्मान इत्यादिकी हवस करके उनके पानेके लिये परिश्रम करते हैं। परन्तु मुझे किसी मित्रके समागमका लाभ होनेसे जितना सन्तोष होगा, उतना उन सब चीज़ोंके मिलकर प्राप्त होनेपर भी नहीं होगा। (जिनके पास अतुल सम्पत्ति है, उन्हें इसका कुछ-न-कुछ अंदाज़ होता हो है, कि हमारे पास क्या मालमता है, परन्तु उनके मित्र यद्यपि थोड़े ही क्यों न हों, तथापि वे कितने हैं, इसका ज्ञान उन्हें नहीं होता) किसीने अगर प्रश्न किया और उन्होंने मित्रोंकी गिनती करनेका यत्न भी किया, तो भी वे अपने मित्रोंके विषयमें इतने उदासीन होते हैं, कि जिन्हें उन्होंने पहले मित्रोंमें गिना था, उन्हें अब छोड़ देते हैं। परन्तु यदि अपनी मालियतसे मित्रोंकी तुलना की जाय तो क्या वे अधिक कीमती नहीं साबित होंगे? सब चीज़ोंके मूल्यके विषयमें बहुधा सबमें मतभेद होता है, परन्तु मित्रोंके मूल्यके विषयमें सबका एक मत ही होता है। अपने पास बहुतसा धन, अधिकार और सब सुखोंके साधन प्राप्त होनेसे हमारा जो गौरव है, उसके द्वारा हम घोड़े, नौकर-चाकर,

कीमती वस्त्र इत्यादि खरीद सकते हैं; परन्तु इस जीवनमें अत्यन्त मूल्यवान और हितकारी मित्र-रूपी वस्तुका संग्रह नहीं करते, यह कितनी ना-समझीकी बात है ? अगर कोई पशु मोल लेता हो, तो हम बड़ी फिक्रके साथ उसके पहलेके हाल उसकी पुख्ता और स्वभावकी परीक्षा करते हैं ; परन्तु जिस मित्रके समागमसे हमारी जीवन-यात्राके कुछ-न-कुछ भले या बुरे होनेकी सम्भावना अवश्य रहती है, उसका चुनाव केवल संयोगवश ही कर लेते हैं।"

इसीके सम्बन्धमें लार्ड एलेन वेरीका यह कथन यहाँ उद्धृत करने योग्य है—

"सचमुच ही इस संसारमें दुर्भाग्यवश उदार-चित्त मित्र थोड़े हैं और एक भी क्षुद्र शत्रु हुआ, तो वह हमारी हानि करनेके लिये बली हो जाता है। यह बात नहीं है, कि हम जिन-जिन मनुष्योंसे मिलते हैं, वे सबके सबही स्वभावतः दुष्ट होते हैं या जान-बूझकर हमें कुमार्गमें लगानेवाले होते हैं ; किन्तु बात यह है, कि वे लोग इस बातपर ध्यान नहीं देते, कि हम दूसरेसे क्या बोलते हैं या क्या नहीं बोलते। स्वयं अपने अन्तःकरणकी ओर ध्यान न देकर हमें वे योग्य शिक्षा नहीं देते। अपनी बोलचालमें लड़कपनकी बातें और गपशप किया करते हैं। वे यह समझनेका प्रयत्न ही नहीं करते, कि यदि वे थोड़ा हो परिश्रम करें, तो भी उनकी बातचीत थोथी न हो कर बोध और आनन्द-जनक हो सकती है अथवा नीरस और निष्फल न होगी।

"हर एक मनुष्यसे उसके योग्यतानुसार कुछ-न-कुछ शिक्षा प्राप्त होती ही है, केवल वह शिक्षा प्राप्त कर लेनेकी इच्छा मनमें अवश्य होनी चाहिये। ऐसे सज्जनोंने चाहे बाह्य-रूपमें हमें कुछ न सिखाया हो, तथापि वे अन्य रूपमें हमें कुछ-न-कुछ सूचना देही देते हैं या स्नेह-भावके साथ हमारी सहायता करते ही हैं। अगर उन्होंने इन बातोंमेंसे कुछ भी न किया, तो उनका समागम केवल समय खोना ही है। ऐसे लोगोंकी मित्रता तो क्या, उनसे जान-पहचान न हो तो भला है।

"अपने संगी-साथियोंका चुनाव जितनी बुद्धिमानी और दूरदर्शिताके साथ हम करेंगे, उतनी ही हमारी जीवन-यात्रा सुख-मय और सदाचार पूर्ण होगी। अगर हम दुर्जनोंका संग करेंगे, तो वे हमें खींचकर अपनी नीचता तक पहुंचा देंगे। सज्जनोंका संग करनेसे वे सर्वथा हमारा उत्कर्ष ही करेंगे।"

इस लिये मित्रोंकी परखका होना और कुमित्रको त्याग सन्मित्रका संग्रह करना अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसमें सन्देह नहीं, कि जिस रुचि, प्रवृत्ति तथा शील-स्वभावका मनुष्य होगा, वह वैसीही रुचि, प्रवृत्ति और शील-स्वभाववाले मनुष्यसे आकर्षित होगा और ऐसेही समशील स्वभाववालोंमें सच्ची मित्रता हुआ करती है। परन्तु संसारका कोई कार्य निर्विघ्न नहीं है। यही नहीं, प्रत्युत "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" श्रेय कार्यमें विघ्न अधिक ही हुआ करते हैं। मित्र रूप धारण कर अनेक अमित्र या कुमित्र अपने मित्र हो जाते हैं और पीछे उनसे बड़ा धोखा होता है।

इसलिये इस विषयमें सावधान रहना अत्यावश्यक है। मित्रका चुनाव बहुत ही समझ-बूझ कर करना चाहिये। जिन मित्रोंसे हमें अपने वास्तविक हितका कोई परामर्श नहीं मिलता, जिनसे कोई शिक्षा नहीं मिलती, जिनका संग हमें नीचेकी ओर ही ले जाता है, ऐसे समय और शक्तिका अपव्यय करानेवाले मित्र कुमित्र जान कर त्यागही देने योग्य होते हैं। अमीरोंके दरबारमें ऐसे लल्लू बुद्धू अनेक होते हैं, जिनका काम ठकुरसुहाती करना और रुपया उड़ाना ही होता है। ग़रीबोंके पास भी ऐसे मित्र पहुँचते हैं, जो उन्हें मौक़ा पाकर अपने स्वार्थपर बलि चढ़ा देते हैं। ऐसे कपटी मित्रोंको त्याग देना चाहिये। कहा है :—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

इसीका भाव गुसाईंजीके शब्दोंमें इस प्रकार है :—

आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

तुलसीदासजीने मनुष्यके चार शूल बताये हैं—(१) शठ सेवक, (२) कृपण राजा, (३) व्यभिचारी स्त्री और (४) कपटी मित्र। परन्तु कपटी मित्र "विष कुम्भं पयोमुखं" होनेसे उसके जालमें असावधान मनुष्य अनायास फँसता है। इसलिये मित्रोंके चुनावमें तथा संग सोहबतमें सावधान रहना चाहिये।

जिस मनुष्यमें सहृदता नहीं है, वह मित्रताका पात्र नहीं होता। इसलिये अपनेको मित्र बनाने वालोंमें यह देखना

चाहिये, कि कौन सहृदय हैं और कौन केवल किसी लाभकी आशासे साथ लगा रहता है। इसकी पहचान करना कुछ कठिन नहीं है। पर जो लोग ऐसी पहचान नहीं कर सकते, वे सच्चे मित्र नहीं पा सकते। उसी प्रकार सच्चा मित्र कौन है और कौन केवल खुशामदी है, यह भी जानना चाहिये। खुशामद सबको प्यारी होती है और इससे अनेक बार लोग सच्चे और झूठेका भेद भूल जाते हैं। सच्चा मित्र कभी खुशामद नहीं करेगा, हितकी ही बात कहेगा और कभी-कभी हितकी बात बड़ी कड़वी होती है। खुशामदी कभी हितकी बात नहीं कहेगा, मीठे वचनसेही फँसाये रहेगा और अन्तमें किसी भयानक गर्त्तमें ढकेल कर चलता बनेगा। मित्र बन्धुओंने अपने आत्म-शिक्षणमें चापलूसोंके ये लक्षण दिये हैं :—(१) चापलूस अपने सिद्धान्तोंकी कुछ भी परवाह किये बिना आपके सभी विचारोंसे सहमत होगा, किन्तु मित्र ऐसा नहीं करेगा। (२) चापलूस एक सिद्धान्तपर न चलकर पृथक्-पृथक् समयोंमें आपके विपरीत विचारोंका भी समर्थन करेगा, जो बात मित्रसे न होगी। (३) चापलूस आपकी उचितसे अधिक प्रशंसा करेगा, यहाँतक कि आपके साधारण कथनोंको भी सातवें आसमानपर चढ़ा देगा। (४) यदि आपकी किसी सच्चे मित्र अथवा कुटुम्बीसे मन-मैल हुई तो चापलूस और भी उसे बढ़ानेका प्रयत्न करेगा। (५) जब आपको चापलूसकी सहायताकी आवश्यकता न होगी, तब वह सहायता करनेकी परम प्रगाढ़ इच्छा प्रकट किया करेगा, किन्तु

समयपर भट निकल जायगा।" कुमित्रसे सन्मित्रकी परख करनेमें ये ये बातें सहायक हो सकती हैं।

सन्मित्रकी मित्रता और कुमित्रकी मित्रतामें एक और बड़ा भारी भेद है जो नीचे लिखे श्लोकमें वर्णित है—

आरम्भगुर्वी क्षयिनी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध-परार्द्ध-भिन्ना,
छायेव मैत्री खल सज्जनानाम्॥

अर्थात् "खलोंकी मैत्री दिनकी पूर्वार्धवाली छायाके समान पहले बड़ी होती है और पीछे पीछे कम होती जाती है; और सज्जनोंकी मैत्री दिनकी उत्तरार्धवाली छायाके समान पहले छोटी होती और पीछे दिन दिन बढ़ती ही जाती है।"

जो मैत्री जितनी एक बार हुई, उससे वह घटनी न चाहिये; उतनी सदा बनी रहे और हो सके, तो वह समयके साथ बराबर बढ़ती रहे। सन्मित्रोंकी मैत्री ऐसीही होती है। कुमित्रको त्याग कर सन्मित्रका ही संग्रह करनेमें सबको सावधान और तत्पर रहना चाहिये।

सन्मित्रके लक्षण

७

[जिनके क्रोधसे भीत होना पड़ता है, शंकित मनसे जिनकी सेवा करनी होती है, वे मित्र-रूपसे कदापि नहीं ग्रहण किये जा सकते। पिताके समान विश्वासपात्र व्यक्ति ही यथार्थ मित्र होता है, औरोंके साथ मित्रता केवल सम्बन्ध-मात्र है। कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो मित्र-भाव रखते हैं, वे सच्चे मित्र हैं।

चंचल चित्त, स्थूल बुद्धि और वृद्धोपदेश-पराङ्मुख व्यक्तिके साथ मित्र-भाव नहीं ठहरता। जैसे हंस-वृन्द सूखे सरोवरको छोड़ देते हैं, वैसेही सब अर्थ अव्यवस्थित चित्त, इन्द्रियपरवशवर्ती व्यक्तिको छोड़ देते हैं। दुर्जनोंका स्वभाव चपल मेघके समान अव्यवस्थित होता है। उन्हें सहसा क्रोध भी आ जाता है और बिना किसी कारणके अकस्मात् प्रसन्नता भी। जो व्यक्ति मित्रों द्वारा सत्कार और कृतकार्यता प्राप्त करके भी उनका उपकार नहीं करता, वह कृतघ्न है। उसके मरनेपर उसके शरीरको चील कौए भी स्पर्श नहीं करते। धनी हो या निर्धन, अर्चना करना नितान्त कर्त्तव्य है]

—महाभारत।

सुप्रसिद्ध आंग्ल तत्त्ववेत्ता बेकनने अपने मित्रोंकी इस तरह याद की है—

"हमारा यदि कोई सच्चा मित्र न हो, तो यह जगत् निर्जन-

वनके समान प्रतीत होगा और हमारा जीवन एकान्त-वासमें व्यतीत होनेके कारण दुःखदायी होगा। जब अपनी चित्तवृत्ति और विचारोंमें उधेड़ बुन होने लगती है, उस समय मन किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है और हम अन्धेरेमें जिस प्रकार टटोल टटोल कर चलते हैं, उसी तरह वर्तावमें भी चलते हैं। उस समय मित्रोंके समागमसे हमें उजेला मिलकर सीधा मार्ग दिखाई पड़ने लगता है और विपत्तिके समय हमारा मन प्रसन्न रहता है। उनके साथ वार्त्तालाप करनेसे अपने विचार एकसे जारी रह कर योग्य प्रणाली मिलती है। वे विचार यदि लिखे जायँ तो कैसे होंगे, यह मालूम हो जाता है और अपने आप उनका मनन करनेसे जितना ज्ञान होता है, उतना ज्ञान मित्रोंके साथ घड़ीभर वार्तालाप करनेसे हो जाता है और हम अधिकाधिक बुद्धिमान बनते चले जाते हैं।"

(जीवनके आनन्द)

एक विद्याव्यासंगी लेखकने अपने कार्यक्षेत्रके अन्दर मित्रों-से होनेवाले लाभका जो यह वर्णन किया है, वह केवल उसी कार्यक्षेत्रमें नहीं, प्रत्युत सभी कार्यक्षेत्रोंके लिये सच है। मित्र-लाभका यह वर्णन अवश्य ही अधूरा है; पर इस वर्णनके आरम्भमें ही जो एक वाक्य है अर्थात् "हमारा यदि कोई सच्चा मित्र न हो, तो यह जगत् निर्जन वनके समान प्रतीत होगा।" बहुत ही व्यापक और यथार्थ है। कारण,—

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानंदनं चेतसः।

"मित्र नयनोंके लिये आनन्ददायक प्रीति-रसायन है और अन्तःकरणको आह्लाद देनेवाली वस्तु है। यद्यपि

पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तत् दुर्लभम् ॥

सुख-दुःखमें एकसा साथ दे, ऐसा मित्र दुर्लभ होता है। परन्तु ऐसे दुर्लभ मित्र ही सच्चे मित्र होते हैं। सन्मित्रकी जो महिमा है, वह ऐसे ही मित्रोंकी है। ऐसेही मित्रोंके विषयमें याज्ञवल्क्य स्मृतिमें कहा है :—

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै रक्षेत सत्यं समाहितः ॥

सुवर्णलाभ अथवा भूमिलाभकी अपेक्षा मित्रलाभ श्रेष्ठ है। इसलिये मित्र-लाभके लिये प्रयत्न करे और स्वस्थचित्तसे उसकी रक्षा करे।

सज्जनोंकी मैत्रीका भर्तृहरिने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरातेऽखिलाः।
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तद भवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदम्।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

दूध और पानी जब मिल जाते हैं, तब उनकी मैत्री ऐसी होती है, कि दूध पानीको अपने सब गुण पहले ही दे डाले रहता है। यह दूध जब आगपर रखा जाता है और दूधको आँच असह्य होने लगती है, तब पानी उसके लिये अपने आपको जला देता है। मित्रकी यह दशा देख, दूध भी आगमें कूद पड़ता है। फिर जब

पानीसे उसका मिलाप होता, तब उसे शान्ति मिलती है। सज्जनोंकी मैत्री ऐसी होती है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :—

आपद्‌काल परीखिये चारि। धीरज धर्म मित्र अरु नारि॥

संकट-कालमें ही सन्मित्रकी परीक्षा होती है। संकट-कालमें जो साथ नहीं देता, वह मित्र नहीं है। विपत्ति मानो मित्रताकी कसौटी ही है। इससे "हित अनहित या जगत्‌में, जानि परत सब कोय।"

जब अच्छे दिन होते हैं, तब तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं; परन्तु सच्चा मित्र कौन है, इसकी पहचान तो विपत्तिमें ही होती है।

तुलसी सम्पतिके सखा, परत विपतिमें चीन्हि।
सज्जन सोना कसन विधि, विपति कसौटी दीन्हि॥

सन्मित्रका यही प्रधान लक्षण है। गुसाईं तुलसीदासजी सन्मित्रके लक्षण इस प्रकार कथन करते हैं :—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरिसम रज कर जाना। मित्रके दुख रज मेरु समाना॥
जिनके अस मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुण प्रगटइ अवगुणहिं दुरावा॥
विपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

इन्हीं लक्षणोंका इससे कुछ अधिक विस्तार एक संस्कृत श्लोकमें इस प्रकार किया गया है—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं न जहाति ददाति नित्यं
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्ताः ॥

इसमें कविने मित्रताके छः लक्षण गिनाये हैं—मित्र (१) पापसे बचाता है, (२) हितके काममें लगाता है, (३) गुप्त रखने योग्य बातोंको गुप्त रखता है, (४) गुणोंको प्रकट करता है, (५) संकट-कालमें साथ नहीं छोड़ता, और (६) सदा मुक्तहस्तसे देता रहता है।

मनुष्यके चरित्रपर संग-सोहबतका बड़ा असर पड़ता है। संग-सोहबतसे मनुष्य बनता-बिगड़ता है। जितनी बुरी आदतें हैं, इन्हें कोई जन्मसे ही अपने साथ नहीं ले आता, संगी-साथियोंकी देखा-देखी ही मनुष्य उनका आदी होता है। मित्रका यह धर्म है, सन्मित्रका यह लक्षण है, कि वह अपने मित्रको ऐसी बुराइयोंसे बचाये। बुराइयोंसे बचानेके साथ आप ही अच्छे कामोंमें उसे लगानेका भार भी उसपर आही पड़ता है। ये दोनों बातें एक दूसरेसे मिली हुई हैं।

बुराइयोंसे बचाने और अच्छे कामोंमें लगानेवाला मित्र स्वभावतः मुँह-देखो बात करनेवाला नहीं होता, स्पष्टवक्ता होता है। अनेक बार स्पष्टवक्ता मित्रकी स्पष्टोक्ति बहुत कड़वी मालूम होती है। परन्तु यह कड़वापन मित्रकी हृदय-वेदनाका परिणाम होता है, यह जानना और मुँह-देखो बातको छोड़ इस कड़वी दवा

को पी जाना भी सन्मित्रका ही लक्षण है। हितकी बात कहनेवाला स्पष्टवक्ता मित्र मुँहपर चाहे जितना स्पष्ट कहे; पर पीछे निन्दा नहीं करता, न अपने मित्रकी ऐसी बातें प्रकट करता है, जो प्रकट करने योग्य न हों। बुराईसे बचानेका यह मतलब तो है ही नहीं, कि अपने मित्रकी बुराई करता फिरे। मित्रका लक्षण यह है, कि मित्रके दोष मित्रसे ही कहे, औरोंसे नहीं; औरोंसे गुणोंका ही बखान करे।

मित्रका फिर सबसे बड़ा लक्षण यह है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि आपत्कालमें साथ कभी न छोड़े। कर्णको पांडव अपना ज्येष्ठ भ्राता जानकर युधिष्ठिरके बदले उसीको राजगद्दीपर बैठाते; पर इतने बड़े निष्कण्टक राज्यके लोभसे कर्णने विपत्तिमें अपने मित्र दुर्योधनका साथ नहीं छोड़ा। उसका मित्र-प्रेम कितना गाढ़ा था और मित्र-धर्मका उसे कितना ख़याल था, यह उसके उस प्रसंगके इन उद्गारोंसे स्पष्ट ही प्रकट होता है।

बधाद्बन्धाद्भयाद्वापि लोभाद्वापि जनार्द्दन।
अनृतं नोत्सहे कर्त्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः॥

* * * * *

यदि जानाति मां राजा धर्म्मात्मा संयतेन्द्रियः।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं गृहीष्यति॥
प्राप्य चापि महद्राज्यं तदहं मधुसूदन।
स्फीतं दुर्योधनायैव संप्रदध्यामरिन्दम॥

[वध, बन्धन, भय अथवा लोभसे मैं धीमान् दुर्योधनके साथ

मिथ्या-व्यवहार कदापि नहीं कर सकता। × × × जितेन्द्रिय, धर्मात्मा युधिष्ठिरको यदि यह मालूम हो, कि मैं (कर्ण) कुन्तीका प्रथम पुत्र हूँ, तो वे राज्य ग्रहण न करेंगे और (इस प्रकार) यदि यह विस्तीर्ण राज्य मुझे प्राप्त हो, तो मैं उसे दुर्योधनको प्रदान कर दूँगा।]

भगवान् श्रीकृष्णके धर्म-राज्य-संस्थापनके महान् उद्देश्यका विचार छोड़ दें और केवल मित्र-प्रेमका विचार करें, तो कर्णके मित्र-प्रेमका यह दृष्टान्त कितना उदात्त, कितना गम्भीर और कितना दिव्य है!

युद्ध करि जय लहनको अति मोर जाहि भरोस।
तजव ऐसे काल ताहि विश्वासघात कुदोस॥
होत सव पातकनसों विश्वासघात गरिए।
परम धर्मी विदित हम किमि करैं सो गति इष्ट॥

मित्रसे ही यह ध्रुव विश्वास रहता है, कि सङ्कट-कालमें वह सहायक होगा। किसीका मित्र कहलाना ही यह विश्वास दिलाता है, कि वह विपत्तिमें साथ रहता है और विश्वासघातसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। सन्मित्रका यह प्रधान लक्षण है।

हीरालाल और रामलाल दो नवयुवक थे। एक जाति, एक धर्म, एक देशवासी होनेपर भी दोनोंमें परस्पर कोई जान-पहचान नहीं थी, अकस्मात् एक दिन भेंट होती है और ये दोनों मित्र बन जाते हैं। यह मित्रता दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। इसी बीच रामलालपर कोई विपत्ति आती है। हीरालाल किसी प्रकार उसकी

सहायता कर अपना कर्तव्य पालन करता है। इसके कुछ काल बाद हीरालालकी अवस्था संकटापन्न होती है। तब रामलाल अपने संकट-कालमें की गयी मित्र-सेवाका कुछ भी मूल्य और महत्व न समझ कर अपने मित्र हीरालालसे संकट-कालमें अलग हो जाता है; पर ऐसी अवस्थामें भी हीरालाल अपने अन्तःकरणको कलुषित होने नहीं देता और अपने मित्र रामलालके प्रति अपने चित्तमें मैत्रीका वही पवित्र भाव रखता है और यह भी मान लेता है, कि रामलाल जो कुछ बनता है, हमारी सहायता करता है। पर रामलाल अपने मित्रसे मिलने भी नहीं जाता। अन्त-को हीरालालको कुछ ख्याल होता है। यह ख्याल नहीं कि राम-लाल मित्रतामें कुछ कसर करता है; बल्कि यह कि हमारे और उसके बीचमें यह संकट क्यों उपस्थित हुआ, जो हम दोनोंको एक दूसरेसे अलग करा रहा है ? यदि मित्र-वियोग न होता, तो हीरालाल इस संकटको भी कुछ नहीं समझता। इस संकटमें भी वह मित्र-वियोगको संकट समझता है, संकटको संकट नहीं; कैसी गभीर मैत्री है, कितना उदार-संस्कार है, कितना विशाल-हृदय है ! रामलाल इस विशाल घेरेसे छूटकर कहाँ जायगा, नहीं जा सकता। हीरालालका शुद्ध अन्तःकरण वह काम कर गया, कि रामलालके अन्तःकरणपर पड़ा हुआ मैल साफ होने लगा। उसे अपना दोष दिखाई देने लगा और उसका अन्तःकरण अपने मित्रके अन्तः-करणसे मिल गया। पारसके स्पर्शसे लोहा भी स्वर्ण हो गया।

मित्र सदा सहाय होता है। अपने मित्रके अभाव जानने और

उनकी पूर्ति करनेमें सदा तत्पर रहता है। सुदामा जैसे मित्रोंका तो जहाँतक सम्भव होता है, यही व्रत रहता है, कि "विपति परे पै द्वार मीतके न जाइये।" और यदि जाते भी हैं, तो कभी अपना दुखड़ा नहीं रोते। परन्तु श्रीकृष्ण जैसे मित्र उनके अपना दुखड़ा रोनेकी राह भी नहीं देखते। सुदामा लौटकर घर पहुँचते हैं, उससे पहले ही सुदामा-नगरी तैयार हो जाती है। आधुनिक कालमें भी ऐसे दृष्टान्त हुए हैं, जब धनी मित्रने अपने निर्धन मित्रको अपना आधा धन देकर अपने जैसा ही धनी बना दिया।

इस विषयमें चंपानगरके दो मित्रोंकी कथा बहुतोंको मालूम होगी। चंपालाल और चन्दनमल बड़े घनिष्ठ मित्र थे। दोनों ही वैभवसम्पन्न थे। परन्तु कर्म-धर्म-संयोगसे चम्पालालका सब वैभव नष्ट हो गया। वह दीन-हीन हो गया। चन्दनमलकी कोई क्षति नहीं हुई थी। वह पहले जैसा ही वैभवशाली था। परन्तु उसके इस वैभवका सुख उसके मित्रके दारिद्र्य-दुःखसे इतना आच्छन्न हो गया, कि दरिद्रताके जो कष्ट चम्पालालको होते थे, उनका अनुभव चन्दनमलको होता था; जैसे शरीरके एक अंगपर हुआ आघात दूसरे अंगको आप ही अनुभूत होता है। एक तन दो प्राण इसीको कहते हैं। जो मित्र ऐसे होते हैं, उन्हींको एक दूसरेके दुःखका इस प्रकार अनुभव हुआ करता है और तभी तो उनका मित्र-नाम सार्थक होता है। चन्दनमलकी यह सहानुभूति या समवेदना उस कोटि की नहीं थी, जिसमें यह सहानुभूति होठोंसे बाहर निकलकर हवामें काफूर हो जाती है। यह सहानु-

भूति वास्तविक थी। चम्पालालके दुःखका अनुभव चन्दनमलको होता था। इसका मतलब यह था, कि वह दुःख उसका अपना दुःख हो गया था और उसे दूर करनेमें वह लगा हुआ था। उसने मित्रका दुःख बाँट लिया—मित्रकी दरिद्रताका आधा हिस्सा ले लिया और अपनी सम्पत्तिका आधा हिस्सा उसे दे दिया। सच्ची मित्रताका यह कितना ज्वलन्त दृष्टान्त है, कितना स्वाभाविक सहज सुहृत्स्नेह है! चन्दनमल और चम्पालालने दरिद्रता बाँट ली, सम्पत्ति भी बाँट ली। सच्ची मित्रताका यह दृष्टान्त है। परन्तु संसारमें अधिकतर यही देखनेमें आता है, कि जो कोई किसीकी सहायता करता है, वह सहायता करतेही उससे अपनेको श्रेष्ठ समझने लगता है, उसके गुणोंका आदर करना भी भूल जाता है। ऐसे मित्र संसारमें बहुत ही कम हैं, जो सहायताके साथ-साथ सम्मान भी करते हों; पर सन्मित्रका लक्षण तो यही है, कि सदा सहाय हो और विनयावनत हो कर सहायता करे। वही पुरुष श्रेष्ठ भी है।

सन्मित्रके जो ये लक्षण गिनाये गये, वे सब अपने शुद्ध रूपमें जिन मित्रोंमें हों, ऐसे मित्र दुर्लभ हैं। तथापि प्रत्येक मित्रको यह प्रयत्न करना चाहिये, कि इन लक्षणोंसे युक्त हो।

मित्रताका नियमन

सन्मित्रकी परख और सन्मित्रके लक्षण बतलानेके पश्चात् अब यह बतलाना रह जाता है, कि मित्रता निभानी कैसे चाहिये; कारण मित्रता जोड़ना सहज है; पर उसे निभाना बहुत कठिन है।

आदर्श मित्रकी कल्पना हम कर सकते हैं; पर संसारमें सभी आदर्श मित्र नहीं हो सकते। आदर्श तो सदा आदर्श ही रहता है और उसे सामने रखकर वैसा बननेका प्रयत्न करना ही मनुष्यका काम है। मनुष्यमें अनेक दुर्बलताएँ होती हैं। उन दुर्बलताओंके रहते हुए मित्र अपनी मित्रताको निभावें, यही कौशल है। मित्र-धर्मको समझनेवाले संसारमें बहुत हैं; पर आदर्श मैत्रीकी कसौटीपर सामान्य मनुष्योंकी मैत्रीको कसकर देखना भूल है। अनेक बार लोग ऐसी भूल करते हैं और इससे जिस मित्रताको वे निभा सकते थे, उसे निभानेमें असमर्थ हो जाते हैं। जो मनुष्य आदर्श और परिस्थिति दोनोंको ठीक-ठीक समझता है; वह ऐसी भूल नहीं कर सकता। इसलिये आदर्श तो सामने ही रहना चाहिये, साथ ही अपनी दुर्बलताओंका ध्यान भी रखना

चाहिये और उनके अनुसार अपनी मैत्रीके व्यवहारका नियमन करना चाहिये।

तत्ववेत्ता इपिक्टीटसका यह कहना है, कि मित्रोंके साथ निरर्थक विषयोंपर बात चीत न करनी चाहिये, याने कामकी ही बात-चीत करनी चाहिये; परन्तु निरर्थक क्या है और सार्थक क्या है, इस विषयमें मतभेद हो सकता है। "घोड़े, कुत्ते, कसरत, खाना पीना इत्यादि" इपिक्टीटसके कथनानुसार क्षुद्र विषय हैं, और ऐसे विषयोंपर बात चीत न करनी चाहिये। इपिक्टीटस और उनके मित्रोंके लिये, सम्भव है, यह ठीक हो। पर उनका यह कहना बहुत ठीक है, कि मित्र "पर-निन्दा अथवा स्तुति-पाठ" न किया करें। पर-निन्दाकी लत सचमुच ही बहुत बुरी होती है। जिसे यह लत लग जाती है, वह जिस किसीकी निन्दा ही करता फिरता है, यहाँतक कि अपने मित्रोंको भी नहीं छोड़ता। परोक्षमें मित्रोंकी निन्दा करना मित्र-धर्मके विरुद्ध है और इससे मैत्री टूट जाती है। पर इस लतका इतना प्रचार है, कि इस विषयमें एक लेखक कहता है, कि "एक दूसरेके पश्चात् उसके विषयमें क्या कहता है, यह अगर सबको मालूम हो जाये, तो संसारमें चार मित्रोंका भी मिलना कठिन होगा।"

पर-निन्दासे मनको कलुषित करनेके बदले मार्कस आरीलियसका यह उपदेश अधिक मनोरंजक और साथही बोधप्रद होगा,—"जिस समय तुम्हें अपना मनोरंजन करना हो, उस समय अपने संगी-साथियोंके अच्छे गुणोंका स्मरण किया करो।

किसीकी बुद्धि तीक्ष्ण है, कोई सदाचारी है, किसीमें उदारता विशेष है; अपने साथियोंके ऐसे-ऐसे गुणोंका ध्यान करो।" जहाँ पर-निन्दा होती हो, वहाँ ऐसी चर्चा होनेसे बहुत अधिक और बड़ा सात्विक तथा लाभकारी मनोरंजन होगा। दोषोंको ढूँढ़ निकालना कुछ कठिन नहीं है, जलके ऊपर वे तैरते रहते हैं; पर सद्‌गुणोंके मोती ढूँढ़ निकालनेके लिये समुद्रमें गोता लगाना पड़ता है। मित्रके गुण बढ़ाकर कहनेमें उतना दोष नहीं है। पर उसके *गुणोंपर परदा डालना और दोष बढ़ाकर कहना पाप है।*

गुण-ग्राही मित्र गुणका आदर करता है। मित्रके गुणोंका आदर करना और उन गुणोंकी वृद्धिमें उसे बढ़ावा देना मित्रका काम है। अपने मित्रके गुणोंकी कदर न करनेवाले मनुष्यकी मित्रता केवल नदी-नाव-संयोग है। ऐसी मित्रता निभ नहीं सकती। सुख-दुःखमें, संपद्-विपद्‌में, अध्ययन और मनोरंजनमें साथ रह सकनेवाले मित्रोंकी मित्रता शुक्लेन्दुवत् बढ़ती ही जाती है। कई मित्र प्रयोजनाभावसे परस्पर मिलना तक छोड़ देते हैं। पर यह बड़ी भूल है। मित्रोंको एक दूसरेसे बराबर मिलते रहना चाहिये और बिना मिले कलही न पड़नी चाहिये। मित्रोंका एक दूसरेसे न मिलना भी मित्रताके शिथिल हो जानेका कारण होता है।

धनादिसे मित्रकी सहायता करनेमें कभी अपने मनमें भी उसका थोड़ा भी तिरस्कार न करो। मित्रकी सहायता कर सकना अहोभाग्य है।

मित्रकी सहायता करना जैसा मित्र-धर्म है, वैसा ही मित्र-धर्म मित्रको कष्ट न देना भी है। सरल और सहृदय देखकर किसीको बार-बार सहायताके लिये कष्ट देना अनुचित है, यही नहीं, प्रत्युत मित्रका यह धर्म है, कि वह जहाँतक हो सके, ऐसा अवसर ही न आने दे, कि मित्रको कष्ट हो। किसी समय यदि मित्र सहायता न कर सके, तो उतनेसे रुष्ट हो जाना भी ठीक नहीं। मित्रसे अनुचित आशा करना तो मैत्रीका केवल दुरुपयोग है। हमें सदा अपनेको अपने मित्रकी स्थितिमें मान कर विचारना चाहिये, कि अमुक परिस्थितिमें हम अपने मित्रके लिये क्या कर सकते; जो काम हम न कर सकते, उसकी आशा अपने मित्रसे कदापि न करनी चाहिये।

मित्रताके निर्वाहके सम्बन्धमें यह सुभाषित प्रसिद्ध है—

इच्छेच्चेद्विपुलां मैत्रीं त्रीणि तत्र न कारयेत्।
वाग्वादमर्थसम्बन्धं परोक्षे दारभाषणम्॥

अर्थात् जो विपुल मैत्री चाहता हो, वह इन तीन बातोंसे अवश्य दूर रहे—वाग्वाद, अर्थ-सम्बन्ध और मित्रके परोक्षमें मित्र-पत्नीसे बातचीत।

"वादे वादे जायते तत्वबोधः" यह सुभाषित भी सत्य है; पर तत्वबोधके लिये जहाँ वाद होता है, वहींके लिये यह ठीक है, अन्यथा अपनी-अपनी बात रखनेके लिये जो वाद-विवाद किया जाता है, वह केवल निरर्थक नहीं, अनेक बार हानिकारक भी होता है। कई बार शास्त्रार्थ होते-होते शस्त्रार्थ आरम्भ हो गया है।

वाद-विवादके जोशमें कितनोंको होश नहीं रहता और एक दूसरेके दिलोंपर वाग्वाण बरसाने लगते हैं, जिसका परिणाम यह होता है, कि वाद करनेवाले ऐसे मित्रोंका चित्त एक दूसरेसे हट जाता है; कभी-कभी दिल फट जानेकी भी नौबत आती है। किसी विषयमें मित्रोंमें मतभेद हो, तो उसके लिये वाग्वाद न करके एक दूसरेके मतका आदर करना चाहिये। ऐसी चर्चा ही न चलाना अच्छा, जिसमें मित्रोंको अपने-अपने मतका आग्रह हो।

अर्थ-सम्बन्धकी बात ऐसीही है। मित्र एक दूसरेकी सहायता करें, यह तो मित्रधर्म ही है। पर मित्रोंमें इस प्रकारका लेन-देनका व्यवहार रहना, जैसा महाजन और असामीमें होता है; अनुचित है। लेन-देनमें लाभकी जो आशा रहती है, वह बढ़ते-बढ़ते मैत्री-को कुचल डालती है। अंगरेज़ीमें एक कहावत है :—

"Short reckonings make long friends."

"लेन-देन जितना थोड़ा मित्र-प्रेम भी उतना गाढ़ा" होता है। इस लिये मित्रोंको आपसमें लेन-देन न करना चाहिये। अर्थ-सम्बन्धसे मित्र जितना दूर रहेगा, उतना ही मैत्री निभानेके विषयमें सुखी होगा।

मित्रके परोक्षमें मित्रकी पत्नीसे बातचीत करना कई देशोंके आचारमें अशिष्ट नहीं समझा जाता। उन देशोंका इस विषयमें कोई भिन्न अनुभव हो सकता है। परन्तु हमारे देशमें शिष्ट व्यवहार यही है, कि पुरुषके परोक्षमें स्त्रीसे भाषण न करना चाहिये। जो लोग अपने मित्रोंसे मित्रता निभाना चाहते हैं, उन्हें मित्रकी

अनुपस्थितिमें उसकी पत्नीसे कभी बातचीत न करनी चाहिये। मित्रकी उपस्थितिमें मित्र-पत्नीसे वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा लक्ष्मणका सीताजीके साथ था। लक्ष्मणने सीताजीके चरणोंके सिवाय और किसी अंगका दर्शन नहीं किया था। किसी भी पर-स्त्रीसे भाषण करते हुए अपनी दृष्टिको उसके पैरोंपर ही रखना चाहिये।

अनेक मित्रोंकी यह धारणा रहती है, कि मित्रसे किसी बातका परदा न रखना चाहिये—कोई बात उससे न छिपानी चाहिये। पर यह कोई नियम नहीं, यह आवश्यक भी नहीं है। जिसके योग्य जो बात हो, वही उससे कहनी चाहिये, यही साधारण नियम है। यदि कोई मित्र ऐसा है, कि उसके पेटमें कोई बात नहीं पचती, तो उससे सब तरहके गुह्य कह देना अपने आपको धोखा देना है। इपिकटीटसने जो कहा है, कि मित्रोंसे क्षुद्र विषयोंपर बात न करो, इसका अर्थ और व्यापक करके यह कहा जा सकता है, कि मित्रोंसे व्यर्थ बातचीत करके अपना और उसका समय नष्ट न करो। ऐसा करनेसे जो बात न कहनी चाहिये, वह कभी न कही जायगी। व्यर्थ बातें करनेवाले लोग अनेक बार ऐसी बातें कह डालते हैं, जिनके कहनेसे पीछे उन्हें अनुताप करना पड़ता है। मित्रसे कोई छल न करना चाहिये, इसका मतलब यह नहीं है, कि उससे कोई बात न छिपानी चाहिये।

दारेषु किञ्चित्स्वजनेषु किंचित्।
किंचिद्वयस्येषु सुतेषु किंचित्॥

युक्तं न वा युक्तमिदं विचिन्त्य ।
वदेद्विपश्चिन्महतोऽनुरोधात् ॥

"बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये, कि किससे क्या कहना उचित है, इसका विचार करके कुछ बातें स्त्रीसे, कुछ स्वजनोंसे, कुछ अपने मित्रोंसे और कुछ पुत्रोंसे जिस तिसकी योग्यताके अनुसार कहनी चाहिये।" इस प्रकार युक्तायुक्त विचार करके जो मित्र-से व्यवहार करेगा, उसकी मैत्री निभ सकेगी।

मित्रोंको एक बातका और ध्यान रखना चाहिये। वह यह कि अनेक मित्रोंमें परस्पर कलह करा देने वाले चुगलखोर नामक जीव पैदा हो जाते हैं। कभी सच्ची, कभी झूठी और कभी "राईका पर्वत" बना कर एककी बातें दूसरेको सुनाया करते हैं। इनसे मित्रोंको बहुत सावधान रहना चाहिये। इनकी बातें सुन कर इन्हें मैत्रीमें विष फैलानेका अवकाश ही न देना चाहिये।

शक्की मिज़ाजके मित्रोंसे कभी सुख नहीं होता। शक्की मिज़ाज वाले मित्रताके अधिकारी ही नहीं होते। ऐसे लोगोंसे जहाँतक बने, दूर रहना चाहिये।

बहुतोंका यह विचार है, कि बहुत मित्र न करने चाहियें— मित्र एकही होना चाहिये। "आत्मशिक्षण"कार कहते हैं, कि "जो लोग बहुतसे मित्र करते हैं, उनका कोई भी वास्तविक मित्र नहीं होता और वे अपने मानसिक भ्रमवश केवल जिन्दारियोंको मित्र समझा करते हैं। ऐसेही लोगोंको समयपर धोखा होता है, यह बात बहुत ठीक मालूम होती है। किसी किसीका कहना है,

कि प्रेमकी कोई मर्यादा नहीं है; इसलिये मित्रोंकी संख्यामें भी कोई क़ैद न होनी चाहिये। पर ऐसे अमर्याद प्रेम रखने वाले लोग संसारमें कितने हैं? हम सब सामान्य मनुष्योंकी सामर्थ्य बहुतही मर्यादित है, इस मर्यादित सामर्थ्यमें एक ही मित्रको मित्र मानकर उसके साथ मित्र-धर्म निभानेमें कोई बात उठा न रखनी चाहिये। हाँ, यह अवश्य है, कि जिस किसीके साथ जान-पहचान, मेल मुलाकात या थोड़ी देरके लिये भी समागम हो, उसके साथ मित्रवत् ही व्यवहार करना चाहिये। संसारमें मित्रता दोही मित्रोंकी देखी जाती है। जिनके अधिक मित्र होते हैं, वे महात्मा होते हैं और महात्मा सब मित्रोंके साथ मित्रता निभा सकते हैं। संसारमें जिसका कोई मित्र नहीं, कोई बैरी नहीं, जिसका कोई स्वार्थ नहीं, परार्थ नहीं; वह सारे विश्वकाही मित्र होता है। इतना विशाल हृदय मानवी मनका महान् विकास है; पर जो मनुष्य एक ही मित्रके साथ मित्रता निभा सकता है, वह भी धन्य है; क्योंकि मित्रोंकी संख्यासे नहीं, मित्रधर्मके पालनसे मनुष्य अपने परम लक्ष्यके समीप पहुँचता है।

जिसके साथ एक बार मित्रता हुई, वह कालान्तरमें भी नष्ट न होनी चाहिये। जिसके साथ प्रीति की, जिसे गले लगाया, उसे फिर कभी दूर न करना चाहिये। मैत्री न करना, मित्रका न होना दुर्भाग्य है; पर मित्रता करके उसे तोड़ना महान् दुर्भाग्य है।

अन्तर तनिक न राखिये जहाँ प्रीति व्यवहार।
बरसों उर लागे न तहँ जहाँ रहतु है हार॥

कबहूँ प्रीति न जोरिये जोरि तोरिये नाहिं।
ज्यों तोरे जोरे बहुरि गाँठ परत गुन माँहिं॥

जिसे एक बार मित्र मान लिया, उससे सहायताकी अपेक्षा न कर स्वयं ही सदा उसकी सहायतामें तत्पर रहना एक ऐसा नियम है जिससे एक बार जुड़ी हुई मित्रता कभी भंग नहीं हो सकती और यही संक्षेपमें वास्तविक मित्र-धर्म है।

इन लक्षणोंसे युक्त सन्मित्र एक दूसरेके सौभाग्य-स्वरूप हैं। "सुख और शान्ति" में लार्ड-अव-बेरीने बड़े सुन्दर शब्दोंमें मित्र-धर्म कथन किया है।

"सन्मित्रसे समृद्धि सौभाग्यशालिनी होती है और संकट सुसाध्य होता है। दोनों अवस्थाओंमे उससे उपकार होता है। इसलिये सन्मित्रका अभिनन्दन करो, सहायता करो, उसके लिये परिश्रम करो, संकटमें उसको रक्षा करो, उसपर कोई आक्रमण करे तो उसके कन्धेसे कन्धा लगाकर खड़े हो; उसके सुखसे सुखी और दुःखसे दुखी हुआ करो और जब वह विपद्ग्रस्त हो, तब उसे सान्त्वना दिया करो। ऐसा करो, तब समझा जायगा कि तुम अपना कर्त्तव्य पालन करते हो।"

मित्रताके सम्बन्धमें

एक तत्ववेत्ताके विचार

——:०:——

रोमके सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता, राजनीतिज्ञ और लेखक सिसरोने मित्रतापर एक निबन्ध लिखा है, जिसमेंसे कुछ चुने हुए अंश नीचे दिये जाते हैं—

मानवी सम्पत्तिमें सबसे मूल्यवान् वस्तु मित्रता है। मित्रके अतिरिक्त और कोई मनुष्य, मनुष्यके नैतिक स्वभावके अनुकूल नहीं होता, जिसका हर हालतमें सुख और दुःखमें हर तरहसे साथ हो; परन्तु सच्ची मित्रता ऐसे ही मनुष्योंमें हो सकती है, जो सदाचारी हों।

* * * *

जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ मित्रता नहीं हो सकती!......सदाचार ही मित्रताका जनक और सहारा है।

* * * *

मनुष्य जिन वस्तुओंकी इच्छा करता है, उनमेंसे प्रत्येक वस्तुके उपयोगकी एक मर्यादा होती है, जिसके बाहर उस वस्तु-का कोई उपयोग नहीं होता। परन्तु मित्रताकी यह बात नहीं है। मित्रतासे होने वाले लाभ अनन्त हैं। धनका जो उपयोग है, उसी उपयोगके लिये वह उपार्जन किया जाता है; शक्ति है अपनी

पूजा करानेके लिये; सम्मान है यशके लिये; विषय-भोग है इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये ; आरोग्य है हर प्रकारके शारीरिक कष्टसे मुक्त रहने और सब अवयवोंसे ठीक काम लेनेके लिये; परन्तु मित्रताका कुछ ऐसा स्वभाव है, कि उससे असंख्य काम लिये जा सकते हैं—मानवी जीवनमें कोई अवसर ऐसा नहीं होता, जब मित्रका काम न हो।

* * * *

मित्रत्व-सम्बन्धसे होने वाले कार्योंमें एक प्रधान कार्य यह है, कि संकटके समयमें मित्र मनपर छायी हुई उदासीको दूर कर देता है, सुखके दिनोंकी आशाको बढ़ावा देता है और हत-वीर्य नहीं होने देता। जो जिसका सच्चा मित्र होता है, वह अपने उस मित्रमें अपनी ही आत्माकी प्रतिकृति देखता है। ··· ऐसे मित्र एक दूसरेकी शक्ति और सम्पन्नतासे शक्तिमान् और सम्पन्न होते हैं। इनमेंसे एक मित्र जहाँ होता है, वहाँ उसके रूपमें दूसरा मित्र भी होता ही है।···उनमेंसे एककी मृत्यु हो जाये, तो उस हालतमें भी दोनों तबतक जीते ही रहते हैं, जबतक उनमेंसे एक भी जीवित रहता है।

* * * *

जिस स्नेहके कारण लोग एक दूसरेके मित्र होते हैं, वह यदि मनुष्यके हृदयसे नष्ट हो जाय तो कौटुम्बिक जीवन और सामाजिक जीवन भी नष्ट हो जाय—यह सारी सृष्टि उत्सन्न हो जाय।

* * * *

जो मनुष्य अपने सुखके लिये जितना ही आत्मनिर्भर रहता है, दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता, अपने अन्दर ही अपने सुखको ढूँढ़ता है, उतना ही वह मित्रताका इच्छुक होता है और वही सच्चा मित्र होता है।

* * * *

सीपिओ अफ्रिकेनस (रोमका एक महान् राजनीतिज्ञ और तत्ववेत्ता) कहा करता था, कि मित्रताको चिरस्थायी बनाकर जीवनान्त तक अटूट बनाये रखना इतना कठिन काम है, कि इससे कठिन और दूसरा काम नहीं हो सकता। कारण, प्रायः ऐसा होता है, कि एक दूसरेका स्वार्थ एक दूसरेसे भिन्न हो जाता है। यही नहीं, बल्कि वयस, नाना प्रकारकी दुर्बलता या विपद्-आपदाओंसे मनुष्यके स्वभावमें बड़ा अन्तर पड़ जाता है। सामान्य मनुष्योंकी मैत्रीकी इस अस्थिरताको, उसने बचपनसे वृद्धावस्थातक मनुष्यमें जो परिवर्त्तन होते हैं, उनका विचार करके दिखाया है। बचपनमें जो मित्रता हुई, वह साधारणतः यही देखा गया है, कि वयस् कुछ अधिक होते ही टूट गयी है। परन्तु यदि किसीकी ऐसी मित्रता यौवनतक निभ भी जाय तो आगे चलकर टूट सकती है; क्योंकि यौवनमें ऐसी बातें होती हैं, कि एक चीज़ के पीछे पड़े हुए दो मित्र एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी हो जायँ। यह तो हो नहीं सकता, कि एक ही चीज़ दोनोंको मिल जाय,''''''धनकी अत्यभिलाषा या यशकी असामान्य लिप्सा ये दोनों मैत्रीका

घात करनेवाली हैं, कभी-कभी इनमेंसे किसी एकके कारण, घनिष्ठ मित्र भी एक दूसरेके कट्टर शत्रु हो गये हैं।

किसी अन्याय या अपमानजनक कार्यमें कोई अपने मित्रसे सहायताकी अपेक्षा करे, तो इससे भी मित्र-मित्रमें लड़ाई हो जाती है। ऐसे अवसरपर मित्रका सहायता करनेसे इनकार करना मित्रत्वके अधिकारोंका प्रायः उल्लंघन समझा जाता है, यद्यपि ऐसे अवसरपर सहायता न करना ही उत्तम है। संसारमें जिस प्रकारकी मित्रता साधारणतः देखनेमें आती है, वह ऐसी-ऐसी बातोंसे चाहे जब टूट सकती है। यही नहीं, वल्कि ऐसे मित्र फिर एक दूसरेके शत्रु भी हो जा सकते हैं। सीपिओ अफिकेनस यह कहा करता था, कि "मित्रताको निवाहनेके लिये केवल अच्छी बुद्धि ही नहीं, अच्छा भाग्य भी होना चाहिये।"

इसी प्रसंगमें आगे चलकर सिसरोने इस बातकी बहस छेड़ी है, कि किसी मनुष्यका मित्रताके नाते अपने मित्रसे सहायता पाने या उसकी सहायता करनेका किसी हदतक अधिकार उचित हो सकता है। कोई मनुष्य अपने समाज, जाति या देशके विरुद्ध आचरण कर रहा हो और ऐसे आचरणमें अपने मित्रसे सहायता चाहता हो, तो क्या ऐसी सहायता करना मित्र-धर्म है? सिसरोका उत्तर है—"नहीं।" उसका यह सिद्धान्त है, कि "कैसी भी मित्रता हो, उसका यह धर्म नहीं है, कि किसी अपराध या पापमें वह सहायक हो।" सच्ची मित्रताका आधार ही सदाचार है और इस लिये जहाँपर सदाचार नष्ट होता है, वहाँ वह मित्रता

ही नहीं रहती। स्वाभिमान और सदाचारके विरुद्ध अपने मित्रकी सहायता करना या सहायता माँगना मित्रधर्मके विरुद्ध है।

* * * *

मित्रधर्मका यह भी एक अटल नियम है, कि "हर अवसरपर मित्रको निस्संकोच और हृदय खोलकर परामर्श देनेके लिये तैयार रहना चाहिये।

* * * *

"मित्रतासे निश्चय ही बड़ा उपकार होता है, पर उपकार मित्रताका मूल हेतु नहीं है।"

* * * *

मित्रताकी कसौटी

मित्रताकी कसौटीके तीन प्रकार सूचित किये गये हैं। पहला प्रकार यह है, कि सभी महत्वपूर्ण कार्योंमें हमें अपने मित्रके साथ वैसाही व्यवहार करना चाहिये, जैसा कि हम अपने साथ करते। दूसरा प्रकार यह है, कि हमें अपने मित्रका उतना ही और वैसा ही काम करना चाहिये जितना और जैसा काम वह हमारा किये हुए हो या करता हो; और तीसरा प्रकार यह है कि मित्रके काममें हमारा वही भाव होना चाहिये जो स्वयं उसका उस काममें हो।

ये तीनों प्रकार ऐसे हैं, जो सर्वथा नहीं माने जा सकते। पहला प्रकार ऐसा है कि उसे उचित नहीं कह सकते; क्योंकि बहुतसी ऐसी बातें हैं, जो हम अपने मित्रके लिये कर सकते हैं; पर अपने लिये नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, बहुत सी ऐसी चीजें

हैं जो हम चाहते हैं कि हम अपने मित्रको दें, जिसमें वह उनसे सुखी हो। ऐसी चीजोंका हम त्याग करते हैं; पर यह इच्छा नहीं कर सकते, कि हमारा मित्र भी उन चीजोंको त्याग दे। हम त्यागपूर्वक अपनी हानि कर सकते हैं; पर मित्रकी हानि नहीं कर सकते।

दूसरा प्रकार तो ऐसा है कि वह मित्रता क्या हुई, कर्जदार और महाजनका हिसाब-किताब हुआ। सच्ची मित्रता ऐसा हिसाब-किताब नहीं रखती।

तीसरा प्रकार तो इन दोनोंसे भी खराब है। कुछ आदमी ऐसे होते हैं, कि वे अपने आपको वास्तवमें बहुत क्षुद्र समझते हैं, इतने अकर्मण्य और हतोत्साह हो जाते हैं, कि अपने स्वार्थकी उन्नति या प्रतिष्ठाकी वृद्धिके लिये उत्साहसे कोई उद्योग नहीं करते। इस तीसरे प्रकारके अनुसार ऐसे मनुष्यके मित्रको भी उसके काममें वैसा ही हो जाना चाहिये—मित्रको उत्साहित कर उसका कार्य सिद्ध करनेके बदले हतोत्साहको और भी हतोत्साह करना चाहिये; परन्तु यह मैत्री नहीं है। सच्ची मित्रता यह है, कि अपने हतोत्साह मित्रपर छायी हुई उदासीको वह दूर कर दे, उसमें उत्साह भर दे और आगे बढ़नेमें उसकी हर तरहसे सहायता करे।

* * * *

कुछ लोग यह कहते हैं, कि मित्र-प्रेममें इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये, कि ऐसा भी समय आ सकता है, कि जब तुम्हें उस मित्रका तिरस्कार करना पड़े। पर जिस मनुष्यके बारेमें ऐसी

सावधानी रखनेकी ज़रूरत पड़े, वह तुम्हारा मित्र ही कैसे हो सकता है? हाँ, सावधानी इस बातकी ज़रूर रखनी चाहिये, कि किसीको अपना मित्र मानने या कहनेके पूर्व यह अच्छी तरह समझ ले, कि इसके साथ अन्ततक मित्रता निभेगी या नहीं। परन्तु यदि हमें ऐसा ही दुर्भाग्य प्राप्त हो, कि मित्रका चुनाव हम ठीक न कर सके और मित्रता निभाना कठिन हो जाये, तो आगे आनेवाली आपदाओंके सोचमें न डूबकर ऐसे ही प्रयत्न और आत्मरक्षणमें लग जाना उचित है, कि मैत्रीमें कोई बाधा न पड़े— मित्रोंमें परस्पर झगड़े न हों।

* * * *

पहले तो सदाचारी मनुष्योंसे ही मित्रता करनी चाहिये, और फिर जिससे मित्रता हो चुकी हो, उसके सामने अपना दिल खोलकर रख देना चाहिये—उसमें किसी तरहका खटका रहे यह उचित नहीं। कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो जाय कि मित्रके जीवन या सुनामकी रक्षाके लिये न्यायके पथसे कुछ हटना भी पड़े, तो ऐसे अवसरपर वह उचित है, यदि उससे अपने चरित्रमें कोई बड़ा दोष न आता हो। मित्रताके लिये अधिकसे अधिक इतना ही किया जा सकता है।

* * * *

मित्रकी पहचान

मनुष्य मित्रताके विषयमें जितना ला-परवाह होता है, उतना और किसी विषयमें नहीं होता। हमारे पास कितने गाय, बैल या

अन्य पशु हैं, इसकी ठीक-ठीक खबर अपनी-अपनी हर किसीको होती है। पर ऐसा मनुष्य कहाँ, जो अपने सच्चे मित्रोंकी ठीक ख़बर रखता हो? पशु-पक्षी या अन्य वस्तुओंका संग्रह करनेमें मनुष्य बड़ी पहचान और बड़ी सावधानी रखता है; पर मित्रोंके चुनावमें किसीको इस बातका ध्यान नहीं रहता, कि सच्चे मित्रकी पहचान क्या है—सच्चे मित्रके लक्षण क्या हैं?

सच्चे मित्रका एक प्रधान लक्षण यह है, कि वह स्थिर स्वभाववाला होता है। यह ऐसा गुण है, जो सब मनुष्योंमें नहीं होता और कहाँ होता है, इसकी कोई ख़ास पहचान नहीं है; सिवाय इसके कि यह अनुभवसे ही मालूम होता है। पर यह अनुभव, जबतक मित्रता हो नहीं चुकती, तब तक हो भी नहीं सकता। इसलिये बुद्धिपर प्रेमका अधिकार हो जाता है और पूर्व-परीक्षा नहीं हो पाती। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये, कि किसी नये मित्रसे गले मिलनेके पूर्व कुछ समयतक उसके नैतिक गुणोंकी थोड़ी बहुत परीक्षा या जाँच कर ले। कुछ रुपया खर्च करनेसे ऐसी परीक्षा की जा सकती है। कुछ लोग ऐसे मिलेंगे, जो मित्रताके सामने धनको कुछ नहीं समझेंगे; पर ऐसा मनुष्य कहाँ मिलेगा, जो अपनी महत्वाकांक्षाको भी मित्रतापर न्योछावर कर सके? जहाँ उसकी महत्वाकांक्षा और मित्रतामें मुठभेड़ होगी, वहाँ वह मित्रताको त्याग देगा। इसीलिये सच्ची मित्रता उन लोगोंमें बहुतही कम दिखाई देती है, जो दुनियामें बड़े होकर अपनी सवारी निकालना चाहते हैं।

* * * *

मित्रताकी सचाई और शक्तिकी परीक्षा संकटकालमें ही होती है। संकटकालमें मित्रको त्याग देना या सम्पत्कालमें मित्रको भूल जाना ये दो ऐसी कसौटियाँ हैं, जिनसे अनेक मित्रोंके दुर्बल और अस्थिर स्वभावका पता लग जाता है।

* * * *

जिस मनुष्यमें तीव्र स्वाभिमान होता है—मर्यादाका विचार होता है, उसका यह स्वाभिमान उसके स्वभावको स्थिर होनेमें सहारा देता है। जिस मनुष्यमें ऐसा स्वाभिमान नहीं या जिसका यह स्वाभिमान बहुत ही दुर्बल है, उसका कोई भरोसा नहीं। दृढ़ और स्थायी मैत्रीके लिये यह भी आवश्यक है, कि जिसको हम अपना मित्र मानें, उसका एक तो स्वभाव हमारे ही जैसा हो और दूसरे, इसके साथ-साथ उसका हृदय शुद्ध हो ; कारण, जहाँ हृदय शुद्ध नहीं होता वहाँ मैत्री नहीं निभ सकती। कृत्रिमता और कपटके साथ सच्ची मित्रताका सदा बैर होता है। ऐसे लोगोंमें भी मित्रता नहीं हो सकती, जिनका मिजाज और विचार करनेका ढंग एक दूसरेके साथ बिलकुल मिलता हुआ न हो।

ये लक्षण ऐसे हैं, कि फिर वही बात कहनी पड़ती है, कि "सच्ची मित्रता सदाचारियोंमें ही हो सकती है," क्योंकि सदाचारीमें सहृदयता होती है और जिसमें सहृदयता होती है; वह खुल्लम-खुल्ला शत्रु कहलाना पसन्द कर सकता है ; पर "बगलमें छुरी मुँहमें राम-राम" नहीं रख सकता। दूसरी बात यह

है, कि ऐसे सरल सहृदय पुरुष अपने मित्रको जनापवादसे बचाते हैं। यही नहीं, बल्कि अपने हृदयमें अपने मित्रकी तरफसे कोई ऐसा विकार नहीं आने देते, जो उनकी सहृदयताके विरुद्ध हो। बात-बातमें चिढ़ना, कुढ़ना, वहम करना इत्यादि बातें सहृदयतामें नहीं होतीं, जिनसे मित्रता भंग होती है।

मित्रोंकी बातचीतमें भाषाकी नम्रता और मृदुलता होनी चाहिये। इससे यह सम्बन्ध उन्नत होता जाता है।

* * * *

प्रायः ऐसे भी मित्र होते हैं जिनमें प्रतिष्ठा और योग्यताका बड़ा अन्तर होता है। ऐसी अवस्थामें जो प्रतिष्ठा या योग्यतामें बड़ा हो उसका यह धर्म है, कि वह कभी अपने श्रेष्ठ होनेका दम न भरे।

* * * *

सच्चे मित्रका यह लक्षण है कि वह अपने सभी मित्रोंको जो उससे योग्यता आदिमें कनिष्ठ हैं, अपने बराबर करनेका यत्न करता है।

* * * *

मित्रोंमें योग्यता आदिके विचारसे जो श्रेष्ठ है, उसके बारेमें कभी-कभी उसके कनिष्ठ मित्रोंको यह ख्याल हो जाता है, कि यह हमें आगे नहीं बढ़ाते। पर जो ऐसा ख्याल करते हैं वे ऐसे ही लोग होते हैं, जो अपनी योग्यताको बहुत ही क्षुद्र समझते हैं। इस तरह अपने आपको क्षुद्र समझनेसे जो कष्ट दायक भाव ऐसे

मित्रोंमें उठा करते हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न केवल वाणीसे नहीं, वास्तविक क्रियासे उस मित्रको करना चाहिये, जो योग्यता और प्रतिष्ठामें उनसे बड़ा है। मित्रमण्डलीके ऐसे कनिष्ठ पुरुषोंको आगे बढ़ानेमें इस बातका विचार रखना चाहिये, कि इस विषयमें हमारी सामर्थ्य कितनी है और जिसकी हम सहायता करेंगे, वह ऐसी सहायतासे प्राप्त पद्के लिये कहाँतक योग्य है।

* * * *

जो मित्रता ऐसे समयमें हुई हो, जब मनुष्योंका चरित्र बन चुकता है और उनकी बुद्धि स्थिर हुई रहती है, उसी मित्रताको मित्रता कह सकते हैं। जो मित्रता खेल-कूद या आमोद-प्रमोदके लिये ही हुई हो, वह केवल इसी खेल-कूद या आमोद-प्रमोदसे ही सच्ची मैत्री नहीं हो जाती। खेल-कूदके साथी भी हमारे प्रेमके अधिकारी हैं; पर केवल इसी कारणसे वे सब मित्र कहलानेके अधिकारी नहीं हो सकते।

* * * *

जहाँ मित्रका चुनाव ठीक न हुआ हो और इस कारणसे उसके टूटनेकी सम्भावना हो, वहाँ उसे एकाएक न तोड़कर क्रमसे टूट जाने देना चाहिये।

* * * *

सबसे पहला प्रयत्न यह होना चाहिये, कि हम ऐसे गुण अपने अन्दर ले आवें जिनसे मनुष्य सच्चरित्र कहलाता है और फिर अपना एक ऐसा साथी ढूँढ़ें, जिसके गुणोंमें हमारे गुणोंका सच्चा

प्रतिबिम्ब दिखाई देता हो। इस प्रकारसे जो मैत्री स्थापित होती है, उसका आधार ध्रुव होता है।

* * * *

यह समझना कि जहाँ मैत्री है, वहाँ उसे निबाहनेके लिये अनाचार भी किया जा सकता है, बड़ी भारी भूल है और इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। प्रकृतिने मनुष्यके हृदयमें समाज-प्रेमका जो यह बीज बो रखा है, उसका हेतु दुराचारमें एक दूसरेका साथी निर्माण करना नहीं, बल्कि सदाचारमें एक दूसरेका साथी निर्माण करना है। वैयक्तिक सद्गुण या सदाचार औरोंसे पृथक् रहकर उतना ऊँचा नहीं उठ सकता, जितना कि वह किसी साथीका साथ होनेसे उठता है। जो लोग इस प्रकार अपनी चारित्रिक उन्नतिमें एक दूसरेको सहारा देते हुए जीवन-मार्गपर चलते हैं, उनका साथ ही सबसे अच्छा साथ है और उनका मार्ग ही उस लक्ष्यका निश्चित मार्ग है, जिसके लिये प्रकृतिने प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें प्रेमका यह बीज बो रखा है, जो मैत्री इन सिद्धान्तोंपर स्थापित हो और जिसका लक्ष्य इतना महान् हो, वही मैत्री सम्मान और गौरवका कारण होती है और इसीमें वास्तविक मैत्रीका सुख होता है।

* * * *

किसीको तबतक मित्र न मान लेना चाहिये, जबतक बुद्धिद्वारा भली भाँति निश्चय न हो जाय; क्योंकि इस काममें जल्दी करना अन्य सब कामोंमें जल्दीकी अपेक्षा अधिक भयावह होता है;

परन्तु मूर्खता यह है कि हम लोग विचार ही नहीं करते जब विचार करना व्यर्थ होता है और इसीसे यह होता है कि जब मैत्री स्थापित हो चुकती है, परस्पर मैत्रीके अनेक व्यवहारोंका आदान-प्रदान हो चुकता है, तब कोई छिपी हुई बुराई प्रकट होती है और तब वह मैत्री जितनी जल्दी स्थापित हुई रहती है उतनी ही जल्दी टूट भी जाती है। इस प्रकारकी उपेक्षा बहुत ही दोषास्पद और आश्चर्यजनक है; क्योंकि मनुष्य जिन वस्तुओंकी उत्कट इच्छा रखता है उनमें मैत्री ही एक ऐसी वस्तु है जिसके मूल्य और महत्वको सभी मानते हैं। मैत्रीको ही हमने "एक ऐसी वस्तु" कहा, क्योंकि इतना आदर साधुता या सदाचारका भी नहीं है और बहुतसे ऐसे लोग हैं, जो इस साधुता या सदाचारकी बातों को केवल वाग्विलास और आडम्बर समझते हैं। ऐसे भी लोग हैं, जिनकी परिमित इच्छाएं रूखे-सूखे अन्नसे और रहनेके लिये सामान्य कुटी होनेसे ही तृप्त हो जाती हैं और जो धन-दौलतसे घृणा करते हैं। कितने आदमी ऐसे हैं, जो दूसरोंकी महत्वाकांक्षाओंको नितान्त तुच्छ समझते हैं। इसी प्रकार ऐसी ही अन्य बातोंमें भी जिनमें मनुष्योंके मनोविकार बटे रहते हैं, कुछ लोग जिनकी प्रशंसा करते हैं, कुछ दूसरे उन्हीं बातोंका तिरस्कार करते हैं। परन्तु मित्रताके सम्बन्धमें दो परस्पर भिन्न नहीं होते। उद्योगी और महत्वाकांक्षी, विरक्त और विचारशील, यहाँतक कि विषय-भोगी भी यह मानते हैं, कि मित्रके बिना जीवनमें कुछ सुख नहीं है। हर तरहके मनुष्योंमें मित्र प्रेमका भाव रहता है

और जीवनकी प्रत्येक व्यवस्था और पद्धतिमें वह मिला रहता है। कोई मनुष्य यदि इतना स्वार्थी और मनहूस हो, कि मनुष्य-जातिसे ही घृणा करता हो, तो भी वह अपने लिये एक ऐसा साथी ज़रूर चाहेगा, जिसके सामने वह अपना विषभरा हृदय खोल कर रखे। ऐसा मान लीजिये, कि किसी दैवीशक्तिने हमें मनुष्योंके बीचमेंसे उठाकर किसी ऐसे स्थानमें लाकर रखा कि जहाँ मनुष्य जो कुछ चाहता है, वह सब मौजूद हो। पर कोई मनुष्य साथी न हो तो संसारमें कोई मनुष्य इतना मनहूस और जंगली नहीं है जो किसी साथीके बिना इस नन्दन काननका आनन्द लूट सके। किसीने ठीक कहा है कि यदि किसी मनुष्यको स्वर्ग पहुँचा दीजिये और सारा सृष्टि-सौन्दर्य उसकी दृष्टिके सामने रख दीजिये, तो उसको उस सौन्दर्यसे कुछ भी आनन्द न होगा, यदि उससे उस दृश्यका वर्णन सुननेके लिये उसका कोई साथी न हो। मानवी स्वभाव ही ऐसा बना हुआ है, कि वह अकेले रहकर सुख नहीं भोग सकता। उन लताओंके समान जो दूसरोंसे लिपटनेके लिये लगायी जाती हैं, मनुष्यका भी अपनी याने मानव-जातिकी ओर स्वाभाविक खिंचाव रहता है और उसे अपने किसी सच्चे मित्रकी बाँहोंमें सबसे अधिक सुख और सबसे अधिक सहारा मिलता है। इसलिये ऐसे मित्रकी पहचान करने और उसे अपनानेमें हमें विशेष दक्ष होना चाहिये। परन्तु देखते यह हैं, कि यद्यपि प्रकृति अनेक प्रकारसे स्पष्ट सूचनाएँ देती रहती है और अपना अभिप्राय इतने उच्च स्वरसे घोषित करती रहती है, कि उससे अधिक

ज़ोरदार और कोई भाषा नहीं हो सकती, तथापि हम न जाने कैसे उसके स्पष्ट संकेतोंको देखकर भी नहीं देखते और उसके उच्चतम स्वरको सुनकर भी नहीं सुनते !

मैत्रीके व्यवहार इतने अधिक और इतने प्रकारके हैं, कि उनका पालन करनेमें अनेक बार जी ऊब जाता है। मनकी इस अवस्थाको बुद्धिमान् पुरुष टालते हैं अथवा सह लेते हैं। परन्तु इन असंख्य व्यवहारोंमें एक व्यवहार या कर्तव्य ऐसा है, जो हो सकता है कि बार-बार करना पड़े; पर जिसे हर हालत में करना ही पड़ेगा चाहे उससे मित्रके असन्तुष्ट होनेका भी भय क्यों न हो; क्योंकि यह ऐसा कर्तव्य है, जिसका पालन न करनेवाला मनुष्य सच्चा मित्र नहीं हो सकता। यह कर्तव्य है, मित्रको समझाने, डाँटने और जब जरूरत हो तब उसकी भर्त्सना करनेका। जब एक मित्र अपने इस कर्तव्यका प्रेमवश पालन करता है, तब दूसरेका भी यह धर्म है कि वह इसको सद्भावसे ग्रहण करे। साधारण तौरपर तो यह देखनेमें आता है, कि मुँह-देखी बातसे मित्रको सन्तोष होता है और सच्ची बात कहनेसे मित्र शत्रु हो जाता है; परन्तु सच्ची बात कहनेसे यदि कोई मित्र शत्रु हो जाय, तो अवश्य ही इस अस्वाभाविक परिणामपर दुःख होगा; पर यदि मित्रके दोषका उद्घाटन न करनेसे मित्र पथभ्रष्ट होकर हमसे छूट जाय तो यह और भी अधिक दुःखका कारण होगा। ऐसे कोमल अवसरोंपर हम अवश्य ही मित्रको परामर्श देते हुए, यह ध्यान रख कि उसके मर्मपर आघात न हो। "सत्यं ब्रूयात् प्रियं

मित्रता

ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं" यह जो नियम है, उसका वहाँतक पालन करना चाहिये, जहाँतक शिष्टाचार और सौजन्यके लिये उसकी आवश्यकता हो; इसका यह मतलब कभी न होना चाहिये, कि हम अनाचार और दुराचारकी भी खुशामद करें। ऐसी खुशामद न केवल ऐसे आदमीको जो मित्र कहलाता है, बल्कि किसी भी उदार और समझदार मनुष्यको शोभा नहीं देती। मुँह-देखी बात करनेवाले मित्रोंसे शत्रुही अधिक उपकारी होते हैं; क्योंकि शत्रुओंके मुँह अनेक सच्ची बात सुननेमें आती हैं; पर ऐसे मित्रोंके मुँह कभी नहीं। होता यह है, कि लोग कठोर सत्परामर्शका तिरस्कार करते हैं और असतको पसन्द करते हैं, पर होना यह चाहिये कि असारका तिरस्कार और सारको पसन्द करें।

* * * *

सच्ची मित्रताके लिये सत्परामर्श सुजनताके साथ देना और धैर्य्यके साथ लेना जैसे महान् उपकारी होता है, वैसे ही मैत्रीके लिये जितनी हानिकारक ठकुरसुहाती या चापलूसी होती है, उतनी और कोई चीज नहीं होती।

* * * *

चापलूसकी बुद्धि जितनी लचीली और हर फनको जाननेवाली होती है, उतनी और कोई वस्तु इस सृष्टिमें नहीं है। चापलूस दूसरेकी रायसे सदाही सहमत रहता है—सिर्फ रायसेही नहीं, उसके चेहरे और भाव-भंगीसे भी सोलहो आने मिला रहता है। हाँ या नहीं कहते, रुख देखते ही उसे कुछ भी देर नहीं लगती।

उसका एक ही सिद्धान्त होता है, अपने साथीकी मर्जीके विरुद्ध कोई बात न कहना। सभी चापलूस अत्यन्त अधम प्रकृतिके होते हैं; पर जो चापलूस अपने आपको किसीका मित्र बताकर उसके साथ चापलूसी करता है, उसकी नीचताकी हद है। संसारमें बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोगोंमें यह दोष देखनेमें आता है और इसी श्रेणीके चापलूसोंसे सबसे अधिक भय होता है; क्योंकि विष तो विष है ही; पर जिस हाथसे होकर वह आता है उससे उसका विषैलापन और अधिक घातक होता है। परन्तु समझदार मनुष्य चापलूस और सच्चा मित्र इन दोनोंकी पहचान कर सकता है, जैसे असली और नकली चीजोंकी पहचान की जाती है।

* * * *

चापलूसी बुरी तो है ही; पर यह चाहे जिस मनुष्यपर असर नहीं करती—उसीपर असर करती है, जो इसे पसन्द करता और इसे बढ़ावा देता है। जो मनुष्य अपने गुणोंको वास्तवसे बहुत अधिक समझ लेता है; उसीके मनपर यह विष असर करता है।··· ···सच्ची मित्रता ऐसे मित्रोंमें नहीं रह सकती, जिनमें एकको सच्ची बात बर्दाश्त नहीं और दूसरेको सच्ची कहनेकी इच्छा नहीं।

* * * *

चापलूसी ऐसे लोगोंपर असर करती है, जिनकी शेखी—अपने आपको बड़ा माननेकी मनःप्रवृत्ति उसके (चापलूसीके) उपयोगको प्रोत्साहन और निमन्त्रण देती है। परन्तु ये ही लोग नहीं हैं, जिनपर चापलूसी असर करती है। चापलूसीका एक बड़ा ही

सूक्ष्म और संस्कृत प्रकार है, जिससे बड़े-बड़े बुद्धिमानोंको भी बचना चाहिये। मोटे तौरपर खुल्लम-खुला की जानेवाली चापलूसीसे तो मूर्ख ही फँसते हैं ; परन्तु इसका एक छिपा प्रकार भी है, जो इससे भी अधिक फँसानेवाला है और बुद्धिमानोंको उससे विशेष रूपसे सावधान रहना चाहिये। इस छिपे प्रकारका चापलूस विरोध करके भी अपना काम बनाता है; वह ऐसे मतोंका प्रतिपादन करेगा, जो आपके मतोंके विरुद्ध हैं और आपसे वाद-विवाद करके आपको जिता देगा—आपको जितानेके लिये ही वह ऐसे मतोंका प्रतिपादन और आपसे वाद-विवाद करता है। परन्तु इस तरह चापलूसोंके फन्देमें फँसनेसे बढ़कर और क्या नीचा देखना है ?

* * * *

सदाचार—सत्शील ही एक ऐसी वस्तु है, जो मैत्रीको उत्पन्न करती, उसे दृढ़ करती और स्थायित्व प्रदान करती है। कारण, सदाचार, सत्शील सदा एकसा स्थिर रहता है, उसके कार्य कभी परस्पर विसंगत नहीं होते। जिनके अन्तःकरण उसकी जीवनप्रद ज्वालासे जगमगा उठे हों, वे न केवल परस्पर व्यवहारसे उसे और भी प्रदीप्त करते हैं, प्रत्युत उसमें वे हृदयका वह प्रेम जगाते हैं, जो संसारमें मैत्रीके नामसे प्रसिद्ध है और जिसमें स्वार्थका कोई भाव या प्रकार नहीं है। परन्तु, यद्यपि सदिच्छासे ही मैत्री उत्पन्न होती है और किसी प्रकारका स्वार्थ साधनेकी इच्छा ज़रा भी उसमें नहीं होती, तथापि उससे अनेक

ऐसे उपकार हो जाते हैं, जिनका मैत्री स्थापित करते हुए चाहे कोई खयाल भी न रहा हो।

*　　*　　*　　*

परन्तु किसी मनुष्यके पास उसकी सम्पत्ति सदा रहती ही है, ऐसी कोई बात नहीं ; आज है कल नहीं, यही हाल है। उसी प्रकार मित्र भी खो जाते हैं। इसलिये जो मित्र खो जायँ उनकी पूर्ति नये मित्र करके करनी चाहिये, अन्यथा मनुष्यको वृद्धा-वस्थामें अकेले ही जीवन व्यतीत करना पड़े, कोई ऐसा साथी न रह जाय जिसके साथ उसका प्रेम हो और जो उससे प्रेम करता हो। मनुष्यके हृदयमें जो स्वाभाविक स्नेह है, उसका उपयोग तभी होता है, जब उसका कोई स्नेह-पात्र हो। उसके बिना जीवन भारी हो जाता है। सुखी वही है, जो औरोंसे स्नेह करता है और जिसको और लोग भी प्यार करते हैं।

*　　*　　*　　*

उपर्युक्त विचार सिसरोके अपने मित्रको चिट्ठीके तौरपर लिखे हुए एक प्रबन्धमें है और यह प्रबन्ध एक संवादके रूपमें है। यह संवाद रोमके ही दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति लेलियस और उसके जामाता स्कावोलाके बीचमें है। प्रसंग यह है कि लेलियसके परम मित्र सीपिओ अफ्रिकेनसका देहान्त हो चुका था। इन दोनोंकी बड़ी मैत्री थी। ये दोनों अपने समयके बड़े भारी राजकार्य-धुरन्धर और तत्त्वज्ञ थे। सीपिओ अफ्रिकेनसकी मृत्युके पश्चात् लेलियससे मित्रताके विषयमें उपर्युक्त वार्तालाप हुआ।

वार्तालापके अन्तमें अपने मित्रके वियोगके सम्बन्धमें लेलियसने जो विचार प्रकट किये हैं वे भी बड़े महत्वके हैं, जो इस प्रकार हैं—

“कालने सिपिओको अकस्मात् मुझसे छीन लिया। पर वह अब भी मेरे मनःचक्षुके सामने है और सदा ही सामने रहेगा। उसके गुणोंसे उसपर मेरा हृदय मुग्ध था और उसके कारण उसके गुण कभी मर नहीं सकते। केवल मैंही नहीं, जिसके साथ सीपिओका नित्य हो संग हुआ करता था; बल्कि सारा राष्ट्र और उसकी भावी सन्तति भी सदा उसका स्मरण किया करेगी और प्रत्येक मनुष्यके प्रत्येक सत्कार्यमें सीपिओ उज्वलतम दृष्टान्त-स्वरूप उपस्थित रहकर स्फूर्ति प्रदान करता रहेगा। इस जीवनमें मुझे जो-जो सुख मिले हैं, उनमें सबसे अधिक सुख सीपिओकी मित्रतासे ही मिला है। सीपिओ सार्वजनिक कार्योंमें मेरा सदा साथ रहनेवाला साथी था, निजी जीवनमें प्रामाणिक परामर्शदाता था और सभी समयोंमें ऐसा विश्वसनीय सखा था, कि उससे मेरी आत्माको सदा सर्वाधिक सन्तोष होता था। मुझे याद नहीं आता, कि कभी मैंने किसी प्रकारसे उसका जी दुखाया हो और निश्चय ही उसके मुँहसे भी कभी कोई ऐसा शब्द नहीं निकला, जिससे मुझे दुःख हुआ हो। हम दोनों न केवल एक घरमें रहते और एक साथ भोजन करते थे; बल्कि कितने ही सैनिक कामोंमें हम दोनों एक साथ ही आगे बढ़े थे। यात्राओंमें और देशमें विश्राम करते हुए भी हम दोनों चिरसंगी और एक दूसरेसे अभिन्न थे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि ज्ञान-

विज्ञानका शौक हम दोनोंको एकसा था और हम दोनोंका समय ज्ञानार्जनमें ही बीतता था। सीपिओ चला गया; पर इन बातोंको जिनसे आज भी सुख होता है, यदि स्मरण करनेकी मेरी शक्ति भी चली गयी होती तो जिसके साथ मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था, जिसको मैं इतना प्यार करता था, उसका वियोग सहना मेरे लिये असंभव हो जाता। परन्तु ये बातें मेरे चित्तपर अंकित हैं और जितनाही मैं उनका स्मरण करता हूं, उतनाही अधिक जीवन उनमें अनुभूत होता है। परन्तु यदि चित्तका समाधान करनेवाली इन भावनाओंसे मैं वंचित होता, तो भी मेरी वयस् मेरा बड़ा समाधान कराती; क्योंकि सृष्टिके सामान्य क्रमके अनुसार मैं सीपिओसे अब बहुत कालतक अलग नहीं रह सकता और वियोगका जो कुछ दुःख होता है, वह चाहे कितना ही दुस्सह हो, सह लेनेके ही योग्य है।"

*　　*　　*　　*

सच्चे मित्रकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और कोई वस्तु नहीं है।
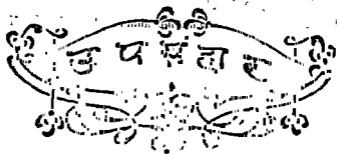
स्वार्थ और प्रेम ।

मनुष्य-स्वभाव स्वार्थी है या प्रेमी ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देना बड़ा कठिन हो जाता है। पर इसमें जो कठिनाई है वही यदि अच्छी तरहसे समझमें आ जाय, तो उत्तर देना भी सहज हो जाय। संसारमें हम प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें, अन्य जीवोंके जीवनकी तरह, यह देखते हैं कि मनुष्य स्वार्थके ही उद्योगमें लगा रहता है। एक नन्हा बच्चा रोता है, माताका स्तनपान करनेके लिये; अर्थात् अपने स्वार्थके लिये; चाहे माता उस समय उसे दुग्धपान करा सकती हो या न करा सकती हो, इसकी उसे कोई परवा नहीं होती। छोटे-छोटे बच्चोंमें यह बात देखी जाती है कि उन्हें जो कुछ चाहिये, अपने लिये। बच्चोंसे बूढ़ोंतक सबका व्यवसाय स्वार्थ-साधनका ही होता है। इसलिये मनुष्य स्वार्थी होता है, यह स्पष्ट दिखाई देता है। पर इन्हीं स्वार्थी मनुष्योंमें वह प्रेम भी दिखाई देता है, जो एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके लिये स्वार्थ-त्याग कराता है। मा अपने कष्टोंको

भूलकर अपने बच्चोंका पालन-पोषण करती है। सती स्त्री अपने पतिको सुखी करनेके लिये कौनसा संकट झेलनेको तैयार नहीं होती? भाई अपनी बहनके लिये कौनसा कष्ट स्वीकार नहीं करता? पिता अपने पुत्रसे पराजित होना कब नहीं चाहता? ये सब व्यवहार तो निःस्वार्थ प्रेमके ही हैं। इसलिये मनुष्य प्रेमी होता है, यह भी स्पष्ट दिखाई देता है। परन्तु मनुष्य स्वार्थी होता है और प्रेमी भी होता है, ये दोनों बातें एक साथ कैसे सम्भव हैं? स्वार्थ और प्रेम एक वस्तु नहीं है, ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं; पर इस संसारकी यही तो विचित्रता है, कि यह सारा दो परस्पर विरोधी तत्त्वोंका प्रपंच है, जिन्हें कुछ लोग ईश्वर और माया कहते हैं। पर क्या सचमुच ये दोनों तत्त्व परस्पर-विरुद्ध हैं? क्या यह वास्तविक विरोध है, या विरोधाभास?

स्वार्थ क्या है? जिस समय मनुष्यकी जो वृत्ति जागरित हो, उस समय उस वृत्तिको सन्तुष्ट करनेकी क्रियाका नाम स्वार्थ है। अन्तःकरणमें आत्मतुष्टिके लिये जिस इच्छाका उदय हो, उसे पूरा करना ही स्वार्थ-साधन है। जो बच्चा माताके कष्टोंको न जानकर अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये रोता है और अपनी इच्छा पूरी किये बिना नहीं मानता, वही बच्चा और बच्चोंको देखकर जिस प्रेमसे उनसे मिलता है, वह अलौकिक प्रेम है। बच्चोंका यह स्वभाव है, कि वे अपने समवयस्कोंसे बहुत जल्द मिल जाते हैं, ऐसे मिल जाते हैं जैसे उनमें परस्पर कोई भेद न हो; और बच्चोंमें सचमुच परस्पर कोई भेद नहीं होता। राजपुत्र

और रंकपुत्र दोनों स्वभावसे ऐसे होते हैं, कि राजपुत्र रंकपुत्रके सोनेकी टूटी हुई खटियापर उतना ही बेधड़क आराम कर सकता है जितना बेधड़क होकर रंकपुत्र राजपुत्रके साथ राजसिंहासन-पर भी पैर देकर खड़ा हो सकता है। बच्चोंकी वृत्तियाँ विकसित हुई नहीं रहतीं; पर मनुष्य-स्वभाव अपने बीज-रूपमें कैसा है, यह बच्चोंके खेलसे मालूम हो जाता है। बच्चेके रूपमें मनुष्य जितना स्वार्थी होता है, उतनाही निष्कलंक प्रेमी भी। पर उसके इस स्वार्थ और प्रेममें परस्पर कोई अन्तर होता है? कुछ भी नहीं। अन्तःकरणकी एक ही वृत्ति कभी स्वार्थके रूपमें और कभी निष्कलंक प्रेमके रूपमें दिखाई देती है। वह वृत्ति एक ही है, चाहे उसे स्वार्थ कहिये या प्रेम।

बच्चे जब बड़े होते हैं और जब उन्हें यह ज्ञान होता है, कि अमुक काम करनेसे हमें कोई लाभ होगा जो औरोंको न होगा, अथवा अमुक काम करनेसे दूसरोंका लाभ होगा, उसमें हमारा कोई लाभ नहीं; तब वे स्वार्थ और परार्थ (परोपकार) ये दो अलग-अलग कल्पनाएँ करते हैं। चित्तकी उस अवस्थामें स्वार्थ और परार्थ ये परस्पर विरोधी हो जाते हैं; पर जब मनुष्य परार्थ भी परार्थ समझ कर नहीं, बल्कि स्वार्थ ही समझ कर करता है—प्रेमसे करता है, तब स्वार्थ और परार्थमें कोई भेद नहीं रहता। जैसे पिता अपने पुत्रके लिये जो कुछ करता है, वह पुत्रके लिये याने परार्थ होनेपर भी स्वार्थ ही होता है—उसमें भेद-भाव नहीं रहता—उसमें प्रेम रहता है। यह स्वार्थ और यह प्रेम दोनों एक

ही वस्तु हैं ; क्योंकि परार्थ भी मनुष्यका स्वार्थ है। यह क्या रहस्य है ? रहस्य यही है, कि मनुष्य स्वार्थी है; पर उसका स्वार्थ परार्थसे भिन्न नहीं हो सकता। मनुष्यका वह स्वार्थ क्या है जो यच्चोंमें भेद-भाव नहीं रखता, पितापुत्रमें भेद-भाव नहीं रखता और पतिपत्नीमें भेद-भाव नहीं रखता ? यह स्वार्थ यही है, कि मनुष्य अपना विस्तार चाहता है।

एक यच्चा जो अकेला अपनी माताका स्तनपान करता है, यड़ा होनेपर अपने सुख-दुःखमें औरोंको भी सम्मिलित करता है। विवाह-बन्धनसे पति-पत्नीके रूपमें स्त्री-पुरुष एक हो जाते हैं ; इस तरह उनका विस्तार आरम्भ होता है। उनकी संतति और फिर संततिकी भी संतति उसी विस्तारकी परम्परा है। मनुष्य इस विस्तारको परार्थ नहीं कहता, यह उसका स्वार्थ ही है और वह स्वार्थ अपने परिवारका और अपना विस्तार है। भूलसे भी मनुष्य कभी यह नहीं समझता, कि इस विस्तारमें हम कोई स्वार्थ-साधन कर रहे हैं ; क्योंकि वह यह जो कुछ करता है, प्रेमसे करता है, भेदभावसे नहीं। उसका स्वार्थ और उसका यह प्रेम परस्पर विरुद्ध नहीं एक ही वस्तु हैं। यह वस्तु है प्रेम, यह वस्तु है स्वार्थ, जो एक मनुष्यको एकसे अनेक कर देता है—अनेकोंमें उस एकका विस्तार होता है।

इस विस्तारमें जैसे स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र, भाई-यहन इत्यादि सम्बन्ध होते हैं, वैसा ही एक सम्बन्ध मित्रका भी होता है ; क्योंकि मनुष्य विस्तारशील प्राणी है, वह केवल अपने परिवारमेंही

विस्तार पाकर सन्तुष्ट नहीं होता,—बल्कि अपना और भी अधिक विस्तार चाहता है। इस प्रकार मैत्री एक ऐसा बन्धन है, जैसा कोई अखण्ड पारिवारिक बन्धन हो। मैत्री मनुष्यके अपने विस्तार-का वह स्वार्थ है, जिसमें कोई परार्थ नहीं; क्योंकि प्रेममें परार्थ नहीं होता। पिता पुत्रके लिये जो कुछ करता है, यह जैसा पिताका स्वार्थ है, वैसे ही कोई मनुष्य अपने मित्रके लिये जो कुछ करता है, वह भी उसका अपना ही स्वार्थ है। मित्रताकी स्वाभाविक स्थिति और सिद्धान्त यही है। इस प्रकार मैत्री दो मनुष्योंका वह परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध है, जो प्रत्येकका अपने स्वाभाविक विस्तार-प्रेमसे स्थापित होता है।

अन्य पारिवारिक बन्धनोंके समान यह बन्धन भी अत्यन्त पवित्र होता है। स्त्री और पुरुष दो जीव मिलकर अपना एक परि-वार बना लेते हैं, जो कई जीवोंका एक समूह होता है। दो मित्र मिलकर ऐसे दो परिवारोंको एक कर देते हैं और ऐसे कई मित्र मिलकर कई परिवारोंको एक कर देते हैं। इसलिये किसी मनुष्य-समाजके जीवनमें मित्रप्रेमका वही स्थान है, जो किसी परिवारके जीवनमें दाम्पत्य प्रेमका है। किसी सामाजके सामाजिक जीवनकी उत्तमता उस समाजके व्यक्तियोंके परस्पर-मित्र-सम्बन्धपर ही निर्भर करती है। इसलिये मित्र-सम्बन्ध समाजका जीवन है। जिस समाजमें आदर्श मित्रोंकी संख्या जितनी अधिक है, वह समाज उतना ही सुखी और शक्तिमान है। जिस समाजमें परस्पर मैत्रीके आदर्शका अभाव-सा है, वह समाज नष्टप्राय है। इसलिये

सामाजिक उन्नतिके चाहनेवालोंको मैत्रीका आदर्श स्थापित करने और मित्र-प्रेमका प्रचार करनेकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस ओर जितना ही अधिक ध्यान दिया जायगा, उतना ही समाजका अधिक कल्याण होगा।

मनुष्य स्वभावसे ही प्रेमी है। वह अपना विस्तार चाहता है। इसका कारण भी उसका प्रेम ही है; प्रेम ही उसका स्वार्थ है। इसी प्रेममय स्वार्थपर प्रत्येक परिवार स्थित है, इसी प्रेममय स्वार्थपर प्रत्येक समाज खड़ा रहता है। समाजके जीवनका यह आधार समाजके व्यक्तियोंमें परस्पर मित्रतुल्य सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध स्वाभाविक है। मनुष्यके आत्यन्तिक विकासके लिये तथा समाजकी परम उन्नतिके लिये यह सम्बन्ध आवश्यक होता है।